जापानकी बातें

विष्णुदत्त शुक्ल

१६३८ ई०

प्रकाशक—

देवव्रत शास्त्री

नवयुग प्रकाशन मन्दिर

एक्जीबिशन रोड, पटना।

मूल्य अजिल्द १॥)

सजिल्द २)

मुद्रक—

उमादत्त शर्मा

रत्नाकर प्रेस

११-ए, सैयदसाली लेन,

कलकत्ता।

निवेदन

पाठकोंकी सेवामें यह पुस्तक समर्पित करते हुए मुझे प्रसन्नता भी हो रही है और संकोच भी। दूर देश जाकर अपने भाइयोंको वहाँकी बातें सुनाना प्रसन्नताकी बात है ही, संकोच इसलिए हो रहा है कि चीन-जापान युद्धके इस अवसर पर, जब वैदेशिक मामलेमें जापान इस प्रकार अन्याय कर रहा है, ऐसी पुस्तक अप्रासंगिक-सी ही प्रतीत होगी। परन्तु जो कुछ देखा सुना है उसे कैसे छिपाऊँ ?

पुस्तक यात्रासे सम्बन्ध रखती हैं, इसमें कोई शक नहीं। परन्तु यह यात्रा सम्बन्धी पुस्तक है, ऐसा कहनेका साहस नहीं होता। साधारणत: यात्रा सम्बन्धी पुस्तक कहनेसे जिस प्रकारकी पुस्तकका बोध होता है उस प्रकारकी पुस्तक तो यह निश्चय ही नहीं है। मेरे मनमें पहिले हीसे यह बात आ रही थी कि मैं किस तारीखको कहाँ पहुंचा, कहाँ ठहरा, किससे मिला, क्या खाया, किस प्रकार सोया आदि बातोंसे दुनियाँको क्या दिलचस्पी है ? फिर, जब मैं जापान से लौटकर आया तब प्रत्यक्ष देखा भी कि अपने कुछ बहुत निकट के मित्रों और कुटुम्बियोंके अतिरिक्त किसीने उपरोक्त बातें नहीं पूछीं। साधारणत: लोग यही जाननेके उत्सुक मिले कि वहाँका रहन सहन कैसा है, सामाजिक आदि अवस्थाएँ कैसी हैं, दर्शनीय वस्तुएँ

कौनसी हैं, आदमी कैसे हैं, आदि आदि। उस समय मेरी पहिली धारणा और भी दृढ़ हो गयी। मुझे और भी अधिक दृढ़तापूर्वक यह प्रतीत हुआ कि वास्तवमें ये ही बातें हैं जिन्हें जाननेकी लोगोंमें उत्सुकता है और जिन्हें बतानेकी लोगोंको आवश्यकता भी है। इसी दृष्टिकोणसे यह पुस्तक लिखी गयी है।

पुस्तककी पाठ्य सामग्रीमें, अन्यान्य पुस्तकों, पत्रों, लेखों आदि से सहायता नहीं ली गयी। जो कुछ आंखोंसे देखा और वहांके मित्रोंसे जिन-जिन बातोंकी जानकारी प्राप्त हुई उन्हीं सबको यहाँ लिपिबद्ध किया गया है। जिन बातोंका मेरे हृदयपर जिस रूपमें प्रभाव पड़ा उन बातोंका उसी रूपसे यहांपर वर्णन किया गया है। इसलिए हो सकता है कि इस पुस्तक की बातें अन्यत्र पायी जाने-वाली बातोंसे कहीं-कहीं कुछ भिन्न-सी प्रतीत हों। परन्तु मैं समझता हूं कि मेरे लिए अपनी ही बात और अपने ही ढंगसे लिखना उचित था और मैंने इसी औचित्यका पालन करनेकी चेष्टा की है।

पुस्तक कहां तक उपयोगी होगी और कहाँ तक पाठकोंका मनोरञ्जन एवं ज्ञान वर्धन कर सकेगी, मैं इसका अनुमान लगाना नहीं चाहता।

१५-१-३८ —विष्णुदत्त शुक्ल

विषय-सूची

चित्र-सूची

जापानकी बातें

हमारी जापान यात्राके साथी

जापानकी बातें

यात्राका विवरण

२७ मार्च १९३७ की बात है। भारतवर्षसे हिन्दुओंका एक दल जापान-यात्राके लिए रवाना हो रहा था। हिन्दू जाति अपनी संकीर्णताओंके लिए प्रसिद्ध है। इतने अन्धविश्वास, इतनी रूढ़ि-प्रियता, नये कार्योंकी ओरसे इतनी अरुचि, और साहसिक कार्य-प्रवृतिकी इतनी न्यूनता शायद ही किसी अन्य जातिमें दृष्टिगोचर होगी। फिर भी उस दिन एक अपूर्व उत्साह दिखलायी पड़ रहा था। यात्री दलमें जानेवाले व्यक्ति तो केवल १९-२० ही थे, परन्तु

उनको पहुंचानेके लिये जितने सज्जन आये थे और उनमें जो उत्साह दिखलायी पड़ रहा था, वह हिन्दू जातिके उपरोक्त दोषोंको न माननेके लिये बाध्यसा कर रहा था। बड़ा विचित्र दिन था। होलीके बादकी प्रतिपदा थी और शनिवारका दिवस। और यात्रा करनी थी पूर्वकी-वह भी कोई छोटी मोटी नहीं, करीब पांच हजार मील दूर स्थित एक विदेशकी और समुद्रसे होकर! ऐसी विकट यात्रा और ज्योतिषके ऐसे प्रतिकूल मुहूर्तमें! परन्तु किसीके मनमें उसका कोई ख्याल न था। सब प्रसन्नतापूर्वक अपने मित्रों और कुटुम्बियों को विदा कर रहे थे। जिस जातिमें समुद्र-यात्रा करनेको ही एक दोष माना जाता हो, उस जातिके लोग ऐसे विकट मुहूर्तमें समुद्र-यात्रा करें और उसमें भी उन्हें अपने मित्रों और कुटुम्बियोंसे प्रसन्नतापूर्वक विदाई मिले, वास्तवमें यह हिन्दू जातिके लिये एक उत्साहवर्धक और आशाप्रद बात थी। शकुन एवं मुहूर्त आदिके विचारने हमारे जीवनको इतनी अधिक हानि पहुंचाई है, जिसका कोई ठिकाना नहीं। इसीलिए उसदिन मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई जब मैंने देखा कि इस शुभ यात्राके समय उन्होंने उन सब बातोंका विचार परित्याग कर सबको विदाई दी। यात्री भी पूर्ण उत्साह और आशाके साथ आगे बढ़े।

मेरे लिये तो समुद्र-यात्रा एक कौतूहल था। हम लोग संध्याके ५ बजे जहाज पर सवार हुए थे। जहाज 'तिलावा' ब्रिटिश इंडिया-स्टीमनेविगेशन कम्पनीका कलकत्तेसे जाने वाले रास्तेका सबसे बड़ा जहाज है। इसी जहाजसे हम लोग रवाना हुए थे। १०००० टनका

यह जहाज यद्यपि कोई बहुत बड़ा जहाज न था, फिर भी कलकत्ता के बन्दरगाहमें इससे अधिक वजनके जहाज नहीं आते। जहाज रातके दस बजे छूटने वाला था। परन्तु हुगली नदीके उथले पानीमें उसका चल सकना सम्भव न था। वह ज्वारकी प्रतीक्षामें खड़ा रहा और प्रातः २-३ बजेके करीब जब ज्वार आया, तब आगे बढ़ा। परन्तु थोड़ी दूर चल कर फिर उसे रुक जाना पड़ा क्योंकि उस समय भाटा आ गया था। गंगासागरके आगे चलनेपर जब वह समुद्रमें पहुंचा तब कहीं रफ्तार ठीक हुई। इस बीचका समय कितनी अधीरता और प्रतीक्षामें कटा इसका अनुमान वही कर सकते हैं, जिन्हें किसी कामकी पूर्तिकी अत्यधिक कामना रहती है और पूर्त्तिमें विलम्ब होता है। जहाजकी सवारीका यह प्रथम अवसर था। अतः स्वभावतः मनमें यह कौतूहल हो रहा था कि जहाज कैसे चलता है, समुद्रकी लहरोंका उसपर क्या प्रभाव पड़ता है, जहाजसे समुद्रका दृश्य कैसा मालूम होता है, आदि। और उधर जहाज बार-बार रुक-रुक जाता था। उसकी इस सबाध गतिपर बड़ी चिड़चिड़ाहट मालूम होती थी। खैर।

गंगासागरके बाद जहाज बीच समुद्रमें आया और अपनी पूरी रफ्तारसे चलने लगा। थोड़ा आगे बढ़ते ही सबसे प्रथम जो विचित्र बात दिखलायी पड़ी, वह था समुद्रका जल। ऐसा नहीं है कि समुद्रका जल देखनेका मौका इसके पहिले कभी मिला ही न था। बम्बई, पुरी आदिमें समुद्र देखा था। उसी परसे उसके पानीके रंगकी एक कल्पना भी कर रखी थी। स्कूलोंमें भी पढ़ा था कि समुद्रके पानीका

रंग नीला होता है और इसीलिए नक्शेमें नीले रंगका समुद्र दिखलाया जाता है। परन्तु कहींसे भी यह कल्पना नहीं कर सका था कि समुद्रका पानी इतना अधिक नीला होता है। जिन लोगोंने कहीं समुद्रका वह पानी नहीं देखा—और वास्तवमें समुद्रके पानीका वही रंग है—वे कभी अनुमान नहीं कर सकते कि उसका पानी इतना नीला होता होगा। पानी इतना नीला होता है कि मानो किसीने नीला रंग घोलकर डाल दिया हो—इतना गाढ़ा नीला रंग जैसा नीलके कपड़े रंगनेमें लगता है।

इसे कौतूहल पूर्वक देखता हुआ आगे बढ़ा। चारों ओर विशाल नील जल राशि भरी थी और बीचमें जहाज धकधक करता हुआ मंथर गतिसे जा रहा था। न शरीरको झकझोर डालने वाला रेलोंका-सा धक्का और न कानोंको फोड़ डालनेवाली वह आवाज। जहाज शान्तिपूर्वक गतिशील था। ३१ मार्चको रंगून पहुंचा। पहिले पहिल देशसे बाहर निकला था। प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तुको अधिक से अधिक देख लेनेकी लालसा थी। यात्राकी इस उत्कंठित लालसा का अनुमान यात्राप्रेमी यात्री ही कर सकते हैं। जहाज संध्याको रंगून पहुंचा था। उस समय अंधेरा हो चुका था, कुछ देख सकनेकी सुविधा भी कम थी फिर भी जहाज पर बैठा रहना असम्भव था। जहाजके रुकते ही सब लोग उतरे और सबके साथ ही मैं भी उतरा। परन्तु कोई विशेष स्थान न देख सका। मगर जहाज वहां तीन दिनतक ठहरा था। इसलिए वहांकी सभी वस्तुएं और स्थान देखनेको मिले। रंगूनमें पैगोडे कई हैं, परन्तु सबसे बड़ा पैगोडा, 'शीडगोन पैगोड'

बहुत ही अद्भुत है। इतना विशाल मन्दिर है वह कि उससे बड़ा मन्दिर मुश्किलसे देखनेको मिलेगा और सोनेसे मढ़ा हुआ ऐसा मन्दिर तो दूसरा है ही नहीं। इस विशाल मन्दिरमें नीचेसे ऊपर तक सोनेके पत्तल चिपकाये गये हैं और गुम्बजके ऊपरका कुछ हिस्सा तो बिलकुल सोनेकी ठोस ईंटोंसे बनाया गया बताया जाता है। रातमें रोशनी आदिकी भी इसमें बड़ी सुन्दर व्यवस्था रहती है। उस रोशनीमें चमकता हुआ सोनेका यह बड़ा मन्दिर, बहुतही आकर्षक मालूम होता है। रंगूनकी सबसे अधिक दर्शनीय वस्तु यही है। शहर काफी साफ-सुथरा है और बड़े सीधे सुलझे हुए ढंगसे बसा है। यहां नये आदमियोंके भूलने भटकनेका भी कोई डर नहीं है। यहां पर भिखमंगे तो अवश्य हैं पर ये किसीके पीछे नहीं पड़ जाते। अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही ये यात्रियोंसे भिक्षा मांगते हैं। किसीने दे दिया तो ठीक है, नहीं तो चुपचाप बैठ रहते हैं। कपड़े-लत्ते काफी साफ-सुथरे पहनते हैं।

रंगूनमें मिट्टीके तेलके कारखाने भी दर्शनीय हैं। जहांसे मिट्टीका तेल निकाला जाता है, वे स्थान इतनी दूर थे कि वहां तो हम लोग नहीं जा सके परन्तु कारखानोंमें गये थे। जमीनसे निकले हुए तेलको साफ करके उसीसे कई प्रकारका मिट्टीका तेल, पेट्रोल, और गाढ़े तेल, मोम आदि अनेक वस्तुएं निकाली जाती हैं। मोम-बत्ती बनानेके कारखानोंमें बर्मी स्त्रियां कितनी तेजी और मुस्तैदीसे काम करती हैं और कितनी साफ सुथरी रहती हैं। इसकी कल्पना हम लोग, जिनके यहांके मजदूरोंको गंदे रहनेकी आदतसी पड़

गयी है और जिन्हें साफ सुथरी पोशाकमें मजदूरोंको देखनेके अवसर ही नहीं मिलें, नहीं कर सकते।

रंगूनसे चलकर जहाज ६ अप्रैलको पेनांग पहुंचा। सुना था यहांके प्राकृतिक दृश्य बड़े मनोरम हैं। इसलिए और स्वाभाविक कौतूहलके कारण भी पेनांग देखनेकी उत्कण्ठा बड़ी प्रबल थी। एकदिन पहिले ही जहाजोंपर नोटिस लगा दिया जाता है कि अगले बन्दरगाह पर किस समय जहाजके पहुंचनेकी आशा की जाती है। अतः पहिले ही से मालूम हो चुका था कि ६ अप्रैलको प्रातःकाल जहाज वहां पहुंचेगा। एक दिन पहिले ही से उत्सुकता थी कि कब पेनांग आये। आखिर सबेरा हुआ। केबिनसे बाहर निकल कर डेकपर आया। किनारा एकदम नजदीक आ चुका था। सामने जो नजर गयी इतना मनोमोहक प्राकृतिक दृश्य दिखलायी पड़ा कि तबीयत उछल पड़ी। पहाड़, वृक्ष, जल, हरीभरी घास, प्राकृतिक दृश्योंकी यही विशेष विभूतियां हैं। इनका प्राचुर्य पेनांगके स्थान-स्थानपर मिलता है। फिर उसके साथ प्रातःकालीन सूर्यकी सुनहली किरणें उस दृश्यको और भी अधिक चित्ताकर्षक बना रही थीं। समुद्रके ठीक किनारेका भू-भाग एक सालंकारिक काव्यसा प्रतीत होता था।

पेनांगमें इस प्रकारके प्राकृतिक दृश्योंकी बहुत अधिकता है। यदि यह कहा जाय कि सारा नगर प्राकृतिक दृश्योंका एक विराट समूह है तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। वाटर फाल, पेनांग हिल आदि तो बहुत ही सुन्दर स्थान हैं। पेनांग हिलके ऊपर चढ़कर नीचेकी ओर देखनेसे सारा नगर बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है।

हिलपर चढ़नेके लिए केबुल रेलवे है। जिसमें रस्सेके सहारे रेलका डिब्बा ऊपर खींचा जाता है। वहांके अन्य दर्शनीय स्थानोंमें चाइनीज़-टेम्पल भी अच्छा स्थान है। वहांपर एक मन्दिर और है जिसे सर्प-मन्दिर कहते हैं। इस सर्प-मन्दिरके सम्बन्धमें बड़ी बातें सुन रखी थीं। वहां सर्प निर्वाध घूमा करते हैं मगर किसीको काटते नहीं हैं! बड़ी विचित्रसी बात थी। मगर वहां जाकर जो देखा तो बड़ी निराशा हुई। जिन्हें सर्प कहा जाता है वे सर्पके आकारके कीड़ोंसे अधिक और कुछ नहीं थे। कीड़े भी ऐसे निस्तेज कि मुर्देसे थोड़े ही अधिक! इसी प्रकारकी निराशा लिली पौंड देखकर हुई। चारों ओर वृक्षोंसे घिरे हुए निहायत गन्दे पानीके इस कुण्डकी तारीफ न जाने क्यों यात्रा पुस्तकोंमें की गयी थी।

आठ अप्रैलको जहाज सिंगापुर आया। सिंगापुर पूर्वीय देशोंमें एक महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटिश सरकारका जहाजी अड्डा बन जाने के कारण इसका महत्व और भी बढ़ गया है। परन्तु बाहरसे इसकी रूपरेखा जितनी महत्वपूर्ण दिखलायी पड़ती है, सिंगापुर नगरका आन्तरिक भाग उतना ही गया-गुजरा है। राजनीतिक दृष्टिसे तो वास्तवमें इस स्थानका महत्व बहुत अधिक है, परन्तु सफाई आदिमें यह अन्य नगरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक गंदा है। भारतवर्षको छोड़कर अन्यत्र सभी देशोंमें मांस मछली आदिके सेवनका रिवाज है। यह रिवाज पूर्वीय देशोंमें भी कम नहीं है। परन्तु इसके कारण जितनी गन्दगी सिंगापुरमें दिखायी पड़ी, उतनी अन्यत्र नहीं। सूखी मछलियां बेचनेका यहांपर बहुत अधिक रिवाज है।

अतः स्वभावतः सूखी मछलियोंकी दूकानें भी सर्वत्र भरी पड़ी हैं। परिणाम यह होता है कि जहांसे निकलिये इनकी बदबूसे तबीयत परेशान हो जाती है। शांक भाजी फल आदिके बाजारोंमें जाना तो इनके कारण असम्भव हो जाता है। रास्ते भी, कुछ खास रास्तों को छोड़कर, साफ नहीं हैं। यहांपर सफाईके लिए प्रायः प्रत्येक घरके पास एक एक डब्बा सा रखा रहता है, जिसमें कूड़ा-करकट डालनेका नियम है, परन्तु इस नियमकी पाबन्दीके लिए लोग अधिक ध्यान देते हुए नहीं पाये जाते। साथ ही वे डब्बे इतने गन्दे ढङ्गसे रखे जाते हैं कि वे स्वयं घृणा करने योग्य एक बीभत्स वस्तु-सी प्रतीत होते हैं।

ब्रिटिश सरकारका जहाजी अड्डा और वहांका हवाई अड्डा सिंगापुर की सबसे प्रसिद्ध वस्तुएं हैं। ये दोनों अड्डे बिना अधिकारियोंकी आज्ञाके देखनेको नहीं मिलते। जहाजी अड्डेके लिए यहांपर करोड़ों रुपये खर्च किये गये हैं और पहाड़ काट-काट कर इमारतें कारखाने आदि बनाये गये हैं, जिनमें लड़ाईके सामान रखे जाते और बनाये जाते हैं। समुद्रके पास ही एक पहाड़ी है। इस पहाड़ीको काटकर समुद्रका पानी पहाड़ीके पीछेवाली जमीनपर लाया गया है और वहीं पर यह जहाजी अड्डा बनाया गया है। इस प्रकार जल आक्रमणसे वह स्थान सर्वथा सुरक्षित है। इस स्थानपर गोला बारूद रखनेकी अनेक छोटी बड़ी इमारतें बनी हैं। लड़ाईकी वस्तुएं तैयार करनेके लिए कारखाने भी हैं। अब एक बहुत ही बड़ा कारखाना और बन रहा है। इसमें जमीनके नीचे एक लम्बी सुरंग बनी हुई है,

जिसके अन्दरसे नीचे-नीचे ही लड़ाईका सामान अभीष्ट जहाज आदि पर ऐसे ढङ्गसे भेजा जा सकता है, जिससे दुश्मनको उसका पता ही न लग सके। यहां पर जहाजोंकी मरम्मत आदि करनेके लिये भी स्थान बन गया है। और भी अनेक प्रकारकी इमारतें आदि बराबर बन रही हैं। फौजोंके रहनेके लिए भी जगह बनाई गयी है। यह सब जगह अधिकांशमें पहाड़ियां खोद-खोद कर बनाई गयी है। इसीलिए वहां पर धन बहुत व्यय हो गया है और हो रहा है।

सिंगापुरको सर टामस स्टैम्फोर्ड रैफल साहबने बसाया था, इसलिए उनके नामकी अनेक इमारतें, संस्थाएं, स्थान आदि बने हैं। यहांपर मनोरंजनके लिए न्यू वर्ल्ड और ग्रेट वर्ल्ड आदि स्थान बने हैं। ये अपने यहांके कार्निवालोंके ढङ्गके होते हैं। कार्निवालोंकी सब बुराइयां तो इनमें होती ही हैं, उनके अतिरिक्त इनमें 'डैंसहाल' बने हुए हैं। इन डैंसहालोंमें अंग्रेजी ढङ्गसे नाच होता है। इन नाच-घरोंमें जो स्त्रियां दिखलायी पड़ती हैं वे प्रायः चरित्रवती नहीं होतीं और जो पुरुष इन कामोंमें भाग लेते हैं उनमें भी चरित्रवान थोड़े ही होते होंगे। एक-एक स्त्रीको बगलमें दाबकर नाचते हुए कार्नि-वालोंके इन नाचघरोंको देखकर यहांके नवयुवकोंके चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ता होगा, यह स्पष्ट है। फिर बदकिस्मती यह है कि ये कार्निवल वहांपर रोजाना बारहों महीने होते हैं। नाचघरोंसे बाहर भी स्त्री पुरुषोंके मिलने जुलनेमें कुत्सित भावना ही लक्षित होती थी। इस प्रकार कार्निवालोंका समस्त दृश्य नितांत हेय और

घृणित ही मालूम हुआ। परन्तु वहांके निवासी उसको बहुत पसन्द करते हुए मालूम होते हैं अन्यथा रोजाना इस प्रकारके कार्निव-लोंका चलना असम्भव हो जाय। परन्तु वहां तो इन दो के चलनेकी बात कौन कहे और नये-नये कार्निवल बनते चले जा रहे हैं। अभी हालहीमें हैपीवर्ल्ड नामका एक कार्निवल और बना है, जो हम लोगोंके जाते समय न था। इस प्रकारके कार्निवलोंका विनाश सिंगापुरके चरित्र-निर्माणके लिए आवश्यक है।

यहाँके उन पुलिस वालोंकी पोशाक जो रास्तेमें चलनेवाली गाड़ियों आदिका नियंत्रण करते हैं, बड़ी विचित्र है। उनकी पीठपर हवाई जहाजके पंखोंकी भाँति एक पटरी सी बाँध दी जाती है। पटरीके बाजू पुलिसमैनके शरीरसे बाहर दोनों तरफ काफी लम्बाई तक निकले हुए होते हैं—उतनी लम्बाई तक तो जरूरही जितनी लम्बाई तक उठानेसे हाथ जा सकते हैं। ये पुलिसवाले अधिकांशमें अपना हाथ न उठाकर आवश्यकतानुसार घूमकर खड़े हो जाते हैं और वे पटरियाँ हाथके इशारेका कार्य करती हैं। यह प्रथा पेनांगमें भी है। इस प्रथासे यद्यपि पुलिसमैनको हाथ उठानेका कष्ट नहीं होता, तथापि उसका रूप इतना विकृत हो जाता है कि देखनेमें बड़ा भद्दा मालूम होता है।

सिंगापुरमें रबर, अनानास, जस्ता, साबूदाना, सुपारी आदिका व्यापार होता है। यहाँपर चीनियोंकी बस्ती अधिक है और वे सब हैं भी काफी धनवान। भारतीय व्यापारी भी हैं, परन्तु अधिक संख्यामें नहीं और जो हैं भी उनमेंसे अधिकांश आढ़तका ही कार्य

करते हैं। यहाँके प्रवासी भारतीयोंमें सिखोंकी हालत अन्य लोगों की अपेक्षा अच्छी है।

सिंगापुर तक भारती प्रवासी इतने हैं तथा नगर निर्माण और रहन सहन आदि ऐसा है कि जिससे इन स्थानों तक जाते हुए इस बात का अनुभव बहुत कम हो पाता है कि हम किसी नयी जगह पर आ गये हैं। इस बातका अनुभव पूर्वकी यात्रामें पहिले पहिल हमें हाँगकाँगमें हुआ। सिंगापुरसे हाँगकाँगका रास्ता जापानके रास्ते में आनेवाले किसी दो बन्दरगाहोंके रास्तेसे अधिक लम्बा है। प्रायः एक सप्ताह लग जाता है, सिंगापुरसे हाँगकाँग पहुँचनेमें। हम लोगोंका दिल इस लम्बी यात्रासे ऊब सा गया था। ६-६, ७-७ दिन तक पानी ही पानी और एक ही प्रकारका जीवको उबा देनेवाला दृश्य देखते देखते हम लोग घबड़ा उठे थे। और जमीनकी सतह पर पहुँचनेके लिए व्याकुलसे हो रहे थे। कहा नहीं जा सकता कि इसी लिए अथवा नगरमें स्वयं नवीनता होनेके कारण हाँगकाँग पहुँचने पर हमें ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी नये स्थानपर आये हों। नगर की ऊँची-ऊँची आलीशान इमारतें, भारतीय प्रवासियोंकी न्यूनता, चीनियों विशेषकर चीनी स्त्रियोंका विचित्र वेश-भूषा, फैशनका अत्य-धिक प्रचार आदि सब मिलकर हम जैसे यात्रियोंके लिए एक नया ही वायुमण्डल प्रदर्शित कर रहे थे।

हम लोग १४ अप्रैलकी शामको हाँगकाँग पहुँचे थे। उस दिन शहरमें नहीं जा सके। परन्तु रातमें जहाजपरसे ही हांगकांगका जो दृश्य दिखलायी पड़ा, वह बड़ा ही आकर्षक था। हांगकांग एक

पहाड़ी जगह—जगह नहीं खास पहाड़ी पर ही बसा हुआ है। उसकी इमारतें पहाड़ीमें समतल स्थान बनाकर बनाई गयी हैं। इमारतोंमेंसे कुछ इमारतें पहाड़ी पर नीचे हैं, कुछ ऊपर और कुछ उससे भी ऊपर। इस प्रकार ऐसे ढंगसे इमारतें बनी हुई हैं जैसे किसी नाटक, सर-कस आदिमें दर्शकोंके बैठनेके लिए बेंचे रखी जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रायः प्रत्येक इमारतकी खूबियाँ बाहरसे प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं। हांगकांग और आगेके भी सब बन्दर-गाहोंपर रोशनी खूब होती है। इन इमारतोंमें भी खूब रंगबिरंगी रोशनी होती है। यह रोशनी पहाड़ीकी हरियालीके बीचमें रातको ऐसी सुन्दर मालूम होती है मानो नीलाकाशमें विविध रंगोंके नक्षत्र उगे हों। हांगकांगमें रातका यह दृश्य देखनेके लायक होता है। यहाँकी पीक (पहाड़ी चोटी) भी देखनेके योग्य है।

हाँगकाँगके समुद्री तटके एक किनारे पर हाँगकाँग और दूसरे किनारेपर काउलून नामक शहर बसा हुआ है। दोनों शहर काफी साफ सुथरे और सुन्दर हैं। इन दोनोंके बीच छोटे-छोटे जहाज बराबर आया जाया करते हैं, जिससे इनके बीचका यातायात बिलकुल वैसे ही होता रहता है जैसे कि एक ही शहरमें हो। हाँग-काँग पहाड़ी पर बसा हुआ है, इसलिए उसका विस्तार अधिक नहीं है। उसकी सड़कें आदि इसीलिए तंग हैं। यहाँपर वस्तुओंके दाम, भारतवर्ष—भारतवर्ष ही क्या पूर्वीय सब देशोंकी अपेक्षा बहुत कम होते हैं। यह फ्रीपोर्ट है अर्थात् इसमें बाहरसे आनेवाले मालपर चुंगी नहीं लगती। सिंगापुर भी ऐसा ही स्थान है। इसलिए इन

दोनों स्थानोंमें वस्तुओंके दाम कम हैं। परन्तु फिर भी हाँगकाँगमें दामोंकी जो कमी है, वह सिंगापुरमें भी नहीं। यहाँ पर भी कुछ भारतीय व्यापारी दिखलायी पड़े जो आढ़तका काम करते थे। इनमें अधिकांश सिंधी और मुसलमान थे।

हाँगकाँगसे अमोय, जहाँपर एक सुन्दर बगीचेको छोड़कर कोई विशेष स्थान देखने योग्य नहीं है और जो बहुत छोटा बन्दरगाह है, होते हुए शंघाई आता है। शंघाई हम लोग २० अप्रैलको पहुँचे थे। शंघाई पूर्वका पेरिस कहलाता है। यहाँपर ऊँची-ऊँची इमारतें और काफी साफ सुथरा बाजार आदि हैं। जितनी ऊँची इमारतें यहाँ देखनेको मिलती हैं, उतनी ऊँची इमारतें जापानके मार्गमें कहीं नहीं मिलतीं। यहाँपर २०-२० और २२-२२ मंजिल की इमारतें भी हैं। प्राचीन नगरके बाहर नया शंघाई शहर और बस रहा है जो बिलकुल नूतन तम ढंगसे बस रहा है। यहाँकी इमारतें ऊँची नहीं हैं। परन्तु खूब साफ सुथरी हैं और प्रत्येक इमारतके साथ खुला हुआ मैदान बगीचा आदि हैं। शंघाईमें अनेक राज्योंकी राजसत्ता है। इसलिए वहाँपर किरायेकी गाड़ियों आदि के लिए विभिन्न राजतन्त्रोंसे लैसन्स लेने पड़ते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने-अपने अधिकृत भूभागकी रक्षाका उचित प्रबन्ध करता है। शंघाई नगरकी कई सड़कोंपर लोहेके फाटक लगे हैं जो रातमें बन्द कर लिये जाते हैं, ताकि उस रास्तेके रहनेवाले लोगोंपर रातमें कोई आक्रमण न कर सके। अन्यान्य आतंक पैदा करनेवाले अवसरोंपर भी इन फाटकों द्वारा आत्मरक्षाका काम लिया जाता है। यहाँपर

यद्यपि जमीनकी कमी नहीं है, तथापि सड़कें आदि बहुत कम चौड़ी हैं। यहाँके विलो उड टी हाउस (Willow wood tea house) की बड़ी तारीफ पढ़ी थी। उसे भी देखा। उसमें वैसे तो कोई विशेषता नहीं है, परन्तु उसकी विशेषता केवल यह है कि वह विलो उडका बना हुआ है। उसके आस पासके बाजार बड़े चित्ताकर्षक और तड़क भड़कवाले हैं। अन्य बाजारोंमें उतनी तड़क भड़क नहीं है।

पूर्वके रास्तेमें एकाध स्थानको छोड़कर प्रायः सर्वत्र डांसकी प्रथा है। परन्तु डांसका जो भयंकर और कुत्सित दृश्य शंघाईमें देखने को मिलता है, वह अन्यत्र नहीं। कहते हैं कि वहाँपर नग्न नृत्य, नग्न स्त्री-पुरुषोंके सम्मिलित नृत्य आदिकी तो कोई बात नहीं, इससे भी अधिक अश्लील घृणित और कुत्सित नृत्य या कर्म (ईश्वर जाने उन्हें क्या कहा जाय) दिखलाये जाते हैं। स्त्रियोंकी इतनी निन्दनीय निर्लज्जता शायद ही और कहीं देखनेको मिलेगी।

शंघाईको जापानके मार्गका अन्तिम बन्दरगाह समझना चाहिए, क्योंकि उसके बाद साधारणतः मोज्जी आता है जो जापानका ही बन्दरगाह है। परन्तु जिस बार हम लोग गये थे, उस बार जहाज रास्तेमें डेरिन नामक एक बन्दरगाहमें और भी ठहरा था। डेरिन बड़ा साफ सुथरा और सुन्दर बन्दरगाह है। यहाँकी रातकी रोशनी दर्शनीय होती है। डेरिनमें जापानमार्गके सब स्थानोंसे अधिक सरदी पड़ती है। वैसे तो शंघाईसे सरदी पड़ने लगी थी, और जापान तक बराबर रही। परन्तु डेरिनकी सरदी सबसे अधिक दुःख-कर थी।

डेरिन हम लोग २३ अप्रैलकी शामको पहुंचे थे और वहांसे २४ अप्रैलको प्रातःकाल रवाना होकर २६ अप्रैलको मोजी पहुंचे। इस बीचका रास्ता, जाते समय, शायद सबसे अधिक खराब था। इससे कई आदमियोंको समुद्री बीमारी हो गयी; परन्तु मोजी पहुंचनेके बाद सबकी तबीयत ठीक हो गयी। मोजीसे हमारा जहाज २८ अप्रैलको प्रातःकाल कोबे पहुंचा। कोबे ही हमारी यात्राका अन्तिम बन्दरगाह था। अतः हम सब तो वहीं पर उतरे और जापानी मित्रों एवं जापान-प्रवासी भारतीय भाइयोंकी सहायतासे एक स्थान ठीककर वहीं अपना डेरा जमाया।

वहांपर निश्चित और यात्रा भरके लिए स्थायी निवास-स्थानका प्रबन्ध करके हम लोगोंने जापानके विभिन्न नगरों और रमणीय वस्तुओंका अवलोकन किया तथा मिलने योग्य व्यक्तियोंसे मिलकर अपनी जिज्ञासाएँ तृप्त करनेका प्रयत्न किया। हम लोगोंको इस बातका दुःख रहा कि हमारे पास समय बहुत कम था और पूरे एक महीनेसे अधिक हम वहां न रह सके। फिर भी इस अवधिका एक एक क्षण उपयोगमें लानेके लिए हम लोगोंने कोई उपाय उठा नहीं रक्खा। हम २८ अप्रैलको वहां पहुंचे थे और २८ मईको वहांसे वापसी यात्राके लिए रवाना हुए।

यात्रा और यात्रियोंके संस्मरण

जापानकी जिस यात्राका वर्णन पिछले अध्यायमें किया गया है, उसका आयोजन 'न्यू इण्डिया कमर्शियल सिण्डीकेट' नामके एक फार्मने किया था। इस फार्मके संगठनकर्ताओंका यह कहना था कि उन्होंने इस का संगठन इसलिए किया है कि भारत और जापानका व्यापारिक सम्बन्ध दृढ़ हो और सनातन धर्मी हिन्दुओंमें भी विदेश यात्राके भाव जागृत हों। उनके इस कथन पर सन्देह करना शिष्टाचारके अनुकूल न होगा। इसलिए इसे हमें मान लेना चाहिए। परन्तु यदि कोई शंकाशील व्यक्ति इस पर शंका ही करे तो इतना तो निस्सन्देह सत्य है कि इस यात्रासे उक्त दोनों अभिप्रायोंकी
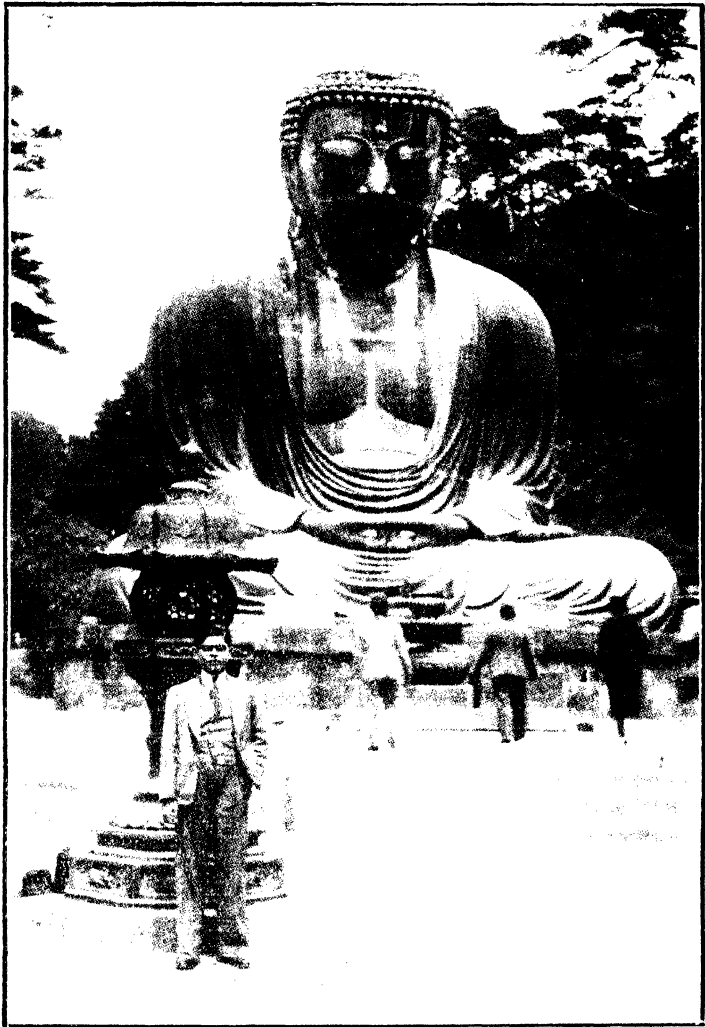
कामाकुराकी बौद्ध प्रतिमा
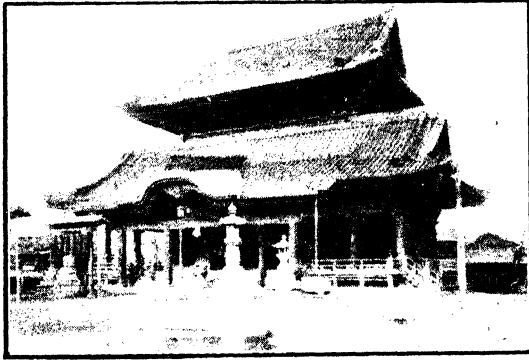
नागोयाका एक मन्दिर

मन्दिरोंमें खुदे हुए कपित्रय

सिद्धि होती थी और किसी अंश तक वह हुई भी। अस्तु। इस आयोजनमें यात्रियोंके लिए शुद्ध खान-पानकी व्यवस्था थी। इसके लिए सिण्डीकेटने पूरी यात्राके लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री ले ली थी और ब्राह्मण रसोइये तथा अपने नौकर आदि भी साथ थे।

इस कार्यके आयोजक तीन मारवाड़ी युवक थे—सर्व श्री म्हालीरामजी बजाज, गौरीशंकरजी जालान और बाबूलालजी भालोटिया। श्रीम्हालीरामजी इन तीनोंमें सबसे बड़े, अनुभवी और बुद्धिमान थे और उन्हींकी देखरेखमें सब काम होता था। इस दृष्टिसे वे सबसे प्रमुख कार्यकर्ता थे। प्रमुख कार्यकर्ताको जहाँ कुछ अधिकार मिलते हैं, वहीं उसे दूसरोंकी आलोचनाका पात्र भी बनना पड़ता है। श्रीम्हालीरामजीको भी इन दोनों बातोंका अनुभव हुआ था। जब-जब आलोचनाके प्रसंग आये, तब-तब सबसे अधिक आलोचनाएँ सुननी पड़ीं श्रीम्हालीरामजीको ही। परन्तु इस प्रकारके प्रसंग नहींके बराबर आये। यात्रियोंकी शिष्टता और सभ्यता एवं कृपा और सहानुभूतिके कारण सब कार्य शांतिके साथ ही सम्पन्न हुआ। श्री गौरीशंकरजी शांतिप्रिय और सबको राजी रखने वाले व्यक्ति थे। अतः यद्यपि म्हालीरामजीके बाद कामका भार उन्हीं पर था, तथापि उन्हें आलोचनाएँ सुनने या सहनेके प्रसंग प्रायः आये ही नहीं। रहे श्री बाबूलालजी, सो वे तो लड़के ही थे। वयमें तो वे लड़के थे ही, स्वभावसे और भी अधिक लड़के थे। इसलिए वे इन सब बातोंसे परे थे। वे तो यात्रियोंके खिलौनेसे थे। सिण्डीकेटमें मैं और श्री के० श्रीनिवासन और थे। हम लोगोंके साथ कोई

विशेष बात नहीं हुई। श्री श्रीनिवासनके साथ तो हो ही न सकती थी। किसीके सम्पर्कमें अधिक आना उन्हें पसन्द ही न था। वे अपने कामसे काम रखते थे—शायद कामसे भी काम न रखते थे। ग्रामोफोन बजाना शायद उन्हें अधिक पसन्द था। अतः सन्ध्या समय बैठकखानेमें आकर वे चुपचाप ग्रामोफोन बजाया करते थे। एक नवोढा नायिकाकी भाँति लजाते और सकुचाते हुए आना, एक-एक कर प्रायः सब रेकार्डोंको बजाना और सामान यथास्थान रखकर चला जाना। यह वे इतनी अदाके साथ करते थे कि देखते ही बनता था।

सिण्डीकेटको यात्राका आयोजन करनेमें बड़ी कठिनाइयां पड़ी थीं। परिमित साधनोंको लेकर ज्ञान और अनुभवकी कमीकी उपेक्षा करके यह काम किया गया था। फिर भी यह संयोजकोंका सौभाग्य था कि यात्रा सफलतापूर्वक समाप्त हुई।

इस यात्राकी अनेक मनोरंजक और बहुमूल्य स्मृतियाँ हैं। सबका उल्लेख न तो यहां सम्भव ही होगा और न आवश्यक ही। अतः इनमेंसे कुछका उल्लेख किया जाता है।

सबसे पहले ही—शायद रंगून पहुंचनेके भी पहले जो घटना हुई, वह बड़ी ही विचित्र थी। पटनेके रायबहादुर राधाकृष्णजी जालान, यद्यपि यात्रामें साथ न जा सके थे, तथापि इस आयोजनसे उनकी पूरी सहानुभूति थी। अतः उन्होंने चलते समय कई वस्तुएँ उपहार स्वरूप प्रदान की थीं। इन वस्तुओंमें थोड़ी-सी बेशकीमती माजूम भी थी। एक दिन कुछ यात्रियोंके मनमें आया कि माजूम खायी

जाय। वैसा ही किया गया। मि० जोशी और मि० रावने भी खायी थी। इन दोनों सज्जनोंको बड़ा नशा चढ़ा। मि० जोशीकी हालत तो इतनी खराब हो गयी कि जहाजके डाक्टरको बुलाकर दवा करानी पड़ी, तब तबीयत ठीक हुई। परन्तु उसके बाद फिर इस घटना की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

रंगून पहुंचने पर एक रसोइयेकी तबीयत खराब हो गयी। उसके पेटमें दर्द था। डाक्टरने बताया कि आँतकी बीमारी है। इसलिए घबड़ाहट हुई। कैप्टनने सलाह दी कि उन्हें रंगूनमें ही छोड़ दिया जाय। उनके छोड़नेके नामपर एक दूसरे रसोइया साहब भी बिगड़ गये। आप बोले यदि वह छोड़ दिया जायगा तो मैं भी न जाऊँगा। अब बड़ा विकट प्रश्न उपस्थित हुआ। ऐसी दशामें यह आवश्यक समझा गया कि रंगूनसे ही एक रसोइयेका प्रबन्ध और किया जाय। जहाज उसी दिन शामको रंगूनसे रवाना होनेवाला था। केवल चन्द घंटे हाथमें थे। इतने समयमें ही उस रसोइयेका फोटो लेना, पासपोर्ट करवाना, तैयारी करना सब कर लेना। यह कैसे सम्भव हो? पासपोर्टकी दिक्कतोंका हाल हम-लोग कलकत्तेमें देख चुके थे। अतः किसी प्रकार भी यह विश्वास नहीं होता था कि सब काम इतनी जल्दी हो जायगा। और सब चाहे हो भी जाय परन्तु पासपोर्ट तो नहीं मिलेगा, यही धारणा थी। बात वहांके प्रतिष्ठित, रईस श्रीबनारसीलालजी केड़ियाके पास पहुंची। आपने कहा मैं अभी सब काम कराये देता हूं और वास्तवमें उन्होंने केवल दो-ढाई घंटोंमें ही सारा प्रबन्ध करा दिया। उनकी पहुंच देख कर

हम लोग उस समय दंग रह गये। रंगूनके सर्वश्री बनारसीलालजी-केड़िया, सोनीरामजी पोद्दार, रामेश्वरजी सिंघानियां, बालाबक्सजी बजाज आदिने हम लोगोंके प्रति बड़ा प्रेमपूर्ण व्यवहार किया।

रंगूनके बाद कुछ यूरोपियन यात्री भी सेकेण्ड क्लासमें आ गये थे। हम लोग भी सेकेण्ड क्लासमें ही थे। यद्यपि हमारे रहने, खाने-पीने आदिका स्थान अलग था, परन्तु खेलने और डेक पर बैठनेका स्थान सबका सम्मिलित था। हम लोग डेक पर अकसर खेला करते थे। एक दिन प्रातःकाल हम लोग खेल रहे थे। अचानक एक यूरोपियन महिला आ गयीं और उन्होंने हम लोगोंके साथ ही खेलनेकी इच्छा प्रकटकी। फिर बड़ी देर तक खेलती रहीं। हमें उनकी इस आजादीको देख कर आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी। कितनी स्वतन्त्रता थी उस महिलामें! बेचारी हारने लगी। कुछ लोग मुस्कराये। "Well don't wish me a defeat" कह कर उसने उत्तर दिया। वह हार सकती थी। परन्तु हमारे खिलाड़ी इतने अनुदार नहीं थे। अतः उसकी हार नहीं हुई। फिर तो वह जब तक रही, तब तक बीच-बीचमें इसी प्रकार खेलती रही।

अन्य यात्रियोंमें सिंगापुरके सी० आई० डी० के उच्च पदस्थ कर्मचारी रायबहादुर पृथ्वीराज मेहता, जो अपने परिवारके साथ उसी जहाजसे सिंगापुर जा रहे थे, बड़े आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्ति प्रतीत हुए। आपके व्यवहारमें इतनी मधुरता और शिष्टता थी कि जिसके सम्पर्कमें आये सबको उन्होंने मुग्ध किया। आपने सिंगा-

पुरमें कुछ पुलिसवाले साथ कर दिये थे, जो हमें सब दर्शनीय स्थान दिखला लाये थे।

पेनांगमें हमें सर्वश्री डा० जगतसिंह, बरकतराय, गाँडालाल, मक्खनलाल, पोपटलाल आदि महानुभावोंसे और सिंगापुरमें सर्वश्री-लाभशंकर, हरीलाल आदिसे बड़ी सहायता मिली थी।

हांगकांगसे जहाज अमोय पहुंचा था। उस समय हमारे पास शाक-भाजी नहीं थी। अमोयमें केवल एक घंटा जहाज ठहरनेवाला था। अतः कैप्टन किसीको बाहर जाने नहीं देता था। इधर शाक न होनेके कारण हम लोगोंको कठिनाई थी। अन्तमें बहुत कहने-सुनने पर कैप्टनने इजाजत दी कि एक घंटेके अन्दर तुम लोग सामान लेकर आ जाओ। मैं और म्हालीरामजी साथ-साथ निकले। सौदा सुलुफ करते-करते देर हो गयी। कुछ तो इसलिये भी हम लोग निश्चिन्त थे कि जहाज वालोंने अपना आदमी साथ दे दिया था कि वह हम लोगोंको समय पर वापस ले आवेगा। खैर, जब हम सामान खरीद कर समुद्रके किनारे आये तब देखा कि जहाज चला गया है। अब हम लोगोंके होश हवा हो गये। इतने ही में जहाज कम्पनी का एक एजेण्ट मिला और उसने कहा कि आप लोग पाइलटके बोटसे जाइए। हर बन्दरगाह पर आते और जाते एक निश्चित दूरी तक उस बन्दरगाहका पाइलट ही जहाज चलाता है। यह उस निश्चित स्थान पर जहाज आनेके समय आ जाता है और जाते समय वहां तक छोड़ आता है। उस स्थान तक छोड़ आनेके बाद स्टीमर बोटसे वह वापस चला आता है। कैप्टनने इसी बोटसे हम लोगोंको लानेका

प्रबन्ध कर दिया था। वह स्वयं रुक इसलिए न सका था कि अमोय में पानीकी गहरायी कम है और ज्वारमें ही जहाज चल सकता था और उस समय उसे ज्वार मिल गया था। यदि वह रुकता और भाटा आ जाता तो जहाजको कई घंटे रुका रहना पड़ता।

जहाजके अन्य सब स्थान तो हम लोगोंने देखे थे, इञ्जन घर नहीं देखा था। अतः यह इच्छा हुई कि इसके लिए भी समय निकाला जाय। कैप्टनसे कहा, उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया। फिर दो टोलियां करके एक-एक दिन हम सब लोग उसे देखने गये थे। इञ्जिनियर हमें सब समझाता जाता था। इञ्जिनघर बहुत बड़ा होता है। भीमकाय मशीनें, प्रोपेलरको चलाने वाले सिलेण्डरकी भयङ्कर गुफा-सी बनी हुई कोठरी आदि देख कर आतंक-सा छा जाता है। रातोदिन कभी-कभी हफ्तों तक यह इञ्जिन बराबर चला करता है। इस घरमें ऐसी भयंकर राक्षसी माया रची हुई है कि देख कर भय मालूम होता है।

कोबे हम लोग (मैं और म्हालीरामजी) एक दिन पहिले ही पहुंच गये थे। वहां इस्टर्नलाजमें श्रीशराफके यहां ठहरे थे। अन्य भारतीय यात्री भी ठहरे थे। एक दिन एक मद्रासी सज्जन मिले। अपने आप ही अपना परिचय देते हुए उन्होंने अपना कार्ड दिया। वे बड़े सुशील और संस्कृत व्यक्ति थे। बादमें जब यह मालूम हुआ कि वे प्रिं० शेषाद्रिके भाई हैं तो और भी प्रसन्नता हुई, क्योंकि मि० शेषाद्रिके निकट बैठ कर हिन्दू विश्वविद्यालयमें मुझे शिक्षा प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हो चुका था।

इसी प्रकार वहीं पर एक मेरे अपने पुराने मित्र भी मिल गये। किसी जमानेमें मैं और वे बम्बईमें एक साथ पढ़ते थे। उन्होंने मुझे देखा, मेरे पास आये। बोले,—"तमें मुम्बई थी आवो छो ?" मैंने जवाब दिया,—"न, हूं कलकत्ता थी आऊँ छूं।" "तमें मुम्बई मां न्यू हाई स्कूलमां भणताता के ?" "हां, "मने ओड़खो छो ?" "न, भूली गयो छूं" "मारुं नाम पालिया·······"। "ओ हो मि० पालिया·······" कह कर हम लोग बड़े प्रेमसे गले मिले। कोई २२-२३ वर्ष बाद यह मुलाकात हुई थी। बड़ा आनन्द आया।

एक मनोरंजक घटनाका उल्लेख अभी और करना है। हम लोगोंके यात्री-मण्डलमें रायबहादुर लोकनाथ प्रसादजी ढांढनियां एक विशेष व्यक्ति थे। उन्होंने बहुत-सा सामान खरीदा था। साथमें अच्छी कारीगरीकी लकड़ीकी बनी हुई दो भैंसे भी खरीदी थीं। उनकी इच्छा हुई कि इन भैंसोंको किसीके द्वारा अन्य सामानके पहिले ही कलकत्ता भेज दें। इसकी चर्चा उन्होंने जहाजके डाक्टरसे की। डाक्टर साहबने उनको पहुंचा देनेका भार ले लिया। तदनुसार लोकनाथजीने अपने प्राइवेट सेक्रेटरीसे कह दिया कि वे घरको तार करदें कि जहाजके वापस पहुंचने पर वे लोग आकर डाक्टर साहबसे भैंसे ले लें। सेक्रेटरी साहबने इसी आशयका तार दे दिया। मगर उन्होंने यह नहीं लिखा कि ये भैंसे लकड़ीकी बनी हुई केवल हाथकी कारीगरीकी चीजें हैं। यहां वालोंने स्वभावतः यह समझा कि जिन्दा भैंसें आ रही हैं। उन लोगोंने भैंसे उतरवानेके लिए बड़ी तैयारी की। तार पाकर यहां बड़ा कौतूहल हुआ। रायबहादुर साहबने जापानसे

भैंसे भेजी हैं ! बड़ी दुधार होंगी, बड़ी अच्छी होंगी, उन्हें इस प्रकार लाया जायगा, ऐसे रखा जायगा आदि-आदि न जाने कितनी बातें सोच डाली गयीं। तैयारी भी उसीके अनुरूप की गई थी। ७-८ आदमी उन्हें लानेके लिये जहाज पर गये और अन्तमें लकड़ीके खिलौने लेकर वापस लौटे। सबको बड़ी निराशा हुई। लोकनाथजी के पास जब इसकी खबर पहुंची तो वे खूब हँसे और सारा किस्सा सुना कर अन्य यात्रियोंको भी हँसाया।

इस यात्रामें गये हुए यात्रियोंमें सबसे वयोवृद्ध और विद्यावृद्ध थे इलाहाबाद हाईकोर्टके रिटायर्ड जज रायबहादुर पं० कन्हैयालालजी। पंडितजी बड़ी साधु प्रकृतिके गम्भीर और सदाशय सज्जन हैं। आप की आयु ७० वर्षकी होगी, तथापि आज इस वार्धक्यमें भी आपमें आश्चर्यजनक कार्यशक्ति है। भ्रमणके परिश्रमसे तो ऐसा मालूम होता था, कि वे कभी थकते ही न थे। बड़े-बड़े नवयुवकोंसे भी दो कदम आगे ही रहते थे। प्रत्येक वस्तुको देख लेनेकी, उसके विषयकी अधिकसे अधिक जानकारी प्राप्त कर लेनेकी जितनी उत्सुकता आप में थी, उतनी बहुत कम यात्रियोंमें थी। आपके स्वभावमें जहाँ गम्भी-रता थी वहां विनोदकी भी यथेष्ट मात्रा थी। मि० जोशीके साथ आप अधिकांशमें विनोद किया करते थे। भ्रमणार्थ निकलते समय कभी-कभी बड़ा मजा आता था। मि० जोशी अधिक परिश्रम सहन न कर सकते थे। अतः कभी-कभी वे विश्रामकी इच्छा करते और उधर पण्डितजी उन्हें अपने साथ ले जानेके लिए बाध्य करते। बेचारे जोशीजी उस समय बड़े असमंजसमें पड़ जाते थे। पंडितजी

हमारे दलके नेता और योग्यतम व्यक्ति थे। आप आचार-विचारके बड़े पक्के निकले। यात्रामें खान-पान सम्बन्धी परहेज तो प्रायः सबने किया, परन्तु आपके समान परहेज शायद ही किसी अन्य व्यक्तिने कर पाया होगा। आपको धार्मिक और शिक्षा स्थानोंसे विशेष रुचि थी। इन पर आपने ध्यान और समय भी सबसे अधिक लगाया।

आयुमें, पंडितजीके बाद शायद रायबहादुर सखीचन्दजी जैन ही सबसे बड़े थे। सखीचन्द्जी बिहारमें डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल आफ-पुलिसके उच्च पद पर रह चुके हैं और आजकल कलकत्तेमें 'रिटायर्ड लाइफ' बिता रहे हैं। आपके स्वभावमें यद्यपि नम्रता और उग्रता दोनोंका संमिश्रण है, तथापि प्राधान्य नम्रताका ही है। आपने अपने व्यवहारसे सदैव सबको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा की। परन्तु स्वयं बेचारे यात्रा भर कष्टमें ही रहे। जहाज पर सवार होते ही चेचक का टीका लिया उसके बादसे ऐसी हालत बिगड़ी कि सारी यात्रा बेचारे बीमार ही पड़े रहे। इतनी कष्टप्रद और अहितकर यात्रा शायद किसी की न रही होगी। जिस उत्साहसे आप गये थे वह, दुर्भाग्य है कि पूरा न हो सका।

मुंगेरके प्रसिद्ध रईस रायबहादुर दलीपनारायणसिंहजी भी शायद आयुमें सखीचन्द्जीके ही बराबर होंगे। आप भी यात्रामें आरम्भसे ही थे। यद्यपि चलते समय आपकी तबीयत अच्छी न थी, तथापि यात्रामें आपको कष्ट नहीं हुआ और आप स्वास्थ्य लाभ करके वापस लौटे। आप अधिकांशमें एकान्तप्रिय और शान्तस्वभाव

के व्यक्ति हैं और तड़क भड़कके अधिकांश पक्षपाती नहीं मालूम हुए। आपके साथ ही आपके सेक्रेटरी श्री० ईश्वरप्रसादजी थे, जिन्हें हम लोग प्यारसे बुद्धू बाबू कहा करते थे (यही उनका प्यारका नाम भी है) बुद्धू बाबू तो स्वभावसे गौ हैं।

पं० अम्बादत्तजी जोशी आयुमें उक्त सज्जनोंसे छोटे होंगे। आप पञ्जाब गवर्नमेंटके इरीगेशन डिपार्टमेण्टमें उच्च पदस्थ कर्मचारी हैं। दाँत गिर गये हैं, बाल भी पक चले हैं। आपकी धार्मिक—विशेषकर दार्शनिक बातोंसे बड़ी दिलचस्पी है। इस विषय पर आप पं० कन्हैयालालजीसे अकसर बात चीत किया करते थे। इस प्रकार गम्भीरता धारण करनेके काफी कारण उन्हें प्राप्त हैं। वे गम्भीर हैं भी। परन्तु उस गम्भीरताके साथ ही साथ उनमें विनोद भी बहुत हैं। छोटे बड़ेका भेदभाव तो उनमें था ही नहीं। सबसे हँसकर बोलना आनन्दसे रहना, यह उनके व्यवहारका केन्द्र-बिन्दु था। कभी-कभी लोग उन्हें खिझाते भी थे। वे कुछ खीझ भी जाते थे, परन्तु यह सब सीमित रहा विनोद तक ही।

कलकत्तेके प्रसिद्ध फर्म हीरालाल अग्रवाल एण्ड कम्पनीके श्री० बंशीधरजी अग्रवाल देखनेमें तो कुछ रूखेसे, परन्तु व्यवहारमें बड़े मधुर प्रतीत हुए। अपना सब काम नियमानुसार करना, सबसे मिलना जुलना, सबके सुख दुःखमें आवश्यकतानुसार काम करना, प्रातःकाल नियमपूर्वक टहलना और अपने कामको कभी डाल न रखना—यह आपकी दिनचर्या थी। जितनी नियमबद्धता बंशी बाबूमें दिखलायी पड़ी। उतनी यात्री दलके अन्य सदस्योंमें नहीं

मिली। आपके साथ आपके सुपुत्र श्रीमहेशप्रसाद अग्रवाल भी थे।

भागलपुरसे हमारे साथ कई आदमी गये थे। जिनमें वहांके शील-वान रईस, रायबहादुर लोकनाथप्रसादजी ढांढनियां प्रमुख थे। वे यद्यपि आयुमें अधिक बड़े न थे, तथापि व्यवहारमें वे किसीसे छोटे नहीं थे। इनकी सरलता, इनका निरभिमान, इनके हृदयकी सहानुभूति, मानव समाजके अनुकरणकी वस्तु है। सबसे हृदय खोलकर मिलना, अपने पार्श्ववर्ती लोगोंका सदा ध्यान रखना, साथियोंसे मिलकर रहना आदि तो उनके स्वभावमें शामिल हो गये हैं। सौदा खरीदनेका उन्हें नशा था। जहाँ गये अंधाधुंध सौदा खरीदा। भ्रमण आदिकी इतनी उत्सुकता थी की कभी कभी—अनेक बार तबीयत खराब होने पर भी घूमने जरूर गये। आप हीने दो भैंसें खरीदी थीं, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। आपके साथ आपके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री० शिवदत्तजी खेतान और एक नौकर भी था।

भागलपुरके दूसरे सज्जनोंमें बरारी स्टेटके श्रीनरेश मोहन ठाकुर, जिनके साथ उनके प्राइवेट सेक्रेटरी दिनेशचन्द्र घोष भी थे और श्री० मोतीलाल ढांढनियां थे। नरेश बाबू बड़े गम्भीर स्वभावके परिष्कृत रुचिके रईस हैं। शिक्षित तो हैं ही साथ ही खेलकूद और गाने बजानेमें भी प्रवीण हैं। अक्सर जहाज पर रक्खे हुए पियानोको बजाया करते थे। उनमें शांतिप्रियता भी खूब है। किसीके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी शिकायत करते हुए शायद उन्हें किसीने कभी न सुना होगा।

यही हाल श्री० मोतीलालजीका था। वे परहेजी बड़े हैं। एक नियमित ढंगका भोजन वे करते थे। वह उन्हें मिल जाता था। कभी-कभी उसमें कुछ गड़बड़ी भी होती थी, तो भी बेचारे चुपचाप बर्दाश्त कर लेते थे। स्वास्थ्य रक्षाकी ओर वे बराबर ध्यान रखते रहे और जब-जब आपकी तबीयतमें जरा भी गड़बड़ी मालूम हुई, तब-तब बड़ी सावधानीसे उपचार किया।

पार्टीके सदस्योंमें इलाहाबाद हाईकोर्टके एडवोकेट पं० रामकृष्ण दवे शायद सबसे अधिक आकर्षक व्यक्ति थे। ३५-३६ वर्षकी आयु, स्वस्थ और सुडौल शरीर, सुन्दर तेजस्वी मुखमण्डल, भरा हुआ गौर वर्ण चेहरा, बड़ी बड़ी सरस आँखें, साफ सुथरा रहनेका ढंग, कार्य करनेमें तत्परता और उत्सुकता, सब मिलकर वे इतने आकर्षक बन गये थे कि यह सम्भव ही न था कि पार्टीके सम्पर्कमें आने वाला कोई व्यक्ति उनकी उपेक्षा कर सके। इन सबके ऊपर इतना सौजन्य, इतना शिष्टाचार, इतनी सभ्यता, इतना प्रेम उनमें था कि जो सम्पर्कमें आया वह उनका बनकर ही रहा। प्रत्येक बात जान लेनेकी उनमें अपूर्व उत्सुकता थी। उन्होंने यात्राका थोड़ा-सा समय भी व्यर्थ नहीं खोया। आप पं० कन्हैयालालजीके भतीजे हैं। आप, पंडितजी और आपके एक और भाई श्री० व्यासजी सदा साथ रहते थे। आप-लोगोंने हांगकांग उतर कर कैण्टन तककी यात्रा की थी जो दूसरे यात्री नहीं कर पाये थे। जापानमें भी आप जिन-जिनके सम्पर्कमें आये सब आपके व्यवहारसे अत्यधिक प्रभावित हुए।

आपके साथी पं० मोवालालजी व्यास, बर्मामें एक शुगर

मिलके मैनेजर हैं। वे हम लोगोंके साथ रंगूनसे शामिल हुए थे। व्यासजी अच्छे खिलाड़ी हैं और एक पक्के खिलाड़ीमें जो गुण होने चाहियें, वे व्यासजीमें प्रचुर परिमाणमें विद्यमान हैं। लड़ाईके मौके पर वे किसीसे समझौता करनेको तैयार नहीं, परन्तु लड़ाई पारस्परिक व्यवहारमें वैमनस्य उत्पन्न करनेका कारण बन जाय इतनी संकीर्णता भी उनमें कभी नहीं आयी। एक आदर्श खिलाड़ीकी भांति जब लड़ना उचित समझ पड़ा, तब वे डटकर लड़े और लड़ाई खतम होते ही मनका मालिन्य भी धो बहाया। उनके सम्बन्धमें लोगोंको गलतफहमी हो सकती है और जो लोग लड़ाईको मनोमालिन्यका स्थायी कारण बना लेनेके आदी हैं, उनमें तो और भी गलतफहमी हो सकती है। परन्तु जिन्होंने उनके हृदयको टटोल कर देखा होगा वे निस्सन्देह कह सकेंगे कि उनमें ईर्षा या द्वेष नामकी कोई वस्तु न थी। उनके और दवेजीके रहनेसे खेल कूदका बड़ा आनन्द रहता था। दोनों साथी अच्छे खिलाड़ी हैं।

पार्टीमें सिकन्दराबादके श्रीरामजीवन कनोई और श्रीगुलाबरायजी सोनथलिया तथा हैदराबादके श्री बी० एच० लाहौटी और सी० जी० राव भी थे। श्री रामजीवनजी वैसे तो अच्छे आदमी, थे परन्तु उनमें क्रोधकी मात्रा कुछ अधिक थी, इसलिए कभी-कभी उन्हें स्वयं अशान्ति होती थी। इसके विपरीत उनके साथी श्री गुलाबराय-जी बड़े सीधे सादे और गमखोर आदमी थे। किसीने कोई बात जान या अनजानमें कहीं भी या किसीसे कोई भूल भी हो गयी तो

वे अधिकांशमें उसकी अपेक्षा करके टाल देने वाले आदमी थे। श्री लाहोटी शायद यात्री दलमें सबसे छोटे थे। उनमें उसी अनुपातमें लड़कपन भी था। बड़े प्रसन्न चित्त, और विनोदी जीव हैं। सदा हँसते-हँसाते रहते थे। मि० राव श्री० लाहोटीके संरक्षकके रूपमें साथ थे। राव साहब लाहोटीजीके काटन मिलमें कार्डिंग मास्टर हैं। आपको ज्योतिषका अच्छा ज्ञान है और दार्शनिक विषयों पर वर्तालाप करनेका शौक है। आप बात करते समय आसानीसे उत्तेजित हो जाया करते थे। जब हम लोगोंको उनकी यह कमजोरी मालूम हुई तो हम लोग जान-बूझकर उन्हें छेड़ देते थे। फिर उनके बिगड़नेका मज़ा देखते थे। जब बहसके लिए दलीलें उनके पास न रहतीं तब वे अकसर कहते—Come with me to Arunachalam. I shall show you a Yogi. He will prove the existance of God practically. कभी कभी जब अधिक नाराज हो जाते और तैशमें आकर कहते आप क्या हैं? क्या जानते हैं? और इसके जवाबमें जब हम लोग—अधिकांशमें उन्हें चिढ़ानेके अभिप्रायसे ही कह बैठते हम ईश्वर हैं, सब कुछ जानते हैं, तो बड़े नाराज होकर कहते—You are a mere bug you know nothing. इस प्रकार उनके साथ छेड़-छाड़ करनेमें बड़ा मजा आता था। परन्तु न तो उन्होंने ही और न हम लोगोंमेंसे ही किसीने किसी बातका कभी बुरा माना।

यात्री-दलका यह बड़ा सौभाग्य था कि उसके जितने सदस्य थे,

सबके सब बड़े ही भले और सभ्य थे। यही हाल जापानमें मिलने वाले मित्रोंका भी था। मि० सहाय इन मित्रोंमें सबसे प्रमुख हैं और यह स्वीकार करनेमें कोई संकोच न होना चाहिए कि यात्री-दलके साथ अपना बहुमूल्य समय बिता कर आपने अनेक प्रकारसे हम लोगोंको लाभ पहुँचाया था। हमारे दूसरे सहायक थे, इन्डो-जापानीज एसोसिएशनके मि० ए० साकाई। ये जापानी सज्जन हैं और बड़े विनम्र और पण्डित हैं। आपने जापानी रहन सहनके सम्बन्धमें एक पुस्तक भी लिखी है। जापानके सम्बन्धमें अनेक बातें हमें आपसे मालूम हुईं। एक सज्जन और हैं जिनका स्मरण बरबस आता है। वे हैं मि० मारिया। ये पंजाबी नवयुवक हैं और जापानमें एनेमेलिंगकी शिक्षा पा रहे हैं। इनके द्वारा भी हम लोगोंको बड़ी सहायता मिली। इन सज्जनोंके अतिरिक्त मि० मेहरोत्रा, मि० झा, मि० खरवर, मि० कपूर, मि० पाण्डे आदि अन्य सज्जनोंसे भी बड़ी सहायता मिली। खास कर मि० मेहरोत्राने तो बड़ी ही कृपा की। मि० झाने भी पार्टीके लिए स्थान आदि ठीक कर देनेमें बड़ी सहायता दी।

इस प्रकार यात्राको सफल बनानेमें इन सब भाइयोंका हाथ था। इन सबकी बड़ी सुखद स्मृति हमारे हृदयमें है।

भारत और जापानका सम्बन्ध

एशिया महाद्वीप (या जम्बू द्वीप) की सीमाका निर्देश करते हुए जिस समय जापान और भारत दोनों इसके अन्तर्गत मान लिये गये थे, उसी समयसे इन दोनों देशोंमें बंधुत्वका सम्बन्ध तो जोड़ ही दिया गया था। उस समय बन्धुत्वका यह सम्बन्ध भौगोलिक आधार पर स्थापित किया गया था। परन्तु एक बार जब सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, चाहे जिस आधार पर वह स्थापित किया गया हो, तब अनेक प्रकारसे दृढ़ या शिथिल होता रहता है। यही कारण है कि यद्यपि संसारमें केवल एशिया ही महाद्वीप नहीं है, तथापि भारतका सम्बन्ध अन्यान्य महाद्वीपोंसे न होकर इसी महाद्वीपसे

हुआ और इस महाद्वीपके प्रायः सब देश किसी न किसी आधार पर एक दूसरेसे सम्बद्ध हुए।

भारत जापानका सम्बन्ध भी केवल भौगोलिक ही नहीं बना रहा। समय-समय पर उसके साथ अन्यान्य सम्बन्ध भी स्थापित होते रहे और होते जा रहे हैं। जब भौगोलिक एकता स्थापित की जा चुकी तो स्वभावतः सांस्कृतिक और धार्मिक एकता स्थापित करनेकी ओर भी ध्यान गया और भारतके उस अभ्युदयके युगमें जब भारतकी सभ्यता और संस्कृति समस्त संसारकी आदरणीय वस्तु हो रही थी, इसकी संस्कृतिका प्रचार जापानमें भी हुआ। बौद्धकालीन भारतीय सम्राटोंके प्रोत्साहन और बौद्ध भिक्षुओंके साहस एवं धर्म-प्रचार-प्रेमके कारण भारतीय बौद्धोंने सुदूर पूर्वतक का भ्रमण किया था और उसी भ्रमणमें पूर्वके एकदम किनारे जापान तक पहुंचे थे। वहां इन्होंने अपने धर्म्म और अपनी संस्कृतिका प्रचार किया था। उस समय गये हुए बौद्ध भिक्षु और राजपरिवारके लोगोंने जापानमें अच्छा सम्मान पाया और अपने धर्मके प्रचारमें उन्हें यथेष्ट सफलता मिली। यह दोनों देशोंका सांस्कृतिक सम्बन्ध था।

इस सम्बन्धके स्थापित हो जानेके बाद दोनों देशोंकी घनिष्टता और भी बढ़ी। अब वे केवल भूगोलके आधार पर ही नहीं संस्कृति के आधार पर भाई-भाई हुए। इससे भाईचारेका सम्बन्ध और भी दृढ़ हुआ और समय और सुविधाके अनुसार दोनों देशोंके निवासियोंका एक दूसरेके यहां आना जाना भी आरम्भ हुआ। यदि बौद्ध-

कालीन सम्राटोंकी भांति धर्म्म प्रचारकी भावना आगेके राजाओंमें भी बनी रहती, तब तो यह सम्बन्ध बहुत ही घनिष्ट हो जाता। परन्तु उसके बाद भारतवर्षकी अवस्थामें बड़ा खेदजनक परिवर्तन हुआ। उसकी राजनीतिक महत्ता दिन प्रति दिन क्षीण होती गयी, आपसकी फूट, विदेशियोंके हमलों आदिने उसे जर्जरित कर दिया और अन्तमें तो वह अपनी स्वाधीनता भी खो बैठा। पतनके इस युगमें, जब वह अपनी ही डाढीकी आग बुझानेमें लगा हुआ था, उसे अपने अन्य भाइयोंकी ओर देखनेका भी अवकाश नहीं मिला। परिणाम यह हुआ कि बीचकी इस अवधिमें सम्बन्ध दृढ़ करनेका कोई विशेष कार्य इन दोनों देशोंमें न हो सका।

इसके बाद समयने फिर पल्टा खाया। इस बारका झुकाव पहिलेसे भिन्न था, इस बार का सम्बन्ध भारत द्वारा नहीं जापान द्वारा स्थापित किया गया और उसमें परमार्थ नहीं स्वार्थकी भावना काम कर रही थी। भारतवर्षने जो सम्बन्ध स्थापित किया था वह सांस्कृतिक था, परन्तु ज़ापानने जिस सम्बन्धका सूत्रपात किया वह व्यापारिक सम्बन्ध था। भिन्न-भिन्न देशोंसे व्यापार करनेकी सुविधाएँ जब हो गयीं, वैज्ञानिक आविष्कारोंके कारण जब विभिन्न देशों का यातायात भी आसान हो गया, उधर जब भारतवर्ष अपने कला-कौशलसे हाथ धो बैठा और अपनी रोजमर्राकी आवश्यकताकी वस्तुओंके लिए जब उसे परमुखापेक्षी होना पड़ा, तब स्वभावतः उन सब देशोंकी दृष्टि उस पर पड़ी जो व्यापारमें उन्नतिकर रहे थे और जिन्हें अपने देशमें अधिक मात्रामें उत्पन्न किये हुए मालकी खपतके

लिए बाजारकी आवश्यकता थी। इतना बड़ा और इतना सुलभ बाजार संसारमें कहाँ था ? सभी इस ओर आकृष्ट हुए। जापानने भी हाथ फैलाया। भारतने जापानको अपनाया और जापानका माल बड़ीसे बड़ी तादादमें यहाँ बिकने लगा। यह व्यापारिक सम्बन्ध अबतक चल रहा है। इस बहानेसे जब दोनों देश एक दूसरेके सम्पर्क में आये तो सांस्कृतिक सम्बन्धका वह परमार्थपूर्ण प्राचीन भाव फिर जागृत हो उठा और धार्मिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध को फिरसे दृढ़ करनेका प्रयत्न यत्र तत्र आरम्भ हुआ। यह प्रयत्न पारमार्थिक था; अतः स्वभावतः भारतकी ओरसे ही आरम्भ किया गया जो अभी चल ही रहा है।

वहां जाकर यह जाननेका अवसर भी मिला कि भारतवर्षके सम्बन्धमें जापानियोंके क्या विचार हैं। यहांसे जाते ही जाते बड़े प्रेम और उत्साहके साथ जापानी भाइयोंने हम लोगोंका स्वागत किया, बौद्धभिक्षुओंने अपनी प्रथाके अनुसार ढोल आदि पीटकर तथा मन्त्र आदिका उच्चारण करते हुए हमें जहाजसे उतारा। उसीसे उनके विचार जाननेका अवसर मिला। तत्पश्चात् नागोया प्रदर्शिनीमें 'इण्डिया—डे' (भारत दिवस) मनाया गया। इन अवसरों पर वे भारतवर्षके प्रति सद्भावना ही प्रकट कर रहे थे। इण्डिया डे १ मईको नागोया प्रदर्शिनीके गवर्नर तथा उनकी मण्डलीने मनाया था। हम लोगोंको निमन्त्रित करनेकी भी उन्होंने कृपा की थी। उस समय जो भाषण

हुए उनमें स्पष्ट रूपसे उनके विचार सामने आये। फिर टोकियो, नागोया, कोबे आदि अनेक स्थानों पर जो प्रीतिभोज दिये लिये गये, उनमें भी उनके विचारोंका पता चला। इसके अतिरिक्त नागोयामें उसी अवसर पर जो बौद्ध-सम्मेलन हुआ था, उससे भी भारतके सम्बन्धमें जापानी विचारधाराका पता लगा था और समय-समय पर व्यक्तिगत रूपसे बातचीत करके जो विचार मालूम हुए वे अलग। इन सब स्थानोंमें भारतवर्षके प्रति जापान निवासियोंका आदर-भाव स्पष्ट रूपसे व्यक्त होता था। प्राचीन कालमें भारतवर्षने धर्म और संस्कृतिकी जो शिक्षा दी थी, उसका उल्लेख वे कृतज्ञता पूर्वक करते थे और भविष्यमें उस सम्बन्धको दृढ़ करनेकी आकांक्षा प्रदर्शित करते थे। नागोया एक्जीबिशनके 'इण्डिया डे' के सम्बन्धमें प्रदर्शिनीके गवर्नरने कहा था कि—"प्रदर्शिनीमें संसारके बड़ेसे बड़े देशोंसे प्रतिनिधि आये, परन्तु किसी देशके लिए इस प्रकार दिवस मनानेका आयोजन नहीं किया गया। यह हमारी कृतज्ञता और भारतवर्षके प्रति हमारे आदर भावका प्रमाण है कि हम आपके देशके लिए यह दिवस मना रहे हैं। इसे आप कम न समझिएगा। इसके बाद फिर अन्यान्य अवसरों पर यात्राकी स्मृतिमें भारतीय बौद्ध मन्दिरके लिए ढोल आदि वस्तुएँ देकर भी जापानी भाइयोंने अपने प्रेम भावकी साक्षी दी।

राजनीतिक स्थितिके सम्बन्धमें उन लोगोंने विवशता प्रदर्शित करते हुए यह कहा था कि यद्यपि हम जानते हैं कि भारतवर्ष पराधीनताकी बेड़ियोंमें बुरी तरह जकड़ा हुआ है और

इसीके कारण उसकी उन्नतिमें वाधा पड़ रही है, तथापि हम यह अश्वासन नहीं दिला सकते कि इस सम्बन्धमें हम आपकी कोई सहायता कर सकेंगे। हमारे सामने अपनी ही इतनी विकट समस्याएँ हैं जिनसे छुटकारा पानेके लिए हमें निरन्तर जुटा रहना पड़ता है। दो बड़े-बड़े राष्ट्रोंके बीच हमारा छोटा-सा देश सदा सशंक और संत्रस्त वना रहता है। इसीसे हमें छुटकारा नहीं मिलता, आपकी हम क्या सहायता कर सकते हैं ?

इस समय भारतवर्षके कोई एक हजार निवासी जापानमें होंगे। इनमेंसे अधिकांश व्यापार व्यवसायमें ही लगे हुए हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेते हैं। ऐसे आदमियोंमें राजा महेन्द्रप्रताप, श्री रासबिहारी बोस, श्री आनन्दमोहन सहाय प्रमुख हैं। इन लोगोंने—खास तौर पर श्री आनन्दमोहन सहायने अपना अच्छा स्थान वहाँ वना लिया है और जापान यात्री भारतियोंको इनसे बहुत सहायता मिलती रहती है। सार्वजनिक क्षेत्रोंमें भी श्रीआनन्दमोहन सहाय विशेष रूपसे कार्य करते रहते हैं। वे वहाँ पर कांग्रेसके मंतव्योंका प्रचार और दोनों देशोंके सांस्कृतिक सम्बन्धके लिए यत्नशील रहते हैं। न्यूनाधिक रूपमें यही कार्य राजा महेन्द्र-प्रतापजी तथा श्री रासबिहारी बोस भी करते हैं। इनके अतिरिक्त श्री चमनलाल, श्री मदनलालजी तथा कुछ गुजराती और सिन्धी व्या-पारी भी अपनी-अपनी परिस्थितिके अनुसार यथासम्भव कार्य करते रहते हैं। कुछ विद्यार्थी भी इस कार्यमें सहयोग देते हैं। इस प्रकार सबके उद्योगसे कुछ-न-कुछ कार्य होता रहता है, परन्तु

यह उद्योग संगठित रूपसे नहीं होता। यदि संगठित रूपसे उद्योग हो तो जितनी बड़ी संख्यामें भारतीय वहाँ हैं, उससे सांस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रचारका बड़ा काम हो सकता है।

इस समय दोनों देशोंमें जो सम्बन्ध स्थापित है उसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इस सिलसिलेमें हजारों जापानी भारतवर्षमें और हजारों नहीं तो सैकड़ों भारतीय जापानमें बसे हुए हैं। भारत और जापानका यह व्यापारिक सम्बन्ध दिन प्रतिदिन दृढ़तर होता जा रहा है। ऐसी अवस्थामें यदि थोड़ा प्रयत्न किया जाय तो सांस्कृतिक या धार्मिक तथा राजनीतिक प्रचारकार्य स्वल्पप्रयाससे किया जा सकता है। जापानमें कुछ भारतीय शिक्षकका कार्य कर रहे हैं, कुछ पत्रकार हैं, कुछ पुस्तक लेखक हैं। यदि ये सब भाई संगठित रूपसे अपना उद्देश्य स्थिर कर अपनी-अपनी योग्यताओंका उपयोग उस उद्देश्यकी पूर्तिमें करें, तो इस कामके होनेमें देर न लगे।

भौगोलिक रूपरेखा

जापान सम्बन्धी एक छोटी-सी पुस्तिकामें पढ़ा था "Japan's natural glories—beautiful waters, picturesque rocks and isles, matchless mountain scenery, colorful temples and shrines—will leave such pictures in your mind as will never fade."

अर्थात् जापानकी प्राकृतिक सुन्दरता—सुन्दर झरने, मनोहर पहाड़ियां और छोटे-छोटे टापू, अनुपम पार्वत्य दृश्य, भाँति-भाँतिके मन्दिर और देवस्थान—आदि आपके हृदयमें ऐसा चित्र अङ्कित कर देंगे जो कभी न मिट सकेगा। लेखकके इस कथनमें अति-

रंजन नहीं है। जापानके सुरम्य प्राकृतिक दृश्य वास्तवमें ऐसे ही प्रभावशाली हैं।

जापान एशिया खण्डका इस समय सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण देश है। वह दक्षिण उत्तरकी लम्बाईमें टेम्परेट, टोरिड और फ्रिजिट-ज़ोनमें बसा हुआ है। इन तीन प्रकारके अक्षांश आ जानेके कारण इसका जलवायु भी सर्वत्र एकसा नहीं है। दक्षिणकी ओर जापानमें सरदी कम पड़ती है और उत्तरकी सीमा पर खूब अधिक। जलवायुके इस अन्तरका कारण यह भी है कि ऊपरकी ओर वायुके शीत झोंके (Cold currents) और नीचेकी ओर (hot currents) आते हैं। फिर भी चूंकि उसकी स्थिति भूमध्य रेखासे काफी ऊपरकी ओर है। उसकी आबहवा साधारणतः शीतप्रधान है। परन्तु वहाँ पर ज्वालामुखी आदि पर्वतोंके अस्तित्वके कारण शीततामें वह तीव्रता नहीं है जो यूरोपियन देशोंमें अथवा अन्य शीत प्रधान देशोंमें पायी जाती है।

जापान एशियाके पूर्वी किनारे पर कोई २००० मीलकी लम्बाईमें बसा हुआ है। इस लम्बाईके अन्दर शीतकी प्रधानता होते हुए भी उष्णता मिलती है। परन्तु वहाँकी ग्रीष्म ऋतु हमारे देशकी ग्रीष्म ऋतुके समान वर्षके अप्रैल, मई, जून आदि महीनोंमें नहीं होती। वहाँपर गरमीके महीने हैं जुलाई और अगस्त। देशके दक्षिणी भागमें अगस्तका महीना तो काफी गरम होता है। जापानका बसन्त, जो अप्रैल, मई, जून तीन महीने रहता है, सबसे सुन्दर प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करता है। सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बरके महीने भी अच्छे होते हैं।

उस समय जापानमें हेमन्त ऋतु होती है और शेष महीने शीतकालके होते हैं। शीतमें वहांपर काफी सरदी पड़ती है। कभी-कभी बरफ भी गिरता है। फिर भी ऐसा विरला ही दिन जाता होगा जिस दिन सूर्यका प्रकाश न दिखलायी पड़े। वहाँ की ऋतुओंमें निश्चित रूपसे वर्षा ऋतु नामकी कोई चीज नहीं होती। वर्षा वहां बीच: बीचमें बारहों महीने हुआ करती है। परन्तु ऐसे समय नहींके बराबर होते हैं जब मुसलाधार पानी पड़ता हो।

पहाड़, पानी, सालभरकी बराबर वर्षा आदिके कारण जापानमें बारहो महीने जमीन हरी भरी और सुन्दर रहा करती है। जंगल, खेत, पहाड़ियां, समुद्रतट, नदी आदि सबमें एक सजीवतासी बराबर बनी रहती है। बगीचोंमें लगाए हुए तथा जंगलोंमें अपने आप फूलने वाले फूल प्राय: बारहो महीने फूला करते हैं। फूले हुए फूलोंकी यह मनोहर झाँकी वैसे तो सदा ही दिखलायी पड़ती है परन्तु बसन्त कालीन चेरी पुष्पोंकी शोभा सबसे अधिक आकर्षक और मनोमुग्ध करने वाली होती है। कुञ्जके कुञ्ज चेरी वृक्षोंको एकसे एक सटे हुए रंगबिरंगे ये फूल देखनेमें इतने सुन्दर मालूम होते हैं मानों प्रकृतिने बनश्रीके ललाट पर रत्नजटित पगड़ी बांध रखी हो। वहांकी चेरी फूलोंकी यह ऋतु जितनी सुन्दर और प्रसिद्ध है उतनी और कोई नहीं। परन्तु पुष्पावलियोंकी इस तमाम सुन्दरताका महत्व उस समय एक प्रकारसे नष्ट हो जाता है जब यह मालूम होता है कि उन फूलोंमें सौन्दर्य तो है परन्तु सुगन्ध नहीं है। यह बड़ी विचित्र बात है कि जापानी फूलोंमें देखनेकी सुन्दरता

ही सुन्दरता होती है सुगन्ध नहीं होती। इसी प्रकारका हाल वहां की चिड़ियोंका है। चिड़ियां एक तो बहुत अधिक हैं ही नहीं परन्तु जो हैं भी उनकी चहचहाट सुननेका शायद ही कभी अवसर मिलता हो। अधिकांशमें वहां की चिड़ियां बोलती नहीं हैं। इसलिए प्रकृतिके उन प्रेमियोंको, जो प्राकृतिक सौंदर्यमें पुष्पोंकी सुगन्ध पाना और पक्षियोंका कलरव भी सुनना चाहते हैं, जापानमें निराश ही होना पड़ेगा। परन्तु कलरव न होनेपर भी वहांके एकाध पक्षियोंमें बड़ी आकर्षक विशेषता है। इस प्रकारका सबसे अधिक विशेषता युक्त पक्षी है वहांका मुर्गेकी जातका एक पक्षी। यह पक्षी हाकोने फूजी आदि की ओर अधिक पाया जाता है। यह सफेद रङ्गका होता है और शरीर यद्यपि बिलकुल मुर्गेकासा होता है तथापि पूंछ बहुत अधिक लम्बी होती है। उसकी पूंछ १०-१०,-१२-१२ फीट लम्बी होती है और किसी किसीकी इससे भी अधिक।

जापानमें प्रकृतिदेवीने अपने वैभवको मुक्त हस्तसे बिखेरा है। पहाड़ियां, झरने, समुद्र, जल प्रपात, वृक्ष, लताएं, फूल, फल, गरमपानीके कुण्ड, हिमाच्छादित पर्वत, ज्वालामुखी पर्वत, नदी, तालाब, टापू, वन, बाग, आदि प्रकृतिके विभवकी जितनी वस्तुएं है, सब की झांकी वहां दिखलायी पड़ेगी। गरमपानीके कुण्ड तो वहां स्थान-स्थानपर भरे पड़े हैं और उन कुण्डोंमें ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक पदार्थ हैं जो स्वास्थ्यके लिए बड़े हितकर होते हैं। उनमें स्नान कर वहांके निवासी और यात्री बराबर लाभ उठाते रहते हैं। इस प्रकारके तप्तकुण्ड वहां ११०० ऐसे अधिक हैं। स्वास्थ्य कर स्थानोंकी भी वहां कमी नहीं है।

प्रकृतिका इतना सब विभव होनेपर भी वहां खनिज पदार्थोंकी कमी है। लोहा, कोयला, आदि रोज काममें आनेवाली वस्तुएं तक वहां यथेष्ट मात्रामें उपलब्ध नहीं होतीं; सोना, चांदी, हीरा आदि अन्य वस्तुओंकी बात तो दूर की है। परन्तु वहां पर एक बात अवश्य है कि मोती खूब काफी तादादमें पैदा होते हैं। मोतियोंकी पैदावार बढ़ानेके लिए कृत्रिम उपायोंसे भी काम लिया जाता है।

प्रकृतिके वैभवके साथ वहां उसके रोपकी भी कमी नहीं है। ज्वालामुखी पर्वत, गरमपानीके कुण्ड आदि की उपस्थितिसे यह स्वभावतः प्रकट होगा कि वहांकी जमीनके भीतर गरमी अधिक है। इसका फल यह होता है कि वहां पर अकसर भूकम्प आदि आया ही करते हैं, जिनके कारण वहांके निवासी सदा सशंक और संत्रस्त रहा करते हैं। पिछली बारके भूकम्पकी भयङ्कर कहानी समाचार पत्रके पाठकोंको याद ही होगी। आज भी उस भूकम्पके द्वारा नष्ट किये हुए पदार्थ एक प्रदर्शिनीमें रखे हुए हैं जिनके अवलोकन मात्रसे रोमाञ्च होता है। कितना भयङ्कर अग्निकाण्ड कितना भयङ्कर नर संहार और कितनी अपरिमेय साम्पत्तिक हानि उठानी पड़ी थी उस समय जापानको। इस प्रकारका भय अभी तक दूर नहीं हुआ। इसीलिए वहां पर ईंट पत्थरके मकान न बनाकर अक्सर लकड़ीके मकान बनाये जाते हैं और ईंट पत्थरवाले मकानोंको बनानेमें भूकम्पसे बचनेके उपाय पहिले ही सोच लिये जाते हैं।

जापानकी जन संख्या बराबर वृद्धि कर रही है।

अतः जापानके सामने यह एक समस्या है कि वह अपने देशकी बढ़ती हुई आबादीके रहनेके लिए स्थान कहांसे प्राप्त करे। साथ ही उसे यह भी चिन्ता है कि जन वृद्धिके साथ-साथ उसे भरण पोषणके साधन भी चाहिएं। इसके लिए उद्योग व्यवसाय की वृद्धि आवश्यक होगी और उद्योग व्यवसायके लिए कच्चे मालकी आवश्यकता होगी। कच्चा माल जापानमें स्वतः बहुत कम उत्पन्न होता है। केवल उससे वह अपनी औद्योगिक उन्नति उस हद तक नहीं कर सकता जिस हद तक वह करना चाहता है, अथवा जिस हद तक करनेकी उसे आवश्यकता है या आगे चल कर जन वृद्धिके कारण पड़ेगी। बहुत कुछ इसीलिए उसका दांत चीनपर है। इस उल्लेखसे यह प्रतिपादित नहीं करना कि जापानका चीनपर किया जानेवाला आक्रमण क्षम्य है। और न यही कहना है कि केवल अपनी आवश्यकताओंसे बाध्य होकर ही जापान चीनपर आक्रमण कर रहा है। इस आक्रमणमें उसकी साम्राज्य लिप्सा काम नहीं कर रही यह कहना कठिन है।

जापानके आदमी कदके छोटे, दोहरे बदनके और गोरे रंगके होते हैं। उनका मुंह बहुत भरा हुआ और नाक चिपटी सी होती है। आंखें बहुत छोटी-छोटी होती हैं। शरीर पर बाल बहुत कम होते हैं। रोएं आदि तो मानो होते ही नहीं। स्त्रियोंका चेहरा पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक भरा हुआ होता है। स्त्री पुरुष दोनों शरीरसे मजबूत होते हैं। पार्वत्य प्रदेशके रहनेवाले मनुष्योंमें जो कठोरता और परिश्रमशीलता स्वभावतः हुआ करती है, वह जापानियोंमें भी

कूट-कूट कर भरी हुई है। परन्तु हमारे यहांके पार्वत्य देशीय मनुष्योंकी भांति वहांके स्त्री-पुरुष अशिक्षित असंस्कृत नहीं हैं।

भाषा यहांपर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जापानी ही है। अंग्रेजीका ज्ञान यत्रतत्र लोगोंको है परन्तु उसका इतना प्रचार नहीं है कि कोई यात्री केवल अंग्रेजीसे अपना कार्य चला सके।

दर्शनीय स्थान

जापान व्यापारिक क्षेत्रमें तो अपने मालके विज्ञापनके लिये उतना सचेष्ट नहीं प्रतीत होता, अपने देशको छोड़कर अन्य किसी देशमें उसने अपने बिक्रीके मालके विज्ञापनका कोई खास प्रबन्ध नहीं कर रक्खा है, परन्तु अपने देशकी अच्छी-अच्छी वस्तुओं और अच्छे अच्छे स्थानोंका विज्ञापन उसने खूब कर रखा है। प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तुओंके लिये उसने न जाने कितनी पुस्तकें और कितनी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ निकलवाई और समस्त संसारमें वितरित करवाई हैं। यात्रा पुस्तकों (Guide books) में इन स्थानोंकी प्रशंसामें पन्नेके पन्ने भरे पड़े हैं। इस प्रशंसाके कार्यमें वह यहाँ तक

बढ़ा हुआ है कि कभी-कभी मामूली सी वस्तुको इतना बढ़ा चढ़ा कर लिखा है कि यात्रीका दिल एक बार उसे देखनेके लिये चलायमान अवश्य हो जायगा।

जिस रूपमें उसने अपने स्थानोंका विज्ञापन किया है, उसी रूपमें उसने उन स्थानोंकी रक्षाका और उनके अवलोकनकी सुविधाका भी प्रबन्ध किया है। यह सुविधा केवल मन्दिरों, संग्रहालयों आदिमें ही नहीं है, प्रकृतिके दर्शनीय स्थानों तकमें इसका सुप्रबन्ध है। जापानके प्राकृतिक दृश्य बड़े अच्छे हैं, इसमें कोई शक नहीं; परन्तु भारतवर्षके प्राकृतिक दृश्य कुछ कम नहीं हैं। फिर भी हम जापान के दृश्योंकी जितनी चर्चा सुनते हैं, उतनी भारतवर्षकी नहीं। इसका कारण इनकी यह विज्ञापनबाजी ही है। साथ ही अपने सुन्दर स्थान दिखानेकी सुविधाके कारण इनके दृश्योंका यात्रियों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि भारतवर्षमें भी इन स्थानोंकी चर्चा हो और इनके देखने वालोंके लिये सुविधाका उचित प्रबन्ध किया जाय तो भारतवर्ष अपने प्राकृतिक दृश्योंके कारण किसी प्रकार भी कम आकर्षक न रह जाय। इतना ही नहीं भारतवर्षमें प्रकृतिका जो सौन्दर्य है, उसके आगे जापानका प्राकृतिक सौन्दर्य फीका पड़ जाय।

मैं २७ अप्रेल १९३७ को जापानके व्यावसायिक नगर कोबे पहुँचा था और प्रायः ४ मई तक वहीं रहा। परन्तु इतना कार्य-व्यस्त रहा कि दर्शनीय स्थान देखनेको नहीं मिले। कोबे और ओसाका दोनों नगर तो अवश्य सरसरी तौर पर देखे परन्तु उनके आस पासकी दृश्यावलियाँ देखनेका अवसर नहीं मिला। यहाँ

तक कि रोको, माया आदिकी पहाड़ियाँ तथा गरम पानीके कुण्ड आदि तक न देख सका। रोको और माया दोनों स्थानोंमें पहाड़ी दृश्य बड़े अच्छे हैं और पानीके तप्त कुण्ड तो बड़े प्रसिद्ध हैं। वहाँ पर इन कुण्डोंके पानीसे रोगोंकी चिकित्सा भी की जाती है। इस पानीमें कुछ रासायनिक पदार्थ मिले रहते हैं जो विशेष विशेष रोगों के लिये बड़े लाभप्रद होते हैं। परन्तु कोबेमें कुछ ऐसे कार्योंमें व्यस्त रहना पड़ता था जिसके कारण वहाँसे निकल सकना असम्भव हो जाता था। फलतः जितने दिन वहाँ रहा एक ही स्थान पर रह कर समय काटना पड़ा।

कुछ समय बाद नागोया जानेकी आवश्यकता पड़ी। मेरी तबीयत अच्छी न थी। इसलिये जानेकी इच्छा भी न थी। फिर भी एक प्रकारसे जबर्दस्ती वहाँ जाना पड़ा। मगर वह जाना मेरे लाभका ही हुआ। पहिले दो तीन दिन नागोयामें ठहरा। उस समय तो कुछ देख सुन न सका। केवल एक्जीबिशनका कुछ भाग देखा। मगर उसके बाद उसी सिलसिलेमें जिस सिलसिलेमें कि नागोया जाना पड़ा था, टोकियो जाना पड़ा। वहाँ जाकर वास्तवमें मैं थोड़ा बहुत घूम फिर सका। पार्टीके अधिकांश सदस्य मेरे साथ थे और सब लोग वहाँ कोई १० दिन तक ठहरे। इस बीचमें टोकियो, योकोहामा, कामाकुरा, हाकोने, निक्को, फूजी आदि कई आस-पासके स्थान देखे।

नागोया अपने दर्शनीय स्थानोंके लिये उतना प्रसिद्ध नहीं है, जितना कि वह अपनी फैक्टरियोंके लिये। यहाँ पर पोर्सलीन का काम, टाइलका

नागोया कैसल
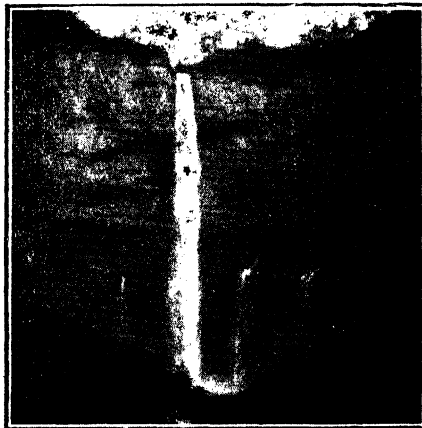
निक्कोका जलप्रपात

रातकी रोशनीका एक दृश्य

जापानियोंके बैठनेका ढंग

काम, घड़ियोंका काम, एनेमेलका काम आदि अनेक प्रकारके काम होते हैं। इन सब वस्तुओंके बनानेके लिये छोटे-छोटे और बड़े-बड़े कारखाने हैं। नागोयामें रहकर पोर्सलीन, ऐनेमेल, टाइल और घड़ीके कारखाने देखने का मौका भी मिला। पोर्सलीन और खासकर ऐनेमेलके कामके लिये बड़े कारखाने नहीं थे। कमसे कम हम लोगोंने नहीं देखे। मगर छोटे-छोटे घरोंमें छोटे पैमाने पर खूब काम होता है। चीजें बनाने में महीनों लगते हैं और कभी-कभी किसी महत्वपूर्ण वस्तुके बनानेमें तो बरसों लग जाते हैं। जिस वस्तुके बनानेमें जितना अधिक समय लगता है, उसकी कीमत भी उसी हिसाबसे अधिक होती है।

टाइलका कारखाना बड़ा था। टाइल बनानेमें पत्थर, एक खास किस्मकी मिट्टी तथा चूना आदि लगता है। यह सब सामान मिलमें काफी बड़ी तादादमें पड़ा हुआ था। पत्थर फोड़नेकी मशीन बड़ी भङ्कयर थी। बड़े-बड़े पत्थरके टुकड़ोंको वह एक ही धक्केमें चकना-चूर कर देती थी।

नागोयामें एक पुराना किला है। इसे नागोया कैसल कहते हैं। पुस्तकोंमें इसकी बड़ी महिमा गाई गई थी। इसलिये हम लोग बड़ी उत्सुकताके साथ देखने गए। मगर इसमें कोई भी विशेषता हमें न मिली। लकड़ीका बना हुआ यह किला लड़ाईके लिये, खासकर आज कलकी लड़ाईके लिये, तो नितान्त ही अनुपयुक्त है। किलेके पास ही बादशाहका पुराना महल है। इसमें कोई भी सौन्दर्य नहीं। किले के आस पासका स्थान अच्छा और साफ सुथरा है और व्यवस्था अच्छी है। कुछ समय पहिले तक यह स्थान जनसाधारणके देखने

के लिये खुला न था। इधर कुछ वर्षोंसे यह खोल दिया गया है। किला, बगीचा और बादशाहके महल आदि सबके देखनेकी फीस १ येन रखी गई है। नागोया स्टेशन भी अच्छा बना है।

टोकियो जापानकी राजधानी और वहाँका सबसे अच्छा और बड़ा शहर है। जापानकी इमारतें बड़ी नहीं है, परन्तु टोकियो इसका अपवाद है। टोकियोमें खूब बड़ी-बड़ी इमारतें हैं और वहाँ के बाजार तथा डिपार्टमेंटल स्टोर आदि अन्य स्थानोंकी अपेक्षा अधिक सजे हुए और अधिक सम्पन्न हैं। यात्री वहाँ जाकर वास्तवमें यह अनुभव करने लगता है कि वह किसी नये स्थान पर आ गया है।

जापानकी उन्नतिमें आज तक सबसे बड़ा हिस्सा लिया है वहाँके भूतपूर्व सम्राट मेजी ने। सम्राट मेजीने शासनारूढ़ होनेके पश्चात् ऐसे-ऐसे कानून बनाए तथा जनताको ऐसी-ऐसी सुविधाएँ और सहूलियतें दीं जिससे देशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिको बहुत बड़ा सहारा मिला। अपने सम्राटकी इस सेवाके उपलक्ष्में आज भी जापानी लोग उनके प्रति अपूर्व सम्मान प्रदर्शित करते हैं। स्थान-स्थान पर उनकी स्मृतिमें, मन्दिर, संस्थाएँ, सड़कें और इमारतें आदि बना रहे हैं। टोकियोमें भी इस प्रकारकी इमारतोंकी कमी नहीं है। इन इमारतोंमें सबसे प्रधान इमारत है मेजी श्राइन। मेजी श्राइन एक मन्दिर है जहाँ श्रद्धालु जापानी लोग जाकर मृतात्माके सम्मान में स्तुति करते हैं। यह इमारत जापानी मन्दिरोंके ढंग पर बनी हुई है और काफी बड़ी है। इसीके पास सम्राट मेजीकी इस्तेमाल

की गई वस्तुओंकी प्रदर्शनी है। इनके अवलोकनसे यह पता लगता है कि सम्राटका जीवन कितना सादा था और वे कितने परिश्रमी और प्रजावत्सल थे। उन्हें पढ़ने लिखनेकी भी बड़ी रुचि थी।

टोकियोमें ही श्राइन आदिसे थोड़ी दूर पर एक आर्ट गैलरी है। इसमें भी सम्राट मेजीके जीवनकी विशेष-विशेष घटनाओंका चित्रण किया गया है। इस चित्रालयमें कोई ७९ बड़े-बड़े और अच्छे चित्रोंका संग्रह है। इन चित्रोंमें सम्राटके जन्मसे लेकर उनकी मृत्यु पर्यन्तकी प्रायः समस्त महत्वपूर्ण घटनाओंका अंकन किया गया है। इसकी इमारत भी बड़ी अच्छी है।

यहाँका म्यूजियम देखनेके लिये भी हम लोग गए। मगर उस समय उसकी मरम्मत हो रही थी। इसलिये यद्यपि इसका पूरा भाग हम नहीं देख सके, तथापि जो कुछ देखा उससे हृदय पर यही प्रभाव पड़ा कि म्यूजियम जापानकी राजधानीके लिये नितान्त अनुपयुक्त और अपर्याप्त है। यहाँकी Imperial Library (राजकीय पुस्तकालय) काफी बड़ा है और उसमें पढ़ने वाले स्त्री पुरुषोंके लिये अलग-अलग स्थान बने हुए हैं। ओरियण्टल लाइब्रेरी (Oriental Library) में प्राचीन पुस्तकें, जिनमें संस्कृत आदिकी पुस्तकें भी हैं, संग्रहीत हैं।

यहाँका पार्लियामेण्ट-हाल भी बड़ा विशाल है। इसे देखनेके लिये विशेष अनुमतिकी आवश्यकता होती है। पार्लियामेण्ट देखनेका मुझे तो बड़े विचित्र ढंगसे अवसर मिला। उसे देखनेके लिये आज्ञापत्रकी आवश्यकता होती है। हम लोगोंके पास आज्ञापत्र न

था; इसीलिये पहिले जब हमारी पार्टी गई तब यह इमारत देखनेको नहीं मिली। इसके बाद आज्ञा प्राप्त करनेकी चेष्टा भी नहीं की गई और उसका देखना एक प्रकारसे सदाके लिये स्थगित हो गया। इसके बाद एक दिन मैं टोकियोकी एक छोटी प्रदर्शनी देखने गया। प्रदर्शनी में प्रवेश करते ही फाटक पर खड़ा हुआ कर्मचारी प्रत्येक दर्शकको एक बन्द लिफाफा देता था। इस लिफाफेके खोलनेसे उसमें एक पुरजा निकलता था और उस पुरजे पर जो कुछ लिखा रहता था उसीके अनुसार दर्शकोंको कोई चीज प्रदर्शनी द्वारा मिल जाती थी। बहुतोंके लिफाफे खाली भी रहते थे। जिनके पास खाली लिफाफे पहुँचते थे उन्हें कुछ न मिलता था। हम लोग तीन आदमी साथ थे। दो को लिफाफोंके द्वारा एक एक फोटो मिला। मेरे लिफाफेमें पार्लियामेण्ट देखनेका आज्ञापत्र था। अनायास यह आज्ञापत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हम तीनों पार्लियामेण्ट भवन पहुँचे और यद्यपि आज्ञा केवल एक व्यक्तिके लिये थी, तथापि वहाँके कर्मचारीसे कह सुनकर हम तीनोंने भवन देखा।

टोकियो ठहर कर योकोहामा, फूजी, कामाकुरा, निक्को आदि स्थानोंको आसानीसे जाया जा सकता है। योकोहामा केवल चन्द घन्टोंका रास्ता है और, चूंकि शहर बहुत बड़ा नहीं है जल्दी ही देखा जा सकता है। टोकियोंसे योकोहामाके लिये टैक्सियां, रेलगाड़ियां जाती रहती हैं। योकोहामामें सबसे आकर्षक है वहांका बन्दरगाह। बन्दरगाहके पास ही एक बगीचा है। इस बगीचेके किनारे खड़े होकर सामने विशाल बन्दरगाहका अवलोकन नयनों

को आनन्द, मनको प्रसन्नता और प्राणोंको स्फूर्त्ति देने वाला है। सामने बड़ी दूर तक फैली हुई शान्त जल राशि, चारों ओर पत्थर और सीमेण्ट आदिसे बनी हुई दीवारें, बीचमें कहीं लाइट-हाउसके खम्भे, कहीं लंगर डालनेके लोहेके बड़े-बड़े ढोल, कहीं जहाज ऐसे अच्छे मालूम होते हैं कि देखते ही बनता है। पार्क और हारबरके अतिरिक्त म्यूजियम आदि भी हैं। परन्तु उनमें कोई विशेष आकर्षण नहीं है। यहां पर पर्ल कल्चरका काम भी होता है। यह देखने की चीज है, परन्तु इसे देखनेका मुझे अवसर नहीं मिला।

टोकियोसे फूजी पहाड़ तक जानेके कई रास्ते हैं। वहांके लिये टैक्सियां भी जाती हैं और बिजलीकी रेलें भी। बिजलीकी रेलसे जानेमें जल्दी होती है और दाम भी कम लगते हैं परन्तु उसमें कहीं पर बीचमें ठहर कर यदि कोई वस्तु कुछ सावधानीके साथ देखना चाहें तो सम्भव नहीं होता। इसलिये बिजलीकी गाड़ीसे जाना बहुत अनुमोदनीय नहीं होता। फिर भी ऐसा नहीं है कि उस रास्तेसे कोई आनन्द न मिलता हो। तमाम रास्ता पहाड़ी दृश्यावलियोंसे इतना ओतप्रोत है कि चाहे जिस रास्तेसे जाइए प्रकृतिके उस रूपके दर्शन तो अवश्य ही होंगे।

टैक्सी द्वारा जानेके लिये दो रास्ते हैं। एक सीधा फूजी पहाड़ीको जाता है और दूसरा कामाकुरा, हाकोने आदि होता हुआ। यदि यह संभव हो कि जाते समय कामाकुरा और हाकोने होकर जाया जाय और लौटती बार सीधे रास्तेसे लौटें तो सबसे अच्छा। परन्तु यदि एक ही रास्ते आना-जाना हो तो कामाकुरा

होकर जाना अच्छा होगा। इसका कारण यह है कि एक ही साथ कई स्थान देखनेका अवसर मिलेगा। इस यात्रामें पूरा एक दिन लग जाता है। हम लोग इसी रास्तेसे गये थे।

कामाकुरामें और कोई विशेष वस्तु देखनेकी नहीं है; वहांकी तो बौद्ध प्रतिमा ही दर्शनीय है। यह प्रतिमा अष्ट धातुकी बनी हुई है और बहुत बड़ी है। प्रतिमा पद्मासनस्थित ध्यानमग्न भगवान बुद्धदेवकी है। यह सन् १२५२ ई० में बनायी गयी थी। यह ४२ फीट ६ इञ्च ऊँची हैं। चेहरेकी लम्बाई ७ फीट ८ इञ्च, आंखोंकी ३ फीट ५ इञ्च है। प्रतिमाके ललाट पर एक बिन्दी है जो चांदीकी है। कहते हैं इसमें १५ सेर चांदी लगी है। सारी मूर्तिका वजन ९२ टन बताया जाता है। इसमें एक छोटा सा दरवाजा बना हुआ है। इस दरवाजेसे लोग प्रतिमाके अन्दर घुसते हैं। अन्दर एक सीढ़ीके ऊपर चढ़ कर एक खास स्थान तक लोग जाते हैं। वह स्थान प्रतिमाके पेटका स्थान पड़ता है। वहांसे पीठकी ओर खिड़कियोंसे झांकनेसे नीचेका दृश्य अच्छा मालूम होता है। इसीके लिये अधिकांश लोग जाते हैं। अन्दर जानेके लिये ३ सेन देने पड़ते हैं।

हाकोने पहाड़ी जगह है। प्राकृतिक दृश्योंके अतिरिक्त वहां पर कोई दार्शनीय स्थान नहीं है। परन्तु वहांका फूजिया होटल दर्शनीय वस्तु है। खास करके उसके बाथ-हाल ऐसे अच्छे ढंगसे सजाए गये हैं कि स्नान करने वालोंको अपूर्व आनन्द आता है। गरम पानीके झरनेको ही बाथ रूममें ले आया गया है। साथ ही शीशे

आदिसे कमरेको ऐसा सजाया गया है, कि अनेक यात्री तो केवल इसीके प्रलोभनसे वहां ठहरते हैं। उस होटलके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वह एशियाका सबसे अच्छा होटल है।

फूजी माउण्ट साधारण पहाड़ोंसे कुछ ऊँचा एक मामूली सा पहाड़ है। परन्तु वह सदा बरफसे ढँका रहता है। इसीलिये अधिकांश यात्री उसे देखनेके लिये जाते हैं। त्रिकोणाकार बना और बरफसे ढका हुआ वह छोटा सा पहाड़ संध्या और प्रातः बहुत सुहावना मालूम होता है। इसके समीप ही कई 'लेक' (झील) हैं जिन पर नाव करके घूमनेमें बड़ा आनन्द आता है।

निक्कोका दृश्य सबसे निराला है। एक ही स्थान पर उतने अधिक और अच्छे प्राकृतिक दृश्य शायद ही कहीं उपलब्ध हों। पहाड़ी चढ़ाईका कोई ठिकाना नहीं। टैक्सी वाले और यात्री दोनों चढ़ते-चढ़ते परेशान हो जाते हैं। निक्कोमें भी एक 'लेक' है और अच्छा है। परन्तु वह वहांकी खास दर्शनीय वस्तु नहीं है। खास चीज तो है वहांका जलप्रपात (Water fall) इसे सुरक्षित रखने और देखनेकी सुविधाका जापान सरकारने अपूर्व प्रबन्ध कर रखा है। जलप्रपात देखनेके लिये उपयुक्त स्थान बाहरसे नहीं है, इसलिये जापान सरकारने एक 'लिफ्ट' लगा रखी है। यह लिफ्ट यात्रियोंको ऊपरकी सतहसे कोई ३२५ फीट नीचे ले जाती है। वहांसे एक सुरंग सी बनी हुई है। सुरंग अधिक लम्बी नहीं है; कोई ६०-७० फीटकी होगी। सुरंगके बाहर फिर सीढ़ियां बनी हुई हैं। इन सीढ़ियोंसे उतरने पर एक चबूतरा सा मिलता है।

वहींसे जलप्रपात दिखलाई पड़ता है। जलप्रपात १२५ फीट ऊँचा है। उसकी ऊँचाई ही उसकी शोभा है। अन्यथा पानीकी मात्रा और बहावकी चौड़ाई इतनी कम है और प्रवाहकी तेजी भी इतनी कम है कि वह एक बड़ासा पनाला मालूम होता है। उसकी अपेक्षा जबलपुरका धुआंधार जलप्रपात कहीं प्रबल और आतंक-उत्पादक मालूम पड़ता है।

जलप्रपातसे थोड़ी दूर टोकियोकी ओर आनेपर एक स्थान पर केबल-वे और रोप-वे पड़ती हैं। केबल वे में तो पहाड़ी पर रेलकी पटरी बिछी हुई है। उन पर एक रस्सेके सहारे दो डब्बे आते जाते हैं। उसके बाद आगे और ऊँचाई पर जानेके लिये रोप-वे हैं। यह एक विचित्र सी वस्तु है। रोप-वे के दोनों सिरोंपर स्टेशन हैं परन्तु वास्तवमें उसका संचालन ऊपर वाले सिरेसे ही होता है। सिद्धान्ततः केबल-वे और रोप-वे एक ही हैं। परन्तु फर्क इतना है कि केबल-वेमें रेलका डब्बा पटरियोंपर चलता है और रोप-वेमें रस्से पर लटकता हुआ अन्तरिक्षमें चलता है। बीचमें बड़ी गहरी खाई है। दोनों सिरों पर पहाड़ियां हैं। इन पहाड़ियोंसे एक ही साथ डब्बे छूटते हैं। वास्तवमें ऊपर वाली पहाड़ीसे डब्बा छोड़ा जाता है जो नीचे वाले डब्बेको ऊपर खींचता हुआ नीचेकी ओर आता है। रस्सेके सहारे झूलते हुए ये डब्बे और उनके नीचे सैकड़ों फीट गहरी खाई देख कर एक बार तो कलेजा दहल उठता है। हमारे साथके दो एक मित्र इसीलिये उनपर चढ़े भी नहीं। परन्तु जो चढ़ते हैं उन्हें सारा दृश्य बड़ा सुहावना मालूम होता है

और ऊपरके सिरे पर आकर तो शोभाका ठिकाना ही नहीं रहता। कहनेके लिये तो निक्को जलप्रपातके लिये ही प्रसिद्ध है, पर वास्तवमें उस पहाड़ीपर देखनेका दृश्य ही एक वस्तु है, जिसे प्रत्येक यात्रीको अवश्य देखना चाहिये। वहांसे बड़ा जलप्रपात, एक छोटासा जल-प्रपात, झरने, रास्ते, पहाड़ियां, और चारों ओरका हराभरा दृश्य सब कुछ इतने मनोहर रूपसे दिखलाई पड़ता है कि दर्शक मंत्रमुग्ध-सा हो जाता है।

निक्को जानेके पहले तो बिजली गाड़ीमें जाना होता है और उसके बाद रेलवे स्टेशन से टैक्सी या बस आदि करके जाना पड़ता है।

टोकियो ठहर कर इतने स्थान देखनेके बाद एक दिनके लिये नागोया फिर आना पड़ा और उसके बाद कोबे आ गया। कोबे तो जेलखाना था ही, इसके अतिरिक्त वापसीके दिन भी नजदीक आ गए थे; इसलिये अन्यान्य स्थानोंमें न जा सका। फिर भी दो वस्तुएँ देखनेका लोभ मैं संवरण न कर सका। एक टकाराजुका और दूसरा ओसाका प्लेनेटोरियम। किसी प्रकार इन दोनोंको देखनेके लिये एक दिनकी फुरसत निकाली। अकेले ही टकाराजुका के लिये रवाना हुआ। जापानी भाषा न जाननेकी अड़चन तो थी ही, मगर चल पड़ा। बातचीत करनेका कोई साधन ही नहीं था। न मेरी बात दूसरा समझ सकता था, न मैं दूसरोंकी बातें। चुपचाप बैठा हुआ था। इतनेमें एक भद्र पुरुषके साथ दो आस्ट्रेलियन महि-लाएँ आईं। शायद उन्हें भी किसी ऐसे आदमीकी जरूरत थी

जिससे वे बातचीत कर सकतीं और मुझे भी ऐसे ही व्यक्तियोंकी आवश्यकता थी। दोनों ओरसे योग अच्छा मिला। फिर तो रास्ता मालूम ही नहीं पड़ा। भिन्न-भिन्न विषयों पर बातें होती रहीं। मगर टकाराजुका जाकर वे लोग होटलमें चले गये। मुझे जाना था अपेरा हाउस। इसलिये साथ छूट गया। मैं अपने रास्ते चला जा रहा था। आगे दो नवयुवकोंको जाते हुए देखा। उनसे रास्ता पूछा। वे जापानियोंकी स्वाभाविक सेवा भावनाके अनुसार साथ हो लिये। वे दोनों कालेजके विद्यार्थी थे, अंग्रेजी बोल सकते थे। इसलिये मैंने उन्हें अपेरामें भी साथ ले लिया। फिर वे बराबर साथ रहे। नाटक आदि के वार्त्तालाप वे समझाते जाते थे। इससे समझनेमें बड़ी सुविधा मिली।

टकाराजुका पहिले एक जंगल था। होंकियो नामके एक सज्जन ने वहां तक बिजलीकी ट्राम बनाई। उन्हें इस बातकी जरूरत थी कि उनकी ट्रामके लिये अधिकाधिक यात्री मिलें। यह तभी सम्भव था जब उस स्थान पर कोई आकर्षण हो। इसलिये उन सज्जनने एक अपूर्व उपाय सोच निकाला। वहां पर पढ़ने-लिखनेकी सुन्दरसे सुन्दर व्यवस्था की, साथ ही एक नाटक-शाला बनाई। इस नाटकशालामें पुरुष पात्र रखे ही नहीं। यह नियम रखा कि टकाराजुका नाटकशालामें केवल बालिकाएँ ही, जिनमें प्रायः सब विद्यार्थी हैं, अभिनय करेंगी। उसीके अनुसार काम भी आरम्भ किया। एक बात और भी की कि टिकटके दाम इतने सस्ते रखे जिसकी सीमा नहीं। केवल ३० सेन (जो भारतीय चार आनेके लगभग होते हैं)

में प्रवेश और ३० सेनमें देखनेकी व्यवस्था की। इसलिये लोगोंकी अपार भीड़ उसमें होने लगी और उनकी ट्रामवे लाइनको भी लाभ हुआ, नाटकशालाको भी लाभ हुआ और बालक-बालिकाओंकी शिक्षा-दीक्षाकी भी उन्नति हुई।

टकाराजुकामें नए ढङ्गके नाटकोंका अभिनय होता है। इनमें अंग्रेजी ढंग और जापानी ढंग दोनोंका सम्मिश्रण है। इसलिये ये बाहर वालोंके लिये भी आकर्षक होते हैं और जापानियोंके लिये भी। टिकट शरह एक ही है। आगे-पीछे जहाँ भी सीट जिसे मिल जाए वहीं उसे बैठना होगा और सब सीटोंका दाम वही ३० सेन है। वहाँ गरीब-अमीरका भेद-भाव नहीं है और न स्त्री-पुरुषका ही। नाटक रोज १ बजेसे ४-५ बजे तक होता है और किसी दिन नाटक-शाला खाली नहीं रहती। सारा भवन दर्शकोंकी भीड़से खचाखच भर जाता है। दर्शकोंमें अधिकांश स्त्रियां होती हैं। रंगमंच बहुत बड़ा और सीनरी आदि आश्चर्यजनक होती हैं।

नाटक भवनसे मिले हुए ही कई खेल-कूदके स्थान और भी हैं। सबमें एक-एक सेनका खर्च होता है। भवनके अन्दर ही खाने-पीनेके लिये होटल आदिका प्रबन्ध भी है और सुन्दरसा बगीचा, तालाब आदि है। चारों ओरका स्थान इतना साफ, इतना सुन्दर और इतना आकर्षक है कि वास्तवमें जंगलमें मंगल बन गया है। मुझे इस बातका खेद रहा कि इतने सुन्दर स्थान पर मैं केवल एक ही बार जा सका और वह भी थोड़ी ही देरके लिये।

टकाराजुकाके बाद मैं अपने दोनों विद्यार्थी मित्रोंके साथ ओसाका

आया और प्लेनेटोरियम देखने गया। कहते हैं कि उस प्रकारका प्लेनेटोरियम बर्लिन, न्यूयार्क और ओसाकाके अतिरिक्त संसार भरमें कहीं नहीं है। प्लेनेटोरियमका दिखाया जाना शुरू हो गया था। हम लोग भी टिकट खरीद कर अन्दर घुसे। यद्यपि उस समय केवल साढ़े चार बजे थे, तथापि प्लेनेटोरियमके मण्डपमें घुसते ही इतना अन्धेरा मालूम हुआ जितना अन्धेरी रातमें भी शायद न होता होगा। टार्चके सहारे गाइडने हमें एक सीट पर बैठा दिया। ऊपर नजर डाली। मालूम हुआ कि एक दूसरा आकाश है। प्लेनेटोरियम में नक्षत्रों और ग्रहोंकी चाल दिखलाई जाती है। कौनसा ग्रह या उपग्रह किस प्रकार किस रफ्तारसे चलता है, उसके रूपमें कैसे परिवर्तन होता है, किस महीनेमें कहां पर कौनसा नक्षत्र दिखलाई पड़ता है, आदि अनेक बातोंका विवरण प्लेनेटोरियममें देखनेको मिलता है। एक शिक्षक सब बातोंको समझा रहा था। उसके हाथमें एक टार्च थी जिसकी रोशनीसे तीरके आकारका प्रकाश पड़ता था। उसीके सहारे वह जिस नक्षत्रको चाहता था दिखाता था और उसके सम्बन्ध की सब बातें समझाता था। आकाशके सब तारे चलते हुएसे मालूम होते थे। बीच-बीचमें डायग्राम (रेखाएँ) सा प्रकाश डाल कर ग्रहों और उपग्रहोंका वास्तविक स्थान बताया जाता था। इस प्रकार सब बातें समझानेका पूरा प्रबन्ध था। मगर चूंकि सब समझाया जा रहा था जापानी भाषामें, इसलिये मेरे लिये वह विशेष सुविधाप्रद न था। फिर भी साधारण जानकारीसे बहुत-सी बातें मालूम हो जाती थीं। शुक्ल और कृष्णपक्ष, रात्रि, सन्ध्या और प्रभात, आदिके दृश्य भी

दिखलाए गए थे। प्रातःकाल किस प्रकार एकके बाद एक नक्षत्र अस्त हो जाते हैं और कैसे धीरे-धीरे प्रकाश प्रवेश करता जाता है, इसका दृश्य बड़ा मनोहर था। वास्तवमें धीरे-धीरे प्रकाश करके प्रभात दिखलाते हुए ही उस समस्त प्रदर्शनका अन्त किया जाता है। घोर अन्धकारके बाद प्रकाशकी रेखाएँ और फिर उनका धीरे-धीरे प्रसार बड़ा ही मनोहर मालूम होता है।

प्लेनेटोरियममें एक बड़ा-सा गुम्बज बना हुआ है, यह गुम्बज ही आकाशका प्रदर्शन करता है। गुम्बजके नीचे एक मशीन है जिसमें अनेक प्रकारके बिजलीके बल्व लगे हुए हैं। इन बल्वोंकी रोशनीका प्रतिबिम्ब गुम्बजमें पड़ता है और इसीसे नक्षत्र दिखलाई पड़ते हैं। नीचे वाली मशीन इस ढङ्गसे बनी हुई है कि वह हर तरफ को मुड़ सकती है। इसके इस मोड़से ही नक्षत्रोंकी चालका प्रदर्शन किया जाता है। भवनमें एक किनारे बिजलीके यंत्र संचालित किया जाता है।

ओसाकामें वहाँके 'कैसल', आदि अन्य कुछ स्थान देखने लायक थे, परन्तु समयाभावके कारण मैं उन्हें नहीं देख सका और बड़े-बड़े रास्ते देखता हुआ वापस आया।

इन दृश्योंके अतिरिक्त नारा और क्योटोके दृश्य भी अवलोकनीय हैं। क्योटोके सम्बन्धमें कहा जाता है कि प्राकृतिक दृश्योंका वह भण्डार है। नारा भी प्राकृतिक दृश्योंके लिए जो कुछ प्रसिद्ध है वह तो है ही, उसकी प्रसिद्धि विशेष रूपसे वहाँकी विशालकाय बौद्ध प्रतिमाके कारण है। यह प्रतिमा कामाकुराकी प्रतिमासे भी बड़ी और

पुरानी है। इसका निर्माण ७५२ ई० में हुआ था। यह प्रतिमा भी आसनस्थ भगवान बुद्धकी है। इसकी ऊँचाई ५३'५ फीट है। चेहरा १६ फीट ६'५ इञ्च लम्बा और आँखें ३'६ फीट हैं। प्रतिमाके कान ८'५ फीट, मुंह ३'७ फीट और नाक ३'६ फीट है। इसकी नाभिकी परिधि ३ फीटकी है और अंगूठा ४'५ फीट है। कहते हैं कि उसके ढालनेमें १२,२७५ मन पीतल, २२५ मन मोम, १०॥ मन सोना और ६० मन पारा लगा था। इस मूर्तिको तथा कामाकुरा वाली मूर्तिको— दोनोंको जापानी लोग 'दाइबुत्सु' कहते हैं। ये प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं।

यातायातकी सुविधाएँ

यातायातके प्रधान साधनोंमें रेलवे, ट्रामवे, मोटरबस, मोटर टैक्सी, जलजहाज, हवाई जहाज आदि प्रधान हैं और ये सब साधन जापानमें मौजूद हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न स्थानोंकी आवश्यकताके अनुसार केबल वे, रोप वे अण्डरग्राउण्ड रेलवे आदिका प्रबन्ध भी वहाँपर है। कुछ समय पहिले तक वहाँ रिक्शे भी चलते थे। परन्तु अब उनका चलना बन्द हो गया है। वहाँपर बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी आदि तो बिलकुल नहीं हैं।

जापानके जलजहाजोंके वर्णनकी यहाँ उतनी आवश्यकता नहीं। जापान नयेसे नये आविष्कारोंके साथ अपने जहाज तैयार करता

है और उसके जहाज संसारभरमें चलते हैं। ये जहाज जापानके एक बन्दरगाहसे दूसरे बन्दरगाह तक भी यात्रियोंको ले जाया और ले आया करते हैं। परन्तु जल जहाजों द्वारा अपने देशकी यात्रा बहुत कम होती है। इसीलिए उनके उल्लेखकी भी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

देशकी यात्राके लिए सबसे अधिक उपयोग होता है रेलवेका। इन रेलवेका प्रबन्ध जापानमें खूब है। रेलवेका संचालन वहाँकी सरकार द्वारा भी किया जाता है और कुछ प्राइवेट कम्पनियाँ भी हैं जिनकी लाइनें चलती हैं। दोनों प्रकारकी लाइनोंकी व्यवस्था अधिकसे अधिक सुन्दर है। जापानी रेलें समयकी पाबन्दी इतनी अधिक रखती हैं कि मजाल क्या कि निर्धारित समयसे एक मिनट भी इधर उधर हो जाय। रेलवेके अकसर लेट आनेके अनुभवी भारतीयोंके लिए तो यह नयी सी बात ही है। परन्तु वहाँ यदि कोई यह समझकर जाय कि एक मिनिट देरी भी हो जायगी तो गाड़ी मिल जायगी तो उसे निराशा ही होगी।

बैठनेका स्थान भी वहाँपर बहुत साफ सुथरा और अच्छा होता है। रेलवेमें नियमानुसार तीन दर्जे होते हैं—फर्स्ट क्लास, सेकेण्ड क्लास और थर्ड क्लास। परन्तु अधिकांश रेलोंमें सेकेण्ड क्लास और थर्ड क्लास ही रहता है और इलेट्रिक रेलवेमें तो केवल थर्ड क्लास ही रहता है। परन्तु वहाँके थर्ड क्लास और सेकेण्ड क्लासमें वह अन्तर नहीं होता जो यहाँ पर दिखलायी पड़ता है। बैठनेकी सुविधा आदि का ख्याल जितना सेकेण्ड क्लासके यात्रियोंके लिए रखा जाता है,

उससे कम थर्ड क्लासके यात्रियोंके लिए नहीं रखा जाता। वहाँपर बैठनेकी बेंचे यहाँकी सी लम्बी नहीं होतीं, वल्कि ऐसी होती हैं जिनमें एक साथ दो आदमी बैठ सके। बेंचें लगभग ३ फीट लम्बी होती हैं और पीठको सहारा देनेके लिए भी स्थान रहता है। पीठको सहारा देनेवाला तख्ता ऐसे ढंगसे लगाया जाता है कि वह किसी तरफ को मोड़ा जा सकता है। उनकी बनावट वैसी ही होती है जैसी यहाँपर बी० एन० रेलवेके खास तौर पर इन्टर क्लासके डब्बोंकी सीटों की। उनसे यह लाभ होता है कि यदि एक साथके चार आदमी हों तो वे चारों आमने सामने बैठ सकते हैं। सीटोंपर—चाहे वे थर्ड क्लासकी सीटें हों चाहे ऊँचे क्लासोंकी—मखमलके गद्दे लगे रहते हैं। इस कामके लिए अधिकांशमें हरा मखमल पसन्द किया गया है। पीठको सहारा देनेवाली पटरी पर भी मखमलके गद्दे लगे रहते हैं। सेकण्ड क्लास और थर्ड क्लासकी सीटोंमें अन्तर केवल यह होता है कि ऊँचे क्लासके गद्दे और भी अच्छे होते हैं। वैसे बैठनेवालोंको कोई विशेष अन्तर अनुभव नहीं होता।

डब्बोंकी बनावटमें भी कोई विशेष अन्तर नहीं होता। एकदम एक ही प्रकारके डब्बे होते हैं। वहाँके डब्बे यहाँके डब्बोंसे—खास तौर पर ऊँचे क्लासके डब्बोंसे आकारमें बड़े होते हैं। और डब्बेके अन्तमें पाखाना पेशाबघर, टाइलेट रूम (हाथ मुंह धोनेका स्थान) रहता है। पाखाने ऐसे ढङ्गके बने हुए होते हैं कि जिससे योरोपियन और जापानी दोनों ढंगसे पाखाना फिरने वालोंके लिए सुविधा हो। जिस ओर पाखाना होता है, उसी ओर हाथ मुंह धोनेके स्थानकी

व्यवस्था नहीं होती। डब्बेके आधे हिस्सेमें एक और आधे हिस्से में दूसरेका स्थान बना हुआ है। हाथ मुंह धोनेवाले स्थानपर शीशे लगे हुए हैं। गरम पानी, ठंडा पानी दोनों प्रकारके पानीका भी प्रबन्ध रहता है। साबुन और तौलिए भी रखे रहते हैं। और किसी किसी गाड़ीमें दाँत साफ करनेका मंजन और ब्रुश आदि भी रहता है। कमरे इतने साफ सुथरा होते हैं कि देखकर तबीयत प्रसन्न हो जाती है। यह व्यवस्था ऊँचे क्लास तथा थर्ड क्लासमें समानरूपसे रहती है। वहाँपर, यहाँकी भाँति थर्ड क्लासके यात्री जानवर और उच्च क्लासोंके यात्री देवता नहीं समझे जाते।

रेलोंके डब्बोंकी बनावट 'कोरी डोर' सिस्टमकी है अर्थात् ऐसी है कि रेलके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक आदमी बराबर आ जा सकता है। दूर-दूर तक जानेवाली गाड़ियोंमें भोजनागार तथा शयनागार भी रहते हैं। भोजनागारमें जापानी और योरोपियन दोनों ढंगोंका भोजन मिलता है और सोडा लेमनेड आदि पेय पदार्थ भी मिलते हैं। जो चीज भोजनागारमें तैयार की जाती है उसके परचे वहाँके कर्मचारी ट्रेन भरके यात्रियोंके पास पहुँचा देते हैं और जिसे जो पसन्द आता है, वह वह खाता है। शयनागार प्रत्येक क्लासके लिए रहते हैं। फर्स्ट और सेकेण्ड क्लासमें जो शयनागार रहते हैं। उनमें एक बिस्तरा नीचे और एक ऊपर रहता है। परन्तु थर्ड क्लासमें तीन बिस्तरे—बिस्तरे क्यों तीन जगहें होती हैं। थर्ड क्लासमें बिस्तरे नहीं होते। सोनेवाले अपना ओवरकोट या ऐसी ही और कोई वस्तु डालकर सो रहते हैं। सेकेण्ड क्लास और फर्स्ट क्लासमें बिस्तरे

भी मिलते हैं। सोनेकी जगहके लिए अतिरिक्त भाड़ा देना पड़ता है। परन्तु बिस्तरोंकी संख्या परिमित होनेके कारण यह नहीं है कि जिस समय कोई चाहे उसी समय उसे सोनेकी जगह मिल जाय। इसके लिए उसे पहिलेसे ही प्रबन्ध करना पड़ता है। स्लीपिंग वर्थ (सोनेकी जगह) के लिए जो टिकट मिलता है, उसमें गाड़ीका नाम, यात्रीके निश्चित स्टेशनका नाम, डब्बेका नम्बर और बर्थका नम्बर रहता है। ट्रेनोंमें विशेष कर्मचारी रहते हैं जो टिकट देखकर यात्रियोंको निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचा देते हैं। वहाँपर एक और कर्मचारी रहता है जो यात्रियोंके टिकट लेकर अपने पास रख लेता है। यह कर्मचारी रातभर जागता रहता है। यह देखता रहता है कि अगले स्टेशनपर किन-किन लोगोंको उतरना है। जिन्हें उतरना होगा उनके पास वह कर्मचारी उस स्टेशन के कुछ पूर्व ही जायगा और यदि वे सोते हुए हों तो उन्हें जगाकर होशियार कर देगा। इस प्रकार स्लीपिंग बर्थमें पहुँच जानेके बाद यात्रियोंको यह चिन्ता करनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती कि कहीं स्टेशन न निकल जाय और हम सोते ही रह जाँय।

रेलोंमें एक कर्मचारी और होता है जो डब्बोंकी सफाई किया करता है। वैसे तो प्रत्येक डब्बेमें पीतलकी चिलमचीकी तरहके पात्र रहते हैं जो लकड़ीके साथ ही नीचे सतहपर गाड़े रहते हैं। यात्री लोग कूड़ा-करकट आदि सीटके आगे ही न डालकर इन्हीं पात्रोंमें डालते हैं। इससे सारा डब्बा खराब नहीं होने पाता। फिर भी लड़के बच्चे आदि या कोई सयाना मुसाफिर ही असावधानी या प्रमाद

से यदि कोई चीज इधर उधर फेंक देता है तो उपरोक्त कर्मचारी उसे झाड़ बटोर कर साफ कर देता है। यह कर्मचारी बड़ी जल्दी-जल्दी डब्बे साफ करने आता है। इससे डब्बोंमें गंदगी नहीं रहने पाती।

स्लीपिंग बर्थ और डाइनिंगरूम (शयनागार और भोजनागार) के अतिरिक्त कुछ गाड़ियोंमें Observation Car (दृश्य देखने की गाड़ियाँ) भी रहती हैं। ये प्रायः ट्रेनके एकदम पीछे होती है। इनमें ऊपर तो छत रहती है, परन्तु अगल बगलकी दीवारें नहीं रहतीं। रेलिंगकीसी एक भीत तो रहती है और सब खुले रहते हैं। इनमें आराम कुर्सियाँ और दूसरी-दूसरी कुर्सियाँ, टेबलें आदि पड़ी रहती हैं। इनमें बैठकर यात्री लोग आसपासका मनोरम दृश्य देखते हुए चले जाते हैं।

ट्रेनें वहांपर दो प्रकारकी हैं—यहांकी भांति तीन प्रकार—पैसेञ्जर, एक्सप्रेस और मेल—की नहीं। उन्हें आर्डिनरी (मामूली) ट्रेन और एक्सप्रेस ट्रेन कहते हैं। मामूली ट्रेनोंमें तो कोई विशेष बात नहीं, परन्तु एक्सप्रेस ट्रेनोंके दो भेद और हैं—एक आर्डिनरी एक्सप्रेस और दूसरा लिमिटेड एक्सप्रेस। जब यात्री किसी स्टेशनका टिकट मांगता है तब उसे आर्डिनरी ट्रेनका टिकट मिलता है। उसके बाद यदि वह एक्सप्रेससे जाना चाहता है, तो उसको थोड़ासा अतिरिक्त किराया और देना पड़ता है। वही टिकट यदि लिमिटेड एक्सप्रेस ट्रेनके लिए लिया जाय तो आर्डिनरी एक्सप्रेसके लिए जो अति-रिक्त किराया दिया जाता है, उसका दूना अतिरिक्त किराया लग जाता है। लिमिटेड एक्सप्रेसमें जितनी जगह रहती है, उससे अधिक

टिकट नहीं दिये जाते। इसलिए भीड़ होनेकी कभी सम्भावना ही नहीं होती। टिकट मिला तो बैठनेकी जगह मिलनी अनिवार्य है। परन्तु ये टिकट आसानीसे नहीं मिलते। दो-दो दिन पहिलेसे टिकट खरीद लिये जाते हैं। यही हाल स्लीपिंग बर्थके टिकटोंका भी होता है। ऐन मौकेपर तो इनका मिलना प्रायः असम्भव हो जाता है।

किरायेकी दर थर्ड क्लासके किरायेके आधारपर निर्धारित की गयी है। थर्ड क्लासका किराया पहिले ८० किलोमिटर (५।८ माइल के लिए १'५६ सेन (एक सेन लगभग आधे पैसेका होता है।) इसके बाद ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है त्यों-त्यों दरमें कमी होती जाती है। सेकेण्ड क्लास और फर्स्ट क्लासका किराया थर्ड क्लाससे क्रमशः दुगुना और तिगुना होता है। इस प्रकार उन यात्रियोंके लिए जो आर्डिनरी पैसेंजर ट्रेनोंसे यात्रा करें किराया बहुत सस्ता है। साथमें लगेज लेजानेके लिए फर्स्ट क्लासके लिए ६० किलोग्राम (लगभग १३८ पौंड) सेकण्ड क्लासके लिए ४० किलोग्राम (लगभग ८८ पौंड) और थर्ड क्लासके लिए ३० किलोग्राम (लगभग ६६ पौंड) वजनका किराया नहीं लगता। लगेज लेजानेके लिए वहां का नियम यह है कि बहुत छोटी सी चीज एटेचीकेस, पढ़ने लिखने की चीजें, खाने पीनेका मामूली सामान आदिके अतिरिक्त ऐसी चीजें जो आकारमें बड़ी होती हैं, यात्री लोग अपने साथ अपनी सीटपर नहीं रख सकते। वे सब लगेज वैनमें रखी जाती हैं। इस नियमका पालन भी सख्तीके साथ होता है।

जापानके रेलवे स्टेशन अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके हैं। छोटी जगहोंके स्टेशन उतने खूबसूरत और आलीशान नहीं हैं, परन्तु टोकियोंनागोया, ओसाका आदि प्रधान नगरोंके स्टेशन काफी शान-दार बने हुए हैं। स्टेशनकी इमारतोंके साथ-साथ वहांका प्रबन्ध भी बड़ा सुन्दर है। कर्मचारियोंका व्यवहार, बर्ताव; उनकी सेवापरायणता और कार्यशीलता आदि देखनेकी और अनुकरण करनेकी वस्तुएँ हैं। किसी कर्मचारीके पास जाकर यात्री अपनी कठिनाईका जिक्र करेंगे, तो वह कर्मचारी नम्रतापूर्वक उनकी तकलीफ दूर करनेका प्रयत्न करेगा। भारतवर्षके रेलवे कर्मचारियोंकी भाँति डाँट-फटकार या उपेक्षा करना तो दूरकी बात है, वे केवल मौखिक सहानुभूति ही दिखा कर रह जाते हों, ऐसा भी नहीं है। जो तकलीफ जहाँसे दूर हो सकती है, उस व्यक्तिके पास तक पहुंचा कर यात्रीकी तकलीफ दूर करनेका वहांके कर्मचारी प्रयत्न करते हैं। मुझे स्वयं इस प्रकारके कई प्रसंग पड़े थे और हर मौके पर इन कर्मचारियोंसे उचित सहा-यता प्राप्त हुई थी।

प्रत्येक स्टेशन पर टाइमटेबल आदि तथा गाड़ीके आने-जानेके समयकी सूचना देने वाले बिजलीकी रोशनीके साइनबोर्ड आदि तो लगे ही होते हैं, इनके अतिरिक्त स्टेशन और प्लैटफार्म पर लाउड-स्पीकर लगे रहते हैं, जिनके द्वारा प्रत्येक गाड़ीके आने और जानेकी सूचना अलगसे भी दी जाती है। गाड़ी आनेके पूर्व ही इन लाउड-स्पीकरों द्वारा बता दिया जाता है कि अमुक-अमुक स्टेशनको जाने वाली अमुक-अमुक गाड़ी आ रही है, उस ओर जाने वाले यात्री

तैयार हो जायं और छूटते समय फिर कहा जाता है कि वह गाड़ी छूट रही है। इसके अतिरिक्त जब गाड़ी आ जाती है, तब भी स्टेशनके लाउडस्पीकर द्वारा गाड़ीमें बैठे हुए यात्रियोंकी जानकारीके लिए यह बताया जाता है कि यह अमुक स्टेशन है। इस व्यवस्थाके अतिरिक्त गाड़ियोंमें स्वयं भी ऐसे कर्मचारी रहते हैं जो बराबर यात्रियोंको आगाह किया करते हैं कि आगे अमुक स्टेशन आ रहा है और जाने वाले तैयार हो जायं। एक बात यहां पर छूट गयी। इन सब घोषणाओंमें यह अनिवार्यतः कहा जाता है कि आप लोगोंने यहां आकर कृपा की है, इसके लिये धन्यवाद। स्टेशन पर जब यात्री टिकट देकर बाहर जाता है, तब भी टिकट लेने वाले कर्मचारी प्रत्येक टिकट देने वालेको धन्यवाद अवश्य देते हैं।

कुलियोंका व्यवहार और भी अच्छा है। भारतवर्षके कुलियोंके बर्बर व्यवहारके अनुभवी मेरे जैसे यात्रियोंके लिए तो उन कुलियोंका व्यवहार बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। आप यहांसे अपना सामान लेकर जाइए। यदि वह ठीक ढंगसे बँधा हुआ नहीं है तो वे कुली उसे बाँध भी देंगे, उस पर लेबल वगैरह लिख कर अपने आप चिपका देंगे। वहाँ शिक्षा तो शत-प्रतिशत है ही। अतः कुली भी पढ़े-लिखे होते ही हैं। उसे उठा कर लगेजके क्लार्कके पास ले जायंगे और जहां जाना है, वहांके लिए बुक करा कर आपको रसीद दे देंगे। इतना काम कर देनेके बाद भी वे कभी आपसे कोई झगड़ा नहीं करेंगे। कुलियोंकी मजदूरी फी अदद ५ सेन है। इतनी मजदूरीसे कम तो कोई देता ही नहीं है और इससे अधिक वे मांगते भी नहीं।

लगेजके सम्बन्धमें वहां यह भी नियम है कि यदि कोई यात्री चाहे तो अतिरिक्त किराया देने पर उसका सामान न केवल उसके निर्दिष्ट स्टेशन तक ही बल्कि नगरके किसी भी हिस्सेमें पहुंचाया जा सकता है। यह नियम यात्रियोंके लिए इतना सुविधाप्रद है जिसका कोई ठिकाना नहीं। स्टेशन लिखा दीजिए, जहां ठहरना है, उस होटलका नाम व पता लिखा दीजिए और फोरवर्डिंग चार्ज (Forwarding charges) दे दीजिए, बस आप निश्चिन्त होकर यात्रा कीजिए। जब तक आप उस स्टेशन पर उतर कर अपने स्थान पर पहुंचेंगे तब तक या उसके थोड़ा आगे-पीछे आपका सामान भी ज्योंका त्यों आपके पास पहुंच जायगा। फोरवर्डिंग चार्ज भी इतना वाजिब लिया जाता है कि उससे कममें काम निकाल लेना कठिन है। एक बार हम लोगोंके जीमें आया था कि शायद रेलवे वाले अधिक चार्ज करते हों, इसलिए लगेज निवास-स्थान तकके लिए बुक न करा कर स्टेशन तकके लिए ही कराया। फिर वहांसे निवासस्थान तक सामान ले जानेकी व्यवस्थामें हमें जो तकलीफ उठानी पड़ी थी, वह आज तक याद बनी है और खर्च भी फोर्वर्डिंग चार्जसे अधिक ही लग गया। विदेशी यात्रियोंके लिए तो फोर्वर्डिंग चार्ज देकर अपने निवासस्थान तक सामान पहुंचा देनेका भार रेलवे पर ही छोड़ देना चाहिए।

जापानमें कुली लोग बोझा सर पर नहीं लादते। यदि सामान अधिक न हुआ तब तो सामान दो भागोंमें विभक्त कर एक रस्सीके दोनों सिरोंसे उसे बांध लेते और कंधेमें इस ढङ्गसे डाल लेते हैं,

जैसे अपने यहां देहातमें लोग अधारी कंधे पर डाल लेते हैं और यदि सामान अधिक हुआ तो हाथसे खींचने वाली गाड़ियोंमें लाद कर उसे प्लैटफार्म तक ले जाते हैं। कभी-कभी दो-तीन यात्रियोंका सामान एक ही कुली घसीट ले जाता है और गाड़ी पर प्रत्येक यात्री-का कुली अपना-अपना सामान उठा कर अलग-अलग रख देता है।

यह हाल तो मुसाफिरोंके अलग सामानका हुआ। अब रेलवेके लगेजका अर्थात् ऐसे सामानका जो यात्री लोग रेलवेको सुपुर्द कर देते हैं, हाल सुनिये। वास्तवमें इसी प्रकारका सामान अधिक होता है। इसके ढोनेके लिए प्रत्येक बड़े स्टेशन पर छोटी-छोटी मोटरें-सी होती हैं और ये मोटरें ५-५, ७-७ डब्बे जिनमें सामान भरा रहता है, खींच कर लगेज आफिससे प्लैटफार्म तक ले जाती और वहांसे लगेज आफिस तक ले आती हैं। जैसे एक छोटा इञ्जिन ट्रोलियोंको घसीट कर ले जाता है, उसी प्रकारसे ये मोटरें भी स्टेशन पर घूमा करती हैं। यह दृश्य भी बड़ा विचित्र-सा मालूम होता है। परन्तु उससे सामान ढोनेमें बड़ी सुविधा होती है।

यात्रियोंकी खास तौर पर विदेशी यात्रियोंकी सुविधाके लिए प्रायः प्रत्येक बड़े स्टेशन पर इनफरमेशन आफिस (Information Offices) रहते हैं। इनसे यात्रीगण प्रायः प्रत्येक आवश्यक बातकी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इनके कर्मचारीमण्डलमें अंग्रेजी जानने वाले व्यक्ति भी रहते हैं। इससे जापानी न जानने वालोंका भी काम निकल सकता है। इस प्रकारके दफ्तर रेलवेके दफ्तरोंके अतिरिक्त जापान टूरिस्ट बूरोंके भी होते हैं।

जो यात्री नगरमें ठहरना नहीं चाहते और दो-चार घंटे घूम कर वापस चले जाना चाहते हैं, उनके लिए भी यदि उनके पास ऐसा सामान हो, जिसे वे लिये-लिये घूमना न चाहते हों, स्टेशनों पर एक व्यवस्था रहती है। प्रायः प्रत्येक बड़े स्टेशन पर क्लोक रूम (Cloak Room) बने हुए हैं। यात्री वहां जाकर अपना सामान रख आवे। वहांसे उसके सामानके बदले एक टिकट मिल जायगा। फिर जब वह टिकट वापस कर देगा तब उसे उसका सामान वापस कर दिया जायगा। इसके लिए साधारण-सा किराया लिया जाता है। यह व्यवस्था अपने देशके लगेज आफिसमें सामान आदि रखनेके समान ही है।

स्टीम रेलवेकी भाँति ही सब प्रबन्ध इलेक्ट्रिक रेलवेका भी है। भेद केवल यह है कि इलेक्ट्रिक रेलवे (जिन्हें जापानमें ट्रामवे ही कहते हैं) बहुत लम्बी-चौड़ी नहीं होतीं और न वे अधिक दूरी तक चलती ही हैं। जिस प्रकारसे स्टीम रेलवे देशके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चली गयी हैं, उस प्रकारका जाल बिजलीकी गाड़ियोंका नहीं है। ये खास-खास शहरोंके बीचमें दौड़ती हैं। इस भेदके अतिरिक्त एक भेद और है। वह यह कि इनमें एक ही क्लास रहता है। इनके स्टेशन अधिकांशमें स्टीम रेलवे स्टेशनोंके साथ ही रहते हैं, परन्तु कहीं-कहीं अलग भी हैं।

दूर-दूर स्थानोंको जानेके लिए हवाई जहाज भी चलते हैं। यात्रियोंको ले जानेके लिए हवाई जहाज जापान एयर ट्रान्सपोर्ट कम्पनी द्वारा चलाये जाते हैं। इस कम्पनीके जहाज टोकियो—

ओसाका, ओसाका, फुकुओका-फुकुओका—केइजी और केइजी डेइरिनके बीच चलते हैं। इन लाइनोंमें समय क्रमशः २॥, ३, ४, ४॥ घंटे और भाड़ा ३०, ३५, ४०, ४६ सेन लगता है।

यह विवरण तो जमीन पर चलने वाली या आसमान पर चलने वाली सवारियोंका हुआ। इनके अतिरिक्त वहां पर जमीनके अन्दर चलने वाली गाड़ियां भी हैं, जिन्हें अण्डर ग्राउण्ड रेलवे कहते हैं। इस प्रकारकी रेलवे बहुत कम हैं। फिर भी ये हैं बड़ी अनोखी। ये सब बिजलीसे चलने वाली गाड़ियां होती हैं। ऊपर जमीन पर शहरका सारा कारोबार हो रहा। सड़कें हैं, गाड़ियां चलती हैं और सब काम होते हैं। और नीचे बिजलीकी गाड़ियां दौड़ा करती हैं। जमीनकी सतह पर सायादार जीने बने हुए हैं। उन्हींसे नीचे उतरिये एक नयी दुनियां सी दिखलायी पड़ेगी। नीचे बाकायदा बढ़िया स्टेशन बना हुआ है। दूकानें हैं, भोजन गृह है, और सब सामान है। वहीं टिकट लेकर प्लेटफार्म पर जाइए, गाड़ी आयेगी और आपको निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचा देगी। जमीन खोदकर मार्ग सुरंगसे बनाये गये हैं, उन पर रेलकी पटरियां बिछी हैं, ऊपर बिजलीके तार लगाये गये हैं और सारे सुरंग भरमें स्थान-स्थान पर बिजलीकी बत्तियां जला करतीं हैं। इन्हीं सुरंगोंसे अण्डर-ग्राउण्ड रेलवे (जमीनके अन्दर चलने वाली रेलवे गाड़ियां) आया जाया करती हैं। जमीनके ऊपरसे इनका कोई पता भी नहीं चलता।

ये सब साधन तो हैं एक नगरसे दूसरे नगरतक ले आनेजानेके।

एकही नगरमें एक स्थानसे दूसरे स्थान तक ले जानेके लिए ट्रामें, बसें, टैक्सियां आदि हैं। ट्रामें यद्यपि उतनी सुन्दर नहीं। जितनी कलकत्तेकी नयी ट्रामें हैं, तथापि उनमें बैठनेकी सुविधा अच्छी है। कण्डाक्टर और ड्राइवर इनमें यहांकी भांति ही होते हैं। कण्डाक्टर बराबर एक सिरेसे दूसरे सिरेतक घूमा करता है। परन्तु वह किसी मुसाफिरसे कभी यह नहीं पूछता कि आपके पास टिकट है कि नहीं। वह शायद मान लेता है कि जो यात्री बैठा है, वह टिकट अवश्य लेगा। यह यात्रीका कर्तव्य है कि वह टिकट ले। टिकटकी जांच बीचमें कहीं नहीं होती। उतरते समय टिकट, ड्राइवर एकत्र करके पासके ही एक बक्समें डाल देता है। परन्तु एकत्र करनेके नियमकी पाबन्दीके लिए सख्ती नहीं की जाती। फिर भी ऐसे यात्री नहीं मिलते जो बिना टिकटके चलते हों। यही हाल रेलवेमें है। वहां भी बिना टिकट चलने वाले नहीं मिलते। कहते हैं कि बिना टिकट चलने वालोंकी संख्या जापानमें नगण्यसी है। संसारके किसी देशमें इतने कम बिना टिकट चलने वाले यात्री नहीं मिलते।

बसें ट्रामोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं। उनकी व्यवस्था भी ट्रामोंकी सी है। अधिकांशमें स्त्रियां कण्डाक्टरका काम करती हैं। इनमें बहुत अधिक नम्रता और विनय होता है। ये स्थान-स्थान पर बताती जाती हैं कि अब अमुक स्थान आया और अब अमुक।

टैक्सियां जापानमें बहुत हैं और सब बड़ी सुन्दर। किराया भी बहुत सस्ता। पहिले माइलके लिए ३० सेन और आगेके प्रति माइलके लिए १० सेन, इस प्रकारसे किराया लगता है। परन्तु

कहीं-कहीं ५० सेनसे कमका किराया नहीं है। ऐसे स्थानों पर यद्यपि ५० सेनमें ३ मील तक यात्री जा सकता है तथापि यदि वह बीचहीमें उतर जाय तो भी उसे ५० सेन ही देने पड़ते हैं। परन्तु यह व्यवस्था सर्वत्र नहीं है। टैक्सी ड्राइवरोंका बर्ताव भी अच्छा होता है।

इन सवारियोंके अतिरिक्त वहां अन्य सवारियां नहीं हैं। कुछ समय पहले तक रिक्शा थे, परन्तु अब उनका चलना एकदम बन्द हो गया है। घोड़ा गाड़ी, एक्का टांगा आदि वहां पहले से ही नहीं थे।

केबल वे और रोप-वे नामकी दो सवारियां वहां और भी हैं। ये सवारियां पहाड़ियों पर चलती हैं। पहाड़ी पर सीधी ऊँची चढ़ाईके लिए केबल-वे काममें आती हैं। चढ़ाईका रास्ता बराबर करके उसपर लोहेकी पटरियां, करीब २ वैसी ही जैसी रेलवेकी रहती हैं, बिछा दी जाती हैं। इन पटरियों पर एक डब्बा ऊपर चढ़ता और एक नीचे उतरता है। ये दोनों डब्बे लोहेके एक रस्सेसे बंधे रहते हैं। असलमें होता यह है कि ऊपरसे डब्बा छोड़ा जाता है, उसके बोझसे नीचेका डब्बा ऊपर चढ़ता है। इस खींचतानमें बिजलीकी मशीनें भी सहायक होती हैं जो ऊपर की ओर लगी रहती हैं। इनमें दुर्घटनाएं न हो जायं इसका काफी ध्यान रखा जाता है और इसके लिये पहिले तो रस्से आदि मजबूत रक्खे ही जाते हैं, इसके अतिरिक्त भी ऐसा प्रबन्ध रहता है कि यदि कहीं दुर्भाग्यवश रास्तेमें रस्सा टूट जाय तो डब्बे जहाँके तहाँ रोक लिए जायं।

लगभग इसी प्रकारकी व्यवस्था रोप वेकी भी होती है, अन्तर केवल यह होता है कि रोप वेके डब्बोंके लिए जमीनका आधार नहीं मिलता,रोप-वे ऐसी जगहोंमें चलाया जाता है,जहां पहाड़की एक नीची चोटीसे दूसरी ऊँची चोटी तक यात्रियोंको ले जाना होता है जिसके बीचमें गहरी खाई होती है। रोप वेमें भी रस्सा तो केवल-वेकी तरहका ही रहता है, परन्तु केबल-वेका रस्सा जमीनमें बिछी हुई पटरियोंके बीचसे खींचता है जब कि रोप वेका रस्सा ऊपर अन्तरिक्षमें लगे हुए लोहेके मजबूत रस्से परसे डब्बोंको खींचता है। रोप वेके नीचे बड़ी गहरी खाई होती है। वह तो कुछ ऐसा होता है जैसे दो खम्भोंमें रस्सी बांध कर उसपर लटकाकर डब्बे खींचे जायं। इसलिए ये अपेक्षाकृत अधिक भयंकर होते हैं। और इसका खतरा केबल वेकी भांति बचाया भी नहीं जा सकता। यदि रस्से टूट जायं तो परमात्मा ही खैर करे। परन्तु इस बातका ध्यान रखा जाता है कि रस्से आदि मजबूत रहें, इसलिए खतरेका भय बहुत कम रहता है केबल-वे और रोप-वे दोनों डब्बोंमें एक परिमित संख्यामें ही आदमी बैठते हैं, अधिक नहीं। फिर भी इनकी संख्या ३०-४० आदमियों तक हो जाती है।

समान ढोनेके लिए जापानमें अधिकांशमें तीन पहियोंकी मोटर साइकलें, जिनमें आगे ड्राइवरके बैठनेकी जगह होती है और पीछे चौखटेमें सामान रखनेकी, व्यवहारमें लायी जाती हैं। परन्तु अधिक सामानके लिए या बड़े सामानके लिए मोटर ट्रक इस्तेमाल किये जाते हैं और छोटे सामानके लिये मामूली साइकलें। मामूली

साइकलोंमें भी पीछे या बगलमें एक चौखटा बना लिया जाता है और एक आदमी काफी सामान ढो लाता है। साइकलके कैरियर पर भी बहुत सामान ढोया जाता है और साइकल पर बैठे हुए एक हाथमें सामान लेकर भी लोग चलते हैं। एक हाथमें १०-१०, १५-१५ चायके प्याले और टोस्ट आदिके सामानकी थैलियां लिये हुए साइक-लिस्ट ऐसी खूबीसे चलते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।

सामान ढोनेके लिए विशेष-विशेष स्थानोंपर कम्पनियां खुली हुई हैं। आप उन कम्पनियोंको इत्तिला कर दीजिए, उनका आदमी आ जायगा। आप सामान दिखा कर मेहनताना ठीक कर लीजिए, बस वे सब सामान ढोकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचवा देंगे।

जापानमें यातायातका नियंत्रण करनेके लिए पुलिस रहती है। अधिकांशमें बिजलीकी बत्ती जलाकर जाने और रुकनेका आदेश दिया जाता है। ट्राफिक कन्ट्रोल (यातायातका नियंत्रण) अपने देशमें केवल सवारियोंके लिए होता है। पैदल चलनेवाले आदमियोंके लिए वे आदेश लागू नहीं माने जाते। परन्तु वहां पर वह आदेश समान रूपसे सवारियों और पैदल चलने वाले दोनों पर लागू होता है।

अपने देशमें रास्तेमें चलनेका नियम यह है कि यात्रीको अपने बायें हाथकी ओर चलना पड़ता है। जापानके सम्बन्धमें सुना था कि वहां इससे उलटा रिवाज है अर्थात् वहांके आदमी सड़ककी दायीं ओर चलते हैं। परन्तु वहां जानेपर यह बात गलत साबित हुई। वहां भी लोग बाईं ओर ही चलते हैं। अब बाईं ओर चलना शायद संसारभरमें सर्वमान्य हो गया है।

सामाजिक रहन-सहन

जापानकी सामाजिक व्यवस्था प्रेम, शांति, सुख और सन्तोष से ओत-प्रोत है। इन सद्‌गुणोंका बड़ा सुखी दृश्य जापानके परिवारोंमें देखनेको मिलता है। लड़ाई, झगड़ा, ईर्ष्या, द्वेष आदि वहांके परिवारोंमें शायद ही कहीं दृष्टिगोचर होंगे। इस प्रकार उनका सामाजिक जीवन अनुकरणीय बना हुआ है।

जापानी समाजमें प्रवेश करते ही जिस बातका सबसे पहिले अनुभव होगा वह है उनकी विनयशीलता। विनम्रता और सेवा, मानवजीवनके वे दुर्लभ गुण हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अपने भयंकरसे भयङ्कर शत्रुओंको वशमें कर सकता है। और ये दोनों गुण जापा-

निक्कोकी रोप वे
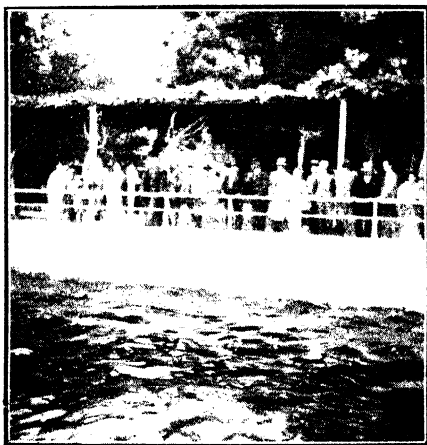
टकाराजुकाका एक दृश्य
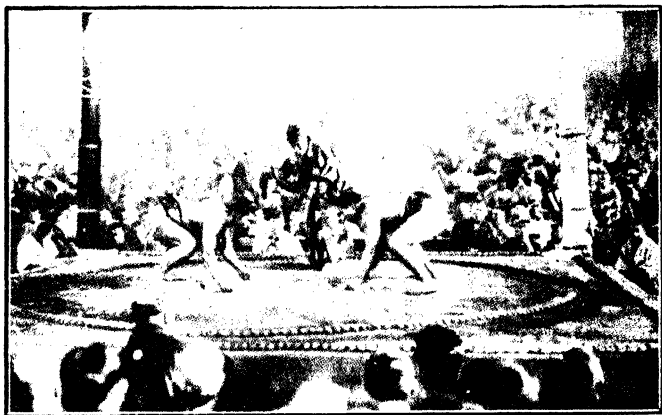
जापानी पहलवान लड़नेके लिए तैयार

सुमोंके लड़के कुश्ती लड़ना सीख रहे हैं।

नियोंमें खूब हैं। जिस ढङ्गसे ये किसी आगन्तुकसे मिलते हैं, उसमें इतना आकर्षण होता है, प्रेम और सहानुभूतिका वह प्रदर्शन होता है कि कोई सहृदय व्यक्ति उसे देखकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

उनके परिवारमें कलहके तो मानों प्रसंग ही नहीं आते। छोटे-छोटे बच्चोंको भी ऐसी टेव पहले ही से डाल दी जाती है कि साधारण समझाना बुझाना ही उनके लिये पर्याप्त हो जाता है। वे हठी दुराग्रही नहीं होते। साफ रहनेकी, घर की सफाई रखनेकी और काम करनेकी आदत उनमें लड़कपनसे ही डाल दी जाती है। सबेरे उठते ही परिवारकी स्त्रियां और बच्चे सब मिलकर अपने घरोंकी सफाई करते हैं। समय पर उनके सब काम हो जाते हैं। बच्चोंको अपनी आवश्यकताकी किसी चीजके लिए उचित समयसे अधिक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ती और इसीलिये उनके झुंझलाने या मचलनेके प्रसंग ही नहीं आते।

परिवारमें छोटे बड़े का ख्याल रखा जाता है। बड़ोंके प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित करना छोटोंका कर्तव्य है और इस कर्तव्यका पालन वहां पूर्णरूपसे किया जाता है। परन्तु कर्त्तव्य पालनमें यह नहीं होता कि बड़े छोटोंपर आतङ्क जमानेका कारण बन जांय। यद्यपि छोटे और बड़े में सम्मान और आदरका भाव अधिक मात्रामें है तथापि छोटोंको इतनी स्वतन्त्रता भी है कि बड़ोंके सामने सभी शिष्ट उचित वार्तालाप और क्रिया-कलापमें भाग ले सकें।

जापानके प्रत्येक परिवारमें एक परिवारिक चिन्ह होता है। यह

यद्यपि धार्मिक भावसे प्रचारमें नहीं आया था तथापि उसमें धार्मिकताका यथेष्ट आरोप हो गया है। यह चिन्ह उस परिवारके छोटे बड़े प्रत्येक व्यक्तिके वस्त्रोंपर अङ्कित रहता है। प्रत्येक परिवारका चिन्ह पृथक्-पृथक् होता है। ये चिह्न कपड़ोंकी पीठ पर तथा दोनों बाहुंओंपर अङ्कित रहते हैं। इस प्रथासे पारिवारिक एकता, सहानुभूति और प्रेम स्थापित करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। परन्तु अब जबसे वहांपर पाश्चात्य सभ्यताके फैशनने पदार्पण किया है, तब से इन चिन्होंका तिरोभाव होने लगा है। अब अधिकांशमें लोग इन चिन्होंको उत्तरीय (बाहरी) कपड़ोंमें नहीं अन्दरके कपड़ोंमें लगा कर पहनते हैं जिससे ये दिखलाई न पड़ें। और ऐसे भीआदमी हैं जो इन चिन्होंको बिल्कुल ही नहीं रखते।

मकानोंकी बनावट विचित्र-सी होती है। नक्शेकी विचित्रतासे यहांपर अभिप्राय नहीं है। प्रत्युत विचित्रता है उनके बनानेके ढङ्गमें। पहिले कहा जा चुका है कि वहां पर अधिकांशमें लकड़ीके मकान बनते हैं। उनकी दीवारें अलमारियोंके किवाड़ोंकी तरहकी होती हैं, और उनमें उसी प्रकार शीशे भी जड़े रहते हैं। कहीं-कहीं पर शीशोंके स्थानपर मजबूत कागज भी चिपका दिया जाता है। यह बनावट है पुराने ढङ्गके जापानी मकानोंकी। नये ढङ्गके जापानी मकानोंके बनानेका ढङ्ग यह है कि जिस प्रकार अपने देशमें मकान बनानेका ढांचा लोहेसे तैयार किया जाता है, उसी प्रकार उनका ढांचा लकड़ीसे तैयार किया जाता है। उस ढांचेपर दीवारोंके स्थान पर बांसकी टट्टियां लगायी जाती हैं। इन टट्टियोंपर कागजके बोर्ड लगाये जाते

हैं और कागज तथा और कई प्रकारका मसाला बना कर एक अजीब तरहका पलस्तर इसके ऊपर लगा दिया जाता है। इस पलस्तरके लग जानेके बाद मकान बिलकुल ईंट चूनेका बना हुआ नवीनतम ढङ्गकासा मालूम होने लगता है। पलस्तरमें तरह-तरहका रंग देकर मकानकी दीवारें बड़ी ही खुशनुमा बना दी जाती हैं। इस प्रकारके मकान प्राय: अंग्रेजी ढङ्गके होते हैं।

जापानी ढङ्गके मकानोंमें चारपायी कुर्सी, मेजें आदि नहीं होती। प्रत्येक कमरेके नापकी मोटी-मोटी चटाइयां बिछायी हुई होती हैं। इन चटाइयोंमें पयाल या घास आदि मुलायम चीज भरी रहती है और चारों ओर कपड़ेकी मगजी लगी रहती है। प्रत्येक कमरेकी माप लेकर इस ढङ्गसे चटाइयां तैयारकी जाती हैं जिससे पूरा कमरा चटाइयोंसे भर जाय। इन्हीं पर बिछौना आदि बिछा कर वे सोते बैठते हैं। उनके मकानोंमें खास तौर पर पुराने ढङ्गके मकानोंमें किवाड़े हमारे यहां के ऐसे नहीं होते। वे ऐसे होते हैं जैसे अपने यहां किसी किसी आलमारीमें होते हैं जो खोलनेके लिये आगे पीछे खींचे नहीं जाते बल्कि दाये बांये खिसकाये जाते हैं। इन दरवाजोंमें ताले भी नहीं लगाये जाते दोनों ओरसे खिसकने पर जब दरवाजें एक दूसरेके सामने आ जाते हैं, तब बीचके छेदमें कील घुसेड़ दी जाती है। यही तालेका काम देती है। मजबूत तालोंकी वहां जरूरत ही नहीं होती, क्योंकि चोरीका कोई डर ही नहीं है। इसीलिए कागज और शीशेकी दीवारें होती हैं।

घरकी सफाईका वे लोग खूब ख्याल रखते हैं। इसीलिए वे जो जूते बाहर पहनते हैं उन्हें घरके अन्दर नहीं ले जाते। बाहरके काम आनेवाले जूते घरके दरवाजे पर ही उतार दिये जाते हैं और घरके अन्दर पहननेके स्लीपर जो दरवाजे पर ही रखे रहते हैं, पहन कर घरके अन्दर जाया जाता है। फिर घरके अन्दर कमरेमें जो जूते पहने जाते हैं वे जूते पाखाने पेशाब घरके काममें नहीं आते। पाखाने और पेशाब-घरके जूते अलग रहते हैं। वे इन्हीं घरोंमें पहने जायंगे बाहर न आवेंगे। इस प्रकार पाखाने आदिके जूते अलग, कमरेमें पहननेके अलग, और बाहर पहननेके अलग होते हैं।

इन लोगोंका पुराना पहनावा तो स्त्री पुरुषोंका प्रायः एक सा ही था अन्तर केवल यह था कि स्त्रियां रंगीन और अधिक तड़क-भड़क-वाले कपड़े पहनती थीं और पुरुष सादे। परन्तु दोनों पहनते थे चोगा ही जिसे जापानीमें किमोनो कहते हैं। परन्तु अब पुरुषोंका पहनाव बिलकुल पृथक् हो गया है। पुरुषोंने यूरोपियन (या जैसा कि जापानी लोग कहते हैं अमेरिकन) ड्रेस अपना लिया है। स्त्रियां अब भी प्राचीन परिधान ही धारण करती हैं।

स्त्रियोंकी बांहोंमें एक कपड़ा रहता है जो नीचेकी ओर लटकता रहता है। इसकी लम्बाई उम्रके अनुसार न्यूनाधिक होती है जो लड़की जितनी कम आयुकी होती है। उसके आस्तीनका वह कपड़ा उतना अधिक लम्बा होता है। यह कपड़ा थैलीकी शक्लका-सा सिला हुआ होता है। अतः स्त्रियां उसमें रुमाल कागज पत्र आदि अपना आवश्यक सामान भी रखती हैं।

नंगे बदन जापानी प्रायः बिलकुल ही नहीं रहते। उनके पैर खुले नहीं रहते। जब वे कोट पैन्ट पहने रहते हैं, तब तो मोजे पहनते ही हैं, जब जापानी पोशाकमें रहते हैं तब भी वे मोजेकी तरहके कपड़े के जूते पहने रहते हैं। ये जूते जिन्हें जापानी भाषामें 'ताकी' कहते हैं अजब तरहके बने रहते हैं। इनका पंजा मोजेकी तरहका होता है परन्तु अंगूठा और बाकी सब अंगुलियोंको अलग-अलग रखनेके लिये दस्तानोंकी भांति की थैलियां होती हैं। उससे लाभ यह होता है कि लकड़ीके चप्पल पहननेमें सुविधा होती है। जापानी लोग खास कर जापानी स्त्रियां लकड़ीके चप्पल पहनती है जो खड़ाऊंकी तरहके होते हैं, परन्तु जिनमें खूंटी नहीं होती वरन् रस्सीकी बद्धियांसी बंधी होती हैं जैसी अपने यहांके किन्हीं-किन्हीं चप्पलोंमें होती हैं। ये चप्पल कई प्रकारके होते हैं। बाज-बाज की टापें तो इतनी ऊंची होती है कि देखकर आश्चर्य्य होता है कि इन्हें पहन कर ये लोग चल कैसे लेते हैं।

इनके बाल बांधनेमें भी एक ऐसा ही अभिप्राय है। जापानमें बाल बांधनेके दो बहुत प्रचलित तरीके हैं। एक साधारण अंगरेजी ढंगका और दूसरा ऐसा जिसमें बालोंको अजब ढंगसे दबाकर सरके बिलकुल ऊपरी भागमें जूड़ा बांधा जाता है। जो स्त्री जूड़ावाले ढंगसे बाल बांधती है, उसका विवाह हो चुका होता है। कोई अविवाहित लड़की जूड़ेवाले ढंगसे बाल नहीं बांधती। परन्तु अब अंगरेजी ढंगसे बाल बांधनेवाली प्रथा विवाहिता स्त्रियोंमें भी प्रचलित हो गयी है।

जापानियोंके बैठनेका ढंग एक विचित्र प्रकारका है। यद्यपि वे पहनते हैं कोट पैण्ट तथापि बैठते हैं घुटने टेक कर। पैरके तलवोंको ऊपर करके घुटनेसे पैरके अंगूठे तक पांव जमीन पर रखकर उसी पर वे इस ढंगसे बैठते हैं जिस प्रकार कभी-कभी भारतीय पहलवान अखाड़ेमें बैठे हुए पाये जाते हैं। यह बैठक स्त्री पुरुष दोनोंकी हैं। जापानी घरोंमें अधिकांशमें बैठक फर्शपरकी ही है, शायद इसीलिए इस प्रकार बैठनेका अभ्यास उन्हें हो गया है। इस प्रकार बैठनेका उन्हें इतना अभ्यास होता है कि घंटों बिना आसन बदले बैठे रहते हैं। बैठनेमें आसन बदलनेका शायद उन्हें कोई मौका ही नहीं आता वे दूसरे आसनसे बैठना जानते ही नहीं।

अतिथियोंका आगत-स्वागत करनेमें जापानी बड़े पटु होते हैं। ज्यों ही कोई अतिथि आवेगा वे उठकर उनसे मिलेंगे और उसे अतिथि-गृह तक ले जायेंगे। वहाँ चटाइयोंके ऊपर गोल-गोल तकिया तथा रेशमी आसन बिछाकर उन्हींपर अतिथिको बैठावेंगे। इसके बाद अतिथिके आगे एक डेस्क सी रख कर उसपर गरम पानीमें धोया तथा अच्छी तरह निचोड़ा हुआ साफ तौलिया जिसकी निचोड़ने की मरोड़ वैसी ही पड़ी हुई रहती है, एक रकाबीमें ला कर रख दिया जाता है। तौलिया इतना गरम होता है कि उससे भाप निकला करती है, अतिथि उस तौलियेकी ऐंठन छुटाकर उससे अपना मुंह पोंछता है। इससे उसकी थकावट दूर होती और सुस्ती जाती है। इसके बाद अतिथिके आगे जापानी चाय रखी जायगी,

और अतिथिसे उसे पीनेके लिये प्रार्थना की जायगी। यह चाय एक विचित्र ढङ्गकी होती है। एक खास किस्मके पत्तोंको पानीमें ऊबाल कर, बिना दूसरी कोई चीज डाले हुए ही यह पीने को दे दी जाती है। जिन्हें इस चायके पीनेकी आदत नहीं है वे इसे जरा भी पसन्द नहीं कर सकते। फिर भी इसका प्रचार खूब है। इसके बाद फिर अन्य खाद्य पदार्थ रखे जायँगे। यह नियम सदा पालन किया जाता है।

जापानमें स्वागत सत्कारको बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। जिसका अधिक स्वागत करना होता है। उसके स्वागतका प्रबन्ध करनेके लिये स्वागत सत्कार पटु स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं, जिन्हें गेसा कहते हैं। गैसाओंको विशेष रूपसे स्वागत सत्कार करनेका ढङ्ग लड़कपनसे ही सिखाया जाता है और अतिथियोंको रिझानेकी उनमें पटुता होती है। ये गैसा अपने हाथसे अतिथियोंको चाय पिलाती तथा भोजन आदि करवाती हैं। एक साथ सटकर बैठती हैं, किसी प्रकारका परहेज नहीं करतीं। फिर उनकी मण्डली नाच गा कर भी अतिथियोंका मनोरञ्जन करती है। जब जापानी लोग पार्टी आदि देते हैं, तब अधिकांशमें गैसाओंके घरमें ही पार्टियाँ दी जाती हैं।

जिस प्रकार जापानियोंके बैठनेका ढङ्ग विचित्र है, उसी प्रकार उनके नमस्कार करनेका ढङ्ग भी विचित्र है। अतिथिको सामने देख कर वे खड़े हो जायँगे, फिर हैट उतार कर हाथमें ले लेंगे और दोनों हाथोंकी हथेलियाँ घुटनों पर रखकर सर झुकायेंगे। इतना अधिक सर झुकाते हैं, जितना कि वे झुका सकते हैं। एक बार

सर झुका कर ही नमस्कारकी क्रिया समाप्त नहीं हो जाती दसों बार वे इसी प्रकार सर झुकाते और खड़े होते रहते हैं। कभी-कभी घुटने टेक और माथा जमीन पर रख कर भी नमस्कार किया जाता है।

जापानियोंमें बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदिका तो नामोनिशान नहीं है। २०-२२ बर्षसे पहिले तो किसीका चाहे लड़की हो चाहे लड़का विवाह किया ही नहीं जाता। उसके बाद विवाहकी बात आती है। विवाहके लिये पाश्चात्य देशोंकी सी कोर्ट शिपकी प्रथा वहाँ नहीं है। होता यह है कि माता पिता या अभिभावक कन्याके योग्य वरकी तलाश करते हैं और उसके बाद कन्या और वर दोनोंकी स्वीकृति ली जाती है तब विवाह होता है। विवाहमें दहेज आदिकी प्रथा नहीं है और न उसमें कोई बहुत बड़ा कर्म काण्ड ही किया जाता है। वहाँ वाले लड़कीको बरके घर न भेजकर वरको लड़कीके घर लाकर रखनेकी कोशिश करते हैं। जामाताओंको अपने घर रख लेना जापानियोंमें प्रतिष्ठा की बात मानी जाती है। विवाह आदिके सम्बन्धमें एक जापानी मित्रने पाश्चात्य ढङ्गकी विवाह पद्धतिसे अपने यहाँकी पद्धतिकी तुलना करते हुए बड़े सुन्दर ढङ्गसे कहा—पाश्चात्य देशोंकी स्त्रियाँ विवाहके पहले अपने पतियोंसे प्यार करती हैं; जापानकी लड़कियाँ विवाह हो जाने के बाद पतिका प्यार करती हैं। जापानकी लड़कियाँ विवाह हो जानेके बाद बड़ी पति परायण हो जाती हैं।

विधवा-विवाह और तलाककी प्रथाएँ भी वहाँ कानूनन जायज मानी गयी हैं। परन्तु जापानमें विधवा-विवाह और तलाकके मौके

बहुत ही कम आते हैं। अधिकांशमें उनका वैवाहिक जीवन सुख और शान्तिसे व्यतीत होता है। कभी-कहीं भूले भटके एकाध मामला इस प्रकारका हो गया तो हो गया, अन्यथा नहीं।

स्त्री पुरुषोंमें साधारण व्यवहारमें कोई विशेष भेद भाव नहीं माना जाता। दोनों स्वच्छन्दता पूर्वक बातें कर सकते हैं, जिससे चाहें मिल-जुल सकते हैं और एक समान आदर सत्कार पा सकते हैं। रेलों, ट्रामों, बसों आदिमें ऐसा नहीं है कि अमुक स्थान केवल स्त्रियोंके लिये है, उसमें पुरुष नहीं जा सकते। परदा ही नहीं। स्त्रियाँ स्वयं स्वतन्त्र हैं। अतः उन्हें भी पुरुषोंके बीच आनेमें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नहीं होती। पुरुष भी स्त्रियोंको देखकर कुछ घबड़ासे जाते हों, ऐसा नहीं है। स्त्री पुरुष सम्बन्धी भावना इतने उग्र रूपमें वहाँ नहीं है जितना यहाँ पर है। भीड़ आदिके अवसर पर किसी दरवाजेके पास भीड़ होती है तो दरवाजेका संरक्षक जिस स्वतन्त्रताके साथ पुरुषोंके अंग स्पर्श कर अन्दर जानेके लिये सहारा लगाता है उसी प्रकार स्त्रियोंका अंग स्पर्श कर उन्हें भी सहारा लगा देता है। और इस अंग स्पर्शसे किसीके मनमें कोई विकार नहीं होता। ट्राम, बस, रेल आदिमें भी शरीरसे शरीर सटे हुए स्त्रियाँ बैठी रहती हैं। किसी प्रकारका संकोच नहीं होता।

इस प्रकारकी सब स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर भी वे किसी सभा या पार्टी आदिमें पुरुषोंके साथ नहीं दिखलायी पड़ेंगी। पुरुषोंकी सभामें एक भी स्त्रीके दर्शन न होंगे। इतना ही नहीं वहाँ

पति पत्नी भी एक साथ घूमते हुए बहुत ही कम मिलेंगे। लोग पत्नियोंको साथ लेकर घूमने नहीं निकलते।

साधारणतया लोग पुरुषोंको श्रेष्ठ और स्त्रियोंको हीन समझते हैं। सम्भवतः इसलिये लड़केके होनेमें अधिक प्रसन्नता मनायी जाती हैं और लड़की होनेमें उतनी नहीं। जापानमें लड़का होने पर घरमें मछलीकी तरहका बना हुआ रंग-बिरंगा थैला सा टाँगा जाता है जो हवा लगनेसे उसी प्रकार फूल जाता है, जिस प्रकार हवाई जहाजके अड्डोंका झण्डा। लड़कियाँ होने पर अन्य प्रकारका झण्डासा लगाया जाता है।

जापानियोंमें छुआछूतका कोई भाव नहीं है और न ऊँच नीच का ही ऐसा भाव है, जिसमें एक समुदायका दूसरे समुदाय पर आतंक-सा जमा रहे। कोई भी मिलने आये बड़े प्रेमसे मिलेंगे और उचित आदर सत्कार करेंगे। इस प्रकार सबसे समानताका व्यवहार किया जाता है। भंगी, मोची आदिके काम करने वाले भी, समाजमें ऐसा ही स्थान पाते हैं, जैसे अन्य नागरिक। तथापि धन, सत्ता आदिके कारण थोड़ा बहुत भेद भाव तो रहता ही है और उसका यहाँ भी अभाव नहीं है।

जापानियोंमें कोई ऐसा परिवार नहीं है, जिसको खाने पीनेके लाले पड़ते हों अथवा जिसको रहनेका स्थान न हो। जैसा कि प्रत्येक स्वतन्त्र देशमें होता है, वहाँके देशवासियोंके भरण पोषणका भार राजाके ऊपर रहता है। परन्तु वहाँके देशवासी किसीके मोहताज होकर जीना नहीं चाहते। इसलिये ये सब गृह-

शिल्पके द्वारा अपने उदर पोषण भरका धन तो उपार्जित कर ही लेते हैं। दूसरोंके मिहताज न रहनेकी अपनी भावनाके कारण तथा अन्यान्य कारणोंसे भी वहाँ कोई भीखमंगा नहीं है। सारे जापान की आप सैर कर आइये कहीं एक भी भिखमंगा न मिलेगा।

एक विशेषता उनमें और भी होती है। वे धन उपार्जन तो करना चाहते हैं, परन्तु धन संग्रह करनेकी प्रवृत्ति उनमें नहीं है। ये कमाते हैं और निःशंक होकर खर्च भी करते हैं।

जापानमें उत्सव मनानेका बड़ा रिवाज है। कोई महीना ऐसा न जाता होगा, जिस महीनेमें कोई न कोई पर्व या उत्सव वे न मनाते हों। इस प्रकारका सबसे प्रधान उत्सव वे न्यू इयर्स डे (वर्षारम्भ) के दिन मनाते हैं। जापानियोंका वर्षारम्भ अंगरेजोंकी भाँति १ जनवरीको ही होता है। इस दिन आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष अच्छेसे अच्छे वस्त्र धारण कर खूब आनन्द मनाते हैं। लड़के पतंगें आदि उड़ाते तथा अन्यान्य प्रकारके खेल आदि करते हैं। यह वहाँका सबसे बड़ा राष्ट्रीय उत्सव माना जाता है। इसके बाद ३ मार्चको गर्ल्स फेस्टिवल (बालिकाओंका उत्सव) मनाया जाता है। इस उत्सवमें लड़कियाँ गुड़ियाँ सजा-सजा कर रखती हैं और उनके साथ खेलती हैं। इसी प्रकार ५ मईको बालकोंका उत्सव (Boys Festival) आता है। लड़के अपने उत्सवमें पुतलोंके योद्धा बनाकर लड़ाई आदिके खेल खेलते हैं। ७ जुलाईको नक्षत्र उत्सव मनाया जाता है। इसी दिन दो प्रेमी नक्षत्र आपसमें मिलते हैं, यह विश्वास जापानियोंका है और इसीके आधार पर यह उत्सव मनाया जाता है। जुलाईमें ही खास कर

टोकियोमें नदीके किनारे आतिशबाजी आदि छुड़ाई जाती है और एक उत्सव सा मनाया जाता है। इन उत्सवोंके अतिरिक्त चेरी सीजनमें पूरे अप्रेल भर उत्सव रहता है। चेरीके फूलोंकी शोभा और उस अवसरका जापानी चेरी-डान्स देखने योग्य होता है। झण्डा उत्सव भी जापानी बड़े समारोहके साथ मनाते हैं। इसके अतिरिक्त बीच बीचमें और भी अनेक उत्सव होते रहते हैं। इस प्रकार जापानी प्रायः सारे वर्ष उत्सव और आनन्द मनाया करते हैं।

स्त्री-समाज

थोड़ेसे थोड़े समयके लिए जाने वाला जापान-यात्री भी वहांके स्त्री-समाजके व्यवहार और उनकी सेवाओंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। छोटे बड़े प्रत्येक कार्यमें स्त्रियोंका हाथ है। बाजारोंमें दूकानदारी करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, बसों और ट्रामोंमें कण्डक्टर का काम करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, दफ्तरों और फर्मोंमें क्लर्कोंका काम करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, लिफ्टमैंनका कार्य करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, कल-कारखानोंमें मजदूरी करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, रास्ता बतानेके लिए गाइडका काम करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, घर बाहरकी सफाई करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, लड़कोंका पालन-पोषण करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी, घरकी रसोईं पानी करती हुई तथा एक

सद्गृहिणीका सब कार्य करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी और न जाने क्या-क्या करती हुई स्त्रियाँ मिलेंगी। घर गृहस्थी, व्यापार व्यवसाय, समाज-साहित्य आदि सब क्षेत्रोंमें स्त्रियोंका बड़ा जबर्दस्त हाथ है। यदि यह कहा जाय कि जापानकी वर्तमान उन्नतिमें कमसे कम ८० प्रतिशत हाथ स्त्रियोंका है तो शायद अत्युक्ति न होगी, यह कहकर हम पुरुषोंके श्रेयको न्यून नहीं करना चाहते। वास्तवमें उन्नतिके उपाय सोचनेका श्रेय अधिकांशमें पुरुषोंको ही है, परन्तु उन विचारों को कार्यान्वित करनेमें स्त्रियाँ पुरुषोंसे बहुत आगे हैं। यदि स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा सोची गयी योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें हाथ न बँटावें तो अकेले पुरुष इतनी उन्नति कदापि न कर सकें।

समाजमें स्त्रियाँ कानूनन पुरुषोंसे निम्न समझी जाती हैं। उन्हें साम्पत्तिक अधिकार नहीं होते और न उन्हें राजनीतिक अधिकार ही उपलब्ध हैं, तथापि स्त्रियाँ पुरुषोंकी स्वामिनी हैं, यह कहा जाय तो अतिकथित न होगा। अपने परिवारमें स्त्रियोंका पूर्ण आधिपत्य है। परिवारके सब कार्य उनकी इच्छाके अनुसार होते हैं। परिवारके कार्योंसे तो पुरुषोंका कोई सरोकार ही नहीं होता। घर की सफाई, रसोई पानीका प्रबन्ध, लड़कोंका लालन-पालन, घरके लिए आवश्यक वस्तुओंकी खरीद-फरोख्त, सब काम स्त्रियोंके हैं। इनमें पुरुषोंका कोई हाथ नहीं रहता। यदि किसी बातमें मतभेद हो जाय तो, यद्यपि पुरुष समाजमें श्रेष्ठ माना जाता है, तथापि घरके मामलेमें स्त्रीकी ही बातको मान्य समझा जायगा। परन्तु स्त्रियोंका यह अधिकार घरसे बाहर नहीं होता।

जापानकी स्त्रियोंमें बड़ा आकर्षण है। उनके रूपमें लावण्य नहीं है, परन्तु उनके व्यवहारमें इतनी मधुरता है कि उनसे बातें करते समय उनकी कुरूपता लक्ष्यमें आती ही नहीं। स्त्रियोंसे बात-चीत करना वैसे ही आकर्षक होता है फिर जापानकी सुशिक्षित, शिष्टाचारपरायण, विनयशील और सेवाव्रती स्त्रियोंसे बातचीत करनेकी तो बात ही क्या? घंटों बातचीत करते दिल न ऊबेगा। उनमें स्वयं प्रसन्नता तो होती ही है, वे दूसरोंको भी प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करती हैं। दुनियांके झंझटोंसे थके मांदे परेशान होकर परिवार के लोगोंके घर पहुंचते ही स्त्रियोंके प्रेमपूर्ण व्यवहारके कारण उनकी सारी परेशानी दूर हो जाती है। घरकी सद्गृहिणियोंकी तो बात ही क्या, होटलोंमें काम करने वाली स्त्रियाँ तक बाहरसे थके हारे आए हुए यात्रियोंको प्रसन्न करनेमें बड़ी पटु होती हैं। बाहरकी परेशानी होटल आते ही दूर हो जायगी। उनके चेहरे पर मुस्कराहट, उनके व्यवहारमें प्रेम, उनके काममें सेवाकी भावना, उनकी आंखोंमें शील, उनके मनमें नम्रता-सब मिलकर उनका आकर्षण और भी द्विगुणित कर देते हैं।

उनका वाह्य आकर्षण भी कम नहीं है। जापानी ढंगका चटकीला भड़कीला किमोनो पहने हुए दूरसे, उतनी दूरसे जहांसे उनके चेहरेकी बारीकियां स्पष्ट न होती हों, देखने पर वे इतनी आकर्षक लगती हैं, जिसका ठिकाना नहीं। जापानी स्त्रियोंमें रंगोंकी परख बड़ी अच्छी मालूम होती है। ऐसे सुन्दर-सुन्दर रंग वे अपने किमोनोके लिए पसन्द करती हैं, जिन्हें देखते ही बनता है। गठीले स्वस्थ

शरीर पर इस प्रकारके रंग विरंगे किमोनो बड़ी शोभा पाते हैं। मालूम नहीं इस शोभाके कारण अथवा प्राचीनताके प्रेमके कारण उन्होंने अपनी पोशाक नहीं बदली। यद्यपि जापानी पुरुषोंने प्रायः शत प्रतिशत यूरोपियन ड्रेस अपना लिया है, तथापि स्त्रियोंमें अब तक किमोनोका ही रिवाज है। कुछ स्त्रियोंको छोड़ कर जिनकी संख्या बहुत कम है, अन्य सब स्त्रियाँ किमोनो ही पहनती हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने प्राचीन वेशकी रक्षा की है।

उनके पहनावमें एक विभिन्नता और है। वे कमरमें विचित्र ढंगसे एक पट्टा बाँधती हैं। सुन्दर रेशमी और जरीके कामका चौड़ा-सा पट्टा, जो कमरसे लेकर छाती तक चौड़ा होता है, वे बाँधती हैं। पेट पर एक छोटी तकिया-सी रखती हैं और पीठ पर भी एक तकिया-सी रखती हैं। पीठकी तकिया पेट वालीसे अधिक मोटी होती है और उसके ऊपर पट्टा बांधनेके बाद भी पट्टेके छोर लटकते हुएसे छोड़ दिये जाते हैं। पट्टा खूब कसकर बांधा जाता है। सारी पोशाक पहनने पर वैसे तो बड़ी आकर्षक मालूम होती है, परन्तु पीछे कूबड़-सा निकल आता है, इस प्रकार पेट, पीठ कस लेनेके सम्बन्धमें वहांके लोग कहते हैं कि इससे स्त्रियोंकी कमर मजबूत रहती है और उनका पेट नहीं बढ़ने पाता। पहिली बात तो राम जाने परन्तु दूसरी बात सत्य अवश्य प्रतीत होती है। किसी जापानी स्त्रीका पेट निकला हुआ न दिखायी पड़ेगा।

जापानी स्त्रियां लड़कोंको गोदमें नहीं लेतीं। वे पीठ पर उन्हें लादे रहती हैं। पीठ पर जो पट्टा बँधा हुआ होता है, उसके ऊपर

लड़कोंको बैठाकर एक कपड़ेसे उन्हें लपेट लेती हैं और बोरेकी तरह पीठ पर लादे रहती हैं। इस प्रकार लड़कोंको घण्टों लादे वे अपना सब काम किया करती हैं। इस पद्धतिसे यद्यपि यह सुविधा होती है कि उनके दोनों हाथ खुले रहते हैं जिनसे वे अपना सब काम करती रहती हैं, तथापि लड़कोंको बड़ी तकलीफ होती होगी। छोटे-छोटे बच्चोंके पैर फैलाकर पीठके दोनों किनारों पर रखनेसे उनको अवश्य असुविधा होती होगी। साथ ही कपड़ेसे बँधे रहनेके कारण सांस लेनेमें भी उन्हें कठिनाई होती होगी। फिर भी यह प्रथा है और स्वास्थ्य और शरीर निर्माणके जानकार भी इसका विरोध करते हुए नहीं पाये जाते।

वहां स्त्रियोंमें परदा बिल्कुल नहीं है। वे स्वतन्त्रतापूर्वक भीतर बाहर आ जा सकती हैं, चाहे जिसके साथ घूम फिर सकतीं और बातचीत कर सकती हैं। उनके इस काममें सामाजिक रीति-रिवाज बाधक नहीं होते। इस सम्बन्धमें उन्हें उतनीही आजादी है जितनी पाश्चात्य देशोंमें है। फिर भी पाश्चात्य देशोंकी स्त्रियोंकी और इनकी तुलना नहीं हो सकती। पाश्चात्य स्त्रियोंमें लज्जा और संकोच का एक प्रकारसे अभाव सा हो गया है जब कि जापानी स्त्रियोंमें शील, लज्जा, संकोच, यथेष्ट मात्रामें विद्यमान है। इन गुणोंके कारण जापानी स्त्रियोंका आकर्षण पाश्चात्य स्त्रियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ जाता है।

जिस स्त्री जातिमें शिक्षा हो, स्वास्थ्य सुधारकी भावना हो, सफाईका ख्याल हो और संयमके साथ विधवा विवाह और तलाकका

रिवाज हो, वहां पर सामाजिक क्षेत्रमें सुधारकी बहुत थोड़ी गुंजायश रह जाती है। फिर भी वहां पर एक बड़ी घृणित प्रथा प्रचलित है। पिताकी सम्पत्ति पर तो कन्याका उत्तराधिकार नहीं होता, परन्तु उसके ऋण परिशोधनके लिए कन्याको भी कष्ट उठाना पड़ता है। कहते हैं जिनपर ऋण होता है वे पिता, ऋण-दाताको अपनी कन्याएँ दे देते हैं। वे कन्याएं उस समय तक ऋण-दाताकी सेवामें रहती हैं जब तक उसका ऋण चुक नहीं जाता। वे दी जाती हैं सम्मानित सेवाओंके लिए ही परन्तु उनसे घृणित कार्य भी लिये जाते हैं और वे न जाने किस धार्मिक भावनाके ख्यालसे उस प्रकारके घृणित व्यवहारकी शिकार भी बन जाती हैं। इसी प्रकारकी एक प्रथा और भी प्रचलित है। वह यह कि कुटुम्बका कर्ज चुकानेके लिए कन्याएं चाय घर, नाचघर, बार आदिमें काम कर लेती हैं, जहांका वातावरण भी अधिकांशमें दूषित होता है। कर्जके सम्बन्धमें वहां पर न जाने कैसी धारणा है कि इस प्रकारके गर्हित कार्य करके भी उसका चुकाना श्रेयस्कर माना जाता है। इस प्रकारके कार्योंमें अनेक युवतियां लगी हुई हैं। परन्तु इनमें होती हैं अविवाहित ही। उस दशा में जब किसी अनुचित सम्बन्धसे उनके गर्भ रह जाता है, तब अधिकांशमें तो कोशिश यह की जाती है कि जिस पुरुषसे उनका सम्बन्ध हो गया है, उसीके साथ उनका विवाह कर दिया जाय। परन्तु यदि यह सम्भव न हुआ तो समाजमें इस प्रकारके गर्भ धारण करनेवाली कन्याका अनादर होता है और उस अनादरसे अपनी रक्षा करनेके लिए उस बेचारीको आत्मघात तक कर लेना पड़ता है। यह अवस्था

कितनी भयंकर, कितनी घृणित और कितनी निन्दनीय है, इसपर कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। पहिले समाज। उन्हें उस प्रकारके गर्हित जीवन बितानेके लिए बाध्य करता है या कमसे कम सुविधा और प्रोत्साहन देता है और फिर जब वे विपथमें पड़ जाती हैं। तब उनका अनादर करता है ! जापान जैसे देशमें भी जहाँ शिक्षाकी अवस्था इतनी समुन्नत है, इस प्रकारके अत्याचार स्त्री-समाजपर होते हैं !

ऊपर जिस अवस्थाका वर्णन किया गया है उसपरसे यह आशंका होना स्वाभाविक है कि वहाँकी स्त्रियोंका चरित्र दोषपूर्ण है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। अविवाहित अवस्थामें इस प्रकार का जीवन बिताकर भी विवाह होनेके बाद उनमें इतनी उच्च कोटिकी पतिपरायणता आ जाती है जो आदर और सम्मानकी वस्तु है। जो लोग यह समझते हैं कि एक बार पथच्युत हो जानेके बाद फिर स्त्रीका जीवन कभी सुधर नहीं सकता। उनके लिए जापानकी इन कन्याओं का उदाहरण एक आश्चर्यजनक और आँखें खोल देनेवाला उदाहरण है।

ऊपर कहा जा चुका है कि स्त्रियोंमें परदा नहीं है और उन्हें घूमने फिरनेकी पूरी आजादी है। फिर भी उनका कार्यक्षेत्र बहुत कुछ घरेलू (private) रखा गया है सार्वजनिक (public) नहीं। सड़कोंपर आते जाते जापानी दम्पति बहुत कम मिलेंगे। स्त्रियाँ अलग और पुरुष अलग घूमें फिरेंगे। परन्तु साथ-साथ नहीं। इसी प्रकार सभाओंमें, पार्टियोंमें, तथा ऐसे ही अन्य सार्वजनिक ढंगके कार्योंमें स्त्रियोंका सर्वथा अभाव देखनेको मिलेगा। इन स्थानोंमें

यदि स्त्रियाँ दिखलायी पड़ेंगी तो सेविकाके रूपमें, सभासद्के रूपमें नहीं। सार्वजनिक कार्योंके लिए मानो स्त्रियोंकी योग्यता स्वीकार ही नहीं की जाती। राजनीतिक क्षेत्रमें तो यह बात और भी अधिक सत्य है। जापानकी स्त्रियोंको कोई भी राजनीतिक अधिकार नहीं है। पार्लियामेण्ट, लोकल बोर्ड आदिकी सदस्य बनना, या मैजिस्ट्रेटी आदि प्राप्त करना तो दूरकी बात है, उन्हें कहीं वोट देने तकका अधिकार नहीं मिला। देशके शासनमें स्त्रियोंकी कोई सुनवाई नहीं। इस जागृतिके युगमें स्त्रियोंकी इतनी दयनीय उपेक्षा और वह भी जापान जैसे समुन्नत और शिक्षित देशमें वस्तुतः खेदप्रद है, और आश्चर्य तो यह है कि स्त्रियाँ स्वयं इस अवस्थासे असन्तुष्ट नहीं मालूम होतीं। यह अवस्था आजसे नहीं आदिकालसे चली आ रही है फिर भी वहाँपर स्त्रियोंकी एक भी ऐसी संस्था नहीं है जो इस ओर किसी प्रकारका आन्दोलन करती हो और स्त्रियोंके अधिकारोंके लिए लड़ती हो। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं, एक तो अपनी घरेलू स्थितिमें स्त्रियोंका जो प्राधान्य है, उससे वे सार्वजनिक स्थितिकी अवहेलना की असुविधाओंका अनुभव नहीं करतीं और दूसरे यह कि उनमें लड़ाई झगड़ा करनेकी आदत नहीं होती। इसलिए सब काम शांतिके साथ चलता जा रहा है।

बालक बालिकाएं

जापानका बाल-समुदाय एक विचित्र ढंगका बाल-समुदाय है। उसमें सफाई है, स्वास्थ्य है, अनुशासन है, प्रसन्नता है और स्फूर्ति है। वह चंचल है, परन्तु उसके चांचल्यसे अत्यन्त निकट रहकर भी किसीको कोई हानि नहीं पहुंच सकती, इतना अनुशासन भी उसमें है। वह स्वतन्त्र और स्वच्छन्द है फिर भी समाजके शिष्टा-चार और सभ्यतामें उसकी स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता बाधक हो जाय इतनी निरंकुशता भी उसमें नहीं है। खुलकर खेलनेकी उसे पूर्ण स्वतन्त्रता है साथ ही सभ्य समाजके रीति-रिवाजों और संस्कारोंकी ऐसी गहरी छाप भी उसपर लगी हुई है कि वह अनियं-

त्रित रूपसे उच्छृङ्खलताकी ओर बहक नहीं सकता। इस प्रकार एक सँकरी गलीसे दोनों ओरके खतरे बचाते हुए चतुर खिलाड़ीकी भाँति वहाँके बालक निर्द्वन्द होकर उछलते कूदते रहते हैं। इस प्रकारके जीवनका उन्हें अनजानमें ही अभ्यास करा दिया जाता है। घरमें माता, पिता, विद्यालयोंमें शिक्षक और बाहर समाजके समस्त नर-नारी—सबके सब ऐसा उदाहरण सम्मुख उपस्थित करते हैं कि वह जान भी नहीं पाता कि उसपर किसी प्रकारका प्रतिबंध लग रहा है—अतः अपनी स्वाभाविक मस्तीके साथ खेलता भी रहता है और साथ ही साथ समाजके नियमोंके प्रतिबन्धका अभ्यासी भी बनता जाता है।

गन्दे कपड़े पहने, देहमें मैल मिट्टी लगाए तथा नाक थूकसे मुंह पोते हुए भद्दे लड़के वहाँ ढूढ़ने पर भी न मिलेंगे। उनके घरवाले उन्हें साफ रखनेकी कोशिश करते हैं और वे स्वयं भी अपने घर-वालोंसे ही साफ रहना सीखते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जापानी बालक जितना अधिक अपनी मां के पास रहता है, उतने अधिक समयतक अन्य किसी देशका बालक शायद ही रहता हो। जापानी माता बंदरियाकी तरह अपने बच्चेको पीठपर लादे ही लादे घूमा करती है। इसलिए उनमें माताके सब गुण अनायास ही आ जाते हैं। माताकी गोदसे अलग होते-होते वे समाजकी अनेक रीति-रिवाजोंसे अनजानमें ही परिचित हो जाते हैं और उसके बाद विद्यालयोंमें भेज दिये जाते हैं और वहाँ जाकर वे पूर्ण शिक्षा प्राप्त करते हैं।

उनमें काम करनेकी आदत भी पहले ही से पड़ जाती है। जो

लड़के काम करने योग्य हो जाते हैं उनको किसी न किसी काममें लगाये रखनेका उनके माता पिता बहुत अधिक ख्याल रखते हैं। घर की सफाई आदि जैसे कामों तकमें वहाँके लड़के माता पिता या अभिभावकोंकी मदद करते रहते हैं। जब इस प्रकारके कार्योंसे फुर-सत रहती है तब घरके उद्योग-धन्धोंसे सम्बन्ध रखनेवाले कामोंमें घरवालोंका हाथ बँटाते हैं। इन सब कामोंमें उन्हें अपने बड़ोंका सहारा बराबर मिलता रहता है। इस प्रकारके अभ्याससे उनमें परि-श्रम-शीलता और कार्यपटुता दोनों आती हैं जो आगे चलकर जीवनमें उनकी सहायक होती हैं। इस परिश्रमशीलता और कार्य-पटुताकी शिक्षा उन्हें विद्यालयोंमें भी बराबर मिलती रहती है। विद्या-लयोंकी दर्शनीय वस्तुओंके देखने आदिकी योजनामें बालकोंका मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, स्वास्थ्य सुधार आदि जो कुछ होता है वह तो होता ही है, उसके साथ ही उनमें परिश्रमशीलता और कष्टसहि-ष्णुता भी आती है।

अनुशासन पालनकी बात तो बहुत ही अधिक मात्रामें उनमें मिलती है। जिस वक्त बालकोंकी मण्डलियाँ यात्रा आदिके लिए निकलती हैं, उस समय उन्हें देखिए कितनी संयमशीलता, कितनी मुस्तैदी और कितनी नियमबद्धताके साथ वे चलते हैं! अपने संर-क्षकके आदेशका पालन करनेमें, तथा उनकी बातोंको ध्यान-पूर्वक सुननेमें वे सदा दत्त-चित्त रहते हैं। रोना चिल्लाना तो वहाँके लड़के जैसे जानते ही नहीं हैं। मेलों—मजमोंमें जहाँ सैकड़ों बच्चे हों, वहाँ भी रोते चिल्लाते या हो-हल्ला

मचाते हुए लड़के नहीं मिलेंगे। इनकी शाइस्तगीपर कभी-कभी तो आश्चर्य होने लगता है। एक दिन हम लोग टकाराजुका थियेटर देखने गये थे। उस थियेटरमें कोई १५-१६ हजार आदमी होंगे और उनमें स्त्रियोंकी संख्या कोई ८० प्रतिशत होगी। इनके साथ लड़के भी थे। परन्तु नाटकके समय सब इतने शान्त और चुप थे कि जरासी आवाज भी न सुनाई पड़ती थी। मेरे सामने एक ३-४ वर्षका लड़का बैठा था। मैंने देखा कि वह अपने अभिभावकसे बीच बीचमें नाटक सम्बन्धी आलोचना करता जाता था, परन्तु वह इतने धीरे बोलता था कि पास बैठनेवालोंको जरा भी असुविधा न हो। इतने छोटे बालकमें इतनी शाइस्तगी देखकर सचमुच प्रसन्नता होती थी।

लड़कों-लड़कियोंको देखनेके अनेक अवसर आते थे। बाजार घूमते हुए रास्तेमें अकेले दुकेले भी लड़के मिलते थे और दर्शनीय स्थानोंमें अपने-अपने स्कूलोंकी टोलियोंके साथ भी। बच्चोंके प्रति स्वाभाविक आकर्षण होनेके कारण इन सबसे मिलने और बातचीत करनेका मैं प्रयत्न करता था। भाषा न जाननेके कारण सयाने आदमियोंके साथ भी जो विचार विनिमय न कर सकता हो, वह लड़कोंके साथ बातचीत तो क्या कर सकता, परन्तु उनको खिलानेका आनन्द अवश्य मिलता था। लड़के-लड़कियाँ दोनों मिलती थीं। मैंने कई स्थानोंपर देखा कि जब किसी लड़केकी ओर बढ़ूं और उसे बुलाऊँ तो वह संकोचमें पड़ जाता और भागनेकी कोशिश करता और बहुत देर बाद इतना ढाढस उसमें आता था कि वह

नजदीक आये। यही हाल लड़कियोंका भी था। फिर भी तुलनात्मक दृष्टिसे लड़कियाँ अधिकांशमें अधिक साहसी मालूम हुईं। वैसे भी देखनेसे जितनी तेजी लड़कियोंके चेहरेपर दिखलायी पड़ती है। उतनी लड़कोंमें नहीं। इनसे मिलकर बात करनेमें जिसे न वे समझते थे न हम बड़ा मजा आता था। गोरा-गोरा बदन, गुलाबी गाल, मोटा मोटा शरीर, साफ सुथरे कपड़े पहने, प्रसन्न चित्त जापानके ये खिलौने जापानकी बड़ी अपूर्व निधि हैं।

आचार-विचार

मानव धर्मका निरूपण करते हुए महाराज मनुने कहा है :—

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधोः दशकं धर्म लक्षणम् ॥

इन लक्षणोंमें से एक-एक लक्षणको अलग-अलग लेकर यदि उनका आरोप जापानियों पर किया जाय तो पता लगेगा कि जापानियोंमें धार्मिकता बहुत अधिक है । एक ही आध लक्षण ऐसा निकलेगा जो उन पर घटित न होता हो अथवा उन पर सबके सब घटित हो जायंगे । धृति उनमें है, क्षमावान वे हैं, अस्तेय उनका प्रधान गुण है, शौच उनमें अपने ढङ्गका अद्वितीय पाया जायगा ही और विद्याकी

तो बात ही क्या पूछनी ? सत्य उनके आचरणमें पग-पग पर मिलता है और अक्रोधी तो वे स्वभावसे ही होते हैं। यदि कोई सन्देह रह जाता है तो दम और इन्द्रिय-निग्रहके सम्बन्धमें। मालूम नहीं इस ओर उनकी गति कितनी है। फिर भी यदि इन दोको छोड़ भी दिया जाय तो भी वे ८० प्रतिशत तो धार्मिक होते ही हैं। हम, जो मनुके अनुयायी बननेका दावा करते हैं, इन लक्षणोंका कहां तक पालन करते हैं ?

किसीसे मिलनेपर सबसे पहिले जो बात सामने आती है वह है उस आदमीके स्वभावकी, उसके व्यवहार-बर्तावकी और उसके शिष्टाचार अदि की। जापानियोंसे मिलनेपर भी यही बात सबसे पहिले शायद सबसे अधिक प्रभावशाली ढंगसे सामने आती है। विदेशी यात्री उनसे मिलकर पहिली ही मुलाकातमें उनकी शिष्टाचार-परायणता, उनकी विनम्रता, उनके शील आदिसे अवश्य प्रभावित होगा। इतने प्रेमके साथ और इतनी नम्रतापूर्वक वे यात्रीसे मिलते हैं कि बरबस आदर और प्रेम अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। अविनयको हिन्दू शास्त्रकारोंने बड़ा दोष माना है। इसीलिए प्रार्थना करते हुए "अविनय मपनीयतां विष्णो !" "क्षमियनाथ बड़ि अविनय मोरी" आदि प्रार्थनाएं विद्वानों तथा भक्तों द्वारा की गयी हैं। यह अविनय जापानियोंमें छू तक नहीं गयी। अभिमान नामकी तो कोई चीजही जापानमें नहीं है। बड़े-बड़े ऊँचे ओहदों पर काम करने वाले अधिकारी, बड़े-बड़े प्रभावशाली विद्वान धनवान व्यक्ति भी साधारण व्यक्तियोंका सा ही वर्ताव करते हैं और समाजमें

ऊँच नीचका भाव नहीं आने देते। वहांके गवर्नर तक जब बाजारमें निकलते हैं तो मामूली आदमियोंकी भांति ही घूमते फिरते हुए पाये जाते हैं। उनके साथ शान शौकत और करोंफरका साजो-सामान नहीं होता। विनम्रता छोटेसे लेकर बड़े तक सबमें भरी रहती है।

शिष्टाचारपरायण इतने होते हैं कि अपने शिष्टाचारसे आगन्तुकका मन हर लेंगे। इस विषयकी शिक्षा उन्हें अपने घरों, विद्यालयों तथा समाज, सब स्थानोंसे मिलती है। वे जानते हैं किस समय मनुष्य कैसी बात पसन्द करते हैं और उस समय वैसी ही बात करके उसको रिझानेकी वे चेष्टा करते हैं और चेष्टामें वे प्रायः सफल होते हैं। आगन्तुकसे मिलनेके लिये वे दरवाजे तक दौड़े जायंगे, बड़ी नम्रताके साथ नमस्कार करेंगे और उसे अन्दर ले जाकर बड़े प्रेमसे बिठाएंगे, स्वागत-सत्कार करेंगे और वर्तालाप करेंगे।

सेवाभाव इतना होता है कि अपना नुकसान उठाकर भी वे दूसरेका काम कारनेका प्रयत्न करेंगे। मुझे स्वयं ऐसे अनेक प्रसंग पड़े थे जिनमें जापानी भद्र पुरुषों द्वारा बड़ा काम निकला था। एक बार हम लोग शाक भाजी लाने जा रहे थे। शाक-बाजार मालूम न था। एक दूकानदारसे हम लोगोंने पूछा शाक-बाजार कहां है। उसने साधारणतः बता दिया कि अमुक स्थानसे अमुक दिशाको घूम जाइए। परन्तु यहां तो वह स्थान भी मालूम न था। हमने कहा भाई हम परदेशी हैं, वह स्थान भी नहीं जानते; मुड़ेंगे कहांसे। तुरंत उसने हमारे साथ अपना आदमी कर दिया और

उसे आदेश दिया कि वह हम लोगोंको शाक बाजार तक पहुंचा आवे। आदमी साथ हो लिया और बाजार तक, जो काफी दूर था, पहुंचाकर ही वापस आया। और जब उसके लिए हमने कुछ देना चाहा तो नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। उस दिन वह हमारे साथ लगभग एक घंटे तक था।

क्रोधका तो मानो उनमें अभाव होता है। बड़ेसे बड़े उत्तेजक प्रसंगोंमें भी वे क्षमा और धैर्यके साथ सब काम करते रहते हैं। शांतिप्रिय इतने हैं कि लड़ाई झगड़ाका कभी नाम तक नहीं लेते।

गाली आदि बकना तो उनके स्वभावके बिलकुल ही प्रतिकूल है। कहते हैं कि जापानी भाषामें गाली है ही नहीं। जिन शब्दोंकी आवश्यकता हीं नहीं पड़ती, उनका सृजन कैसे हो। सुना है जापानी भाषामें सबसे बड़ी जो गाली है उसका अर्थ होता है मूर्ख। इसके अतिरिक्त और कोई गाली नहीं। जहां लड़ाई झगड़ा होता ही नहीं, वहां गालियां आवेंगी ही कहां से ?

सत्यके सम्बन्धमें भी उनकी निष्ठा बड़ी प्रशंसनीय है। वे झूठ बोलते हुए कभी मिलेंगे ही नहीं। जापानियोंको स्वयं भी अपने आदमियोंकी सत्यवादितापर बड़ा विश्वास है। एक दिनकी बात है। मैं टोकियोमें था। खाना हम लोग अपना अलग बनाते थे और अपने लिये शाकादि भी हमें मंगाना पड़ता था। यह काम मैंने एक नौकरको दे रखा था। वह रोज कैश मेमो ले आया करता था और हिसाब समझा दिया करता था। एकदिन जब मैं बाहरसे आया तो होटलवालेने मुझसे कहा मि० शुक्ला, आज आपके आदमीने शाक

वालीको दाम नहीं दिये। मेरे पास कैशमेमो था और मेरे आदमी ने मुझसे हिसाब भी ले लिया था। मैंने स्वभावत: कहा कि उसने दाम तो दिये हैं और रोजकी तरह कैशमेमो भी ले आया है। उस आदमीने कहा नहीं, आज वह कैशमेमो तो जरूर लाया है पर दाम नहीं दिये; शाक वाली मेरे पास आयी थी और कह गयी है। मैंने अपने आदमीसे फिर पूछा। आदमीने फिर कहा कि दाम दे दिये हैं, लड़की झूठ बोलती है। मैंने होटल वालेसे यह बात कही। होटल वालेने कहा—"जापानी झूठ नहीं बोलते, आपका आदमी भूल गया होगा।" जिस विश्वासके साथ उसने यह कहा कि जापानी झूठ नहीं बोलते उसके सामने मेरी और कुछ कहनेकी हिम्मत ही नहीं पड़ी, अपने आदमीकी सचाई पर मुझे इतना विश्वास न था कि मैं उतनी दृढ़ताके साथ अपने आदमीकी सचाईका समर्थन करता। मैंने चुपचाप उस कैशमेमोके दाम चुका दिये। उनकी सत्यनिष्ठा और कर्तव्यपरायणताका ही यह फल है कि जापानमें कहीं किसी विभागमें भी रिश्वतका नाम नहीं है।

अतिथि सत्कार उनका विशेष गुण है। अपने अतिथिकी सुविधाका जितना ध्यान वे रखते हैं, उतना अन्यत्र कठिनाईसे पाया जायगा। अतिथि-सत्कारका यह भाव सद्गृहस्थोंके यहां तो मिलता ही है, होटलों आदिमें भी इसकी बड़ी आकर्षक झलक दिखलायी पड़ती हैं। एक उदाहरणने तो इस सम्बन्धमें हमें आश्चर्यचकित कर दिया। हम लोगोंके एक मित्र नागोयाके एक होटलमें ठहरे हुए थे। होटल वालेने पहले ही से कह रखा था कि १० मईको हमने अपना पूरा

होटल एक पार्टीको दे रखा है, इसलिए आप लोगोंको उस दिन होटल खाली कर देना होगा। तदनुसार उस दिन प्रातःकाल आकर होटल की परिचारिकाने उनसे कहा कि आज आप कमरा खाली कर दीजिए। मित्र महोदयको कुछ गुस्सा आ गया (यद्यपि वे कहते थे कि उन्हें गुस्सा नहीं आया था) और उन्होंने अपना सामान वगैरह फेंकना शुरू कर दिया। इस प्रकारके उग्र व्यवहारसे सर्वथा अपरिचित वह भोलीभाली परिचारिका, भौचकीसी हो गयी और उनकी चिरौरी विनती करने लगी कि वे नाराज न हों। वे फिर भी शांत न हुए तो वह लड़की वस्तुतः रोने लगी। उसको देखकर उस होटलकी अन्य परिचारिकाएं भी आ गयीं और सबने मित्र महोदयको समझाया बुझाया और उनसे कहा कि अब आप यहीं रहिए, हम नये आगन्तुकोंको समझा बुझा लेंगे, वे एक कमरेके बिना ही काम चला लेंगे। परन्तु मित्र महोदय पहिले ही से बाहर जानेका प्रोग्राम निश्चित कर कर चुके थे। अतः वे जानेकी ही जिद करने लगे। इसपर उन परिचारिकाओंने न केवल उनसे वादा करा लिया कि वे लौटती बार फिर वहां ठहरेंगे, वरन् उनकी एकाध चीज़ भी यह कह कर रख ली जब आप वापस आयेंगे तब उसे देंगे। इतना प्रेम उन्होंने एक उस अतिथिके लिए दिखाया जिसका दुबारा आना भी सम्भव न था और जिससे, उस किरायेके सिवा जो उन्हें पहले ही मिल चुका था, उन्हें और कोई सरोकार भी न था।

उनके इस प्रकारके व्यवहारके सम्बन्धमें वहांके कतिपय भारतीय मित्रोंने यह कहा था कि उनका यह व्यवहार केवल दिखानेके लिए

होता है। वास्तवमें वे इतने भले नहीं हैं। इतना ही नहीं उलटे वे कुटिल और प्रपंची होते हैं। उनके इस छलका हमें कुछ अनुभव नहीं हुआ। हम तो जो कुछ देख सके उसमें उनका उज्ज्वल रूप ही दिखायी पड़ा।

किसीकी चीज़ चुरा लेना जापानियोंकी कल्पनाके बाहरकी बात है। सड़कों पर सामान छूट जाय हजारों आदमी आते-जाते रहेंगे, मगर कोई उस सामान पर नजर तक न डालेगा। दूकानों और खास कर बड़े-बड़े स्टोरोंमें हजारों रुपयेका माल खुला पड़ा रहता है और भीड़ें भी हजारों आदमियोंकी रहती हैं फिर भी मजाल नहीं कि एक सुई भी कहीं चोरी चली जाय। दूसरोंकी चीज उठा ले जाना तो दूरकी बात है, यदि कोई आदमी अपनी चीज किसीके यहां भूल जाय तो भी वे उसे नहीं रखेंगे। एक बार का जिक्र है—हम लोग फूजी माउण्टन देखने जा रहे थे। रास्तेमें 'पिक्चर आइलेंड' नामका एक टापू पड़ा, जिस पर जानेके लिए एक काफी लम्बा पुल पड़ता था। टापूमें हम लोग गये और वहां पर सामान आदि भी खरीदा। हम लोगोंके एक साथी एक दूकान पर अपना कुछ सामान भूल आये। ४-६ फरलांगका लम्बा पुल पार कर हम लोग सड़क पर आ गये, तब तक उन साथी महोदयको अपने सामानकी याद नहीं आयी। बाहर हम लोग फोटो आदि लेने लगे। उसमें हमें कुछ विलम्ब हो गया। इतनेमें देखा कि पुल परसे हाथमें पुलिन्दा लिये हुए एक लड़की दौड़ी चली आ रही थी। तब तक किसीको याद न था कि सामान छूट गया है। उसने हम लोगोंसे आकर

जापानकी बातें

जापानी बालकोंका उत्सव
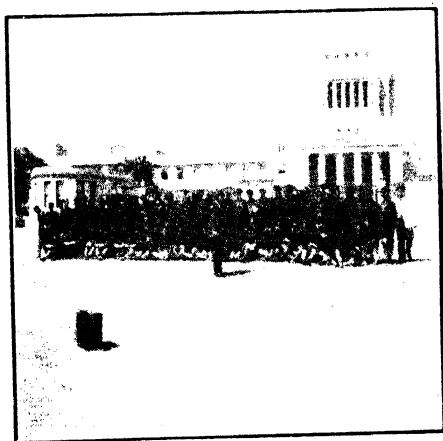
जलपान करती हुई बाल-मण्डली

बालक और बालिकाओंके जन्मोत्सव पर उड़ायी जाने वाली पताकाएं

कहा कि आप लोगोंका यह सामान मेरी दूकान पर छूट गया था, अब आप अपना सामान लीजिए। सामान देखकर उन साथी महोदयको याद आयी और उन्होंने सामान लेकर उस लड़कीको धन्यवाद दिया। जरा इस अवस्था पर विचार कीजिए। एक अवस्था वह होती है जब जानबूझ कर दूसरोंका सामान चुराया जाता है, दूसरी अवस्था वह होती है जब भूला हुआ सामान हजम कर लेनेकी कोशिशकी जाती है, तीसरी अवस्था वह होती है, जब हजम करनेकी कोशिश तो नहीं की जाती, परन्तु यह प्रतीक्षा की जाती है कि जिसका सामान है वह अपने आप आकर ले जायगा। और एक अवस्था यह है कि इतनी लम्बी दूरी तय करके और अपनी दूकानदारीका थोड़ा बहुत नुकसान उठा कर दौड़कर भूला हुआ सामान देने आयी! हम लोग तो उसके इस व्यवहारसे सचमुच कृतज्ञताके मारे नतमस्तक हो गये।

कार्यशीलता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। आलस्यमें समय काटना जापानियोंका स्वभाव नहीं है। वे कुछ-न-कुछ कार्य करते रहेंगे।

उनका देश-प्रेम और उनकी राजभक्ति भी प्रशंसनीय है। अपने देश और अपने राजाके नाम पर वे सब कुछ न्यौछावर कर सकते हैं। जब तक उन्हें अपने देशकी बनी हुई वस्तु मिलेगी, तब तक वे दूसरे देशकी वस्तु न खरीदेंगे चाहे वह सस्ती, अच्छी, मजबूत भले ही हो। देशकी प्रतिष्ठाका इतना भाव है कि उसकी अप्रतिष्ठाकी बात कोई जापानी नहीं सुन सकता।

प्रसन्न रहना भी जापानियोंकी एक खूबी है। चाहे जिस अवस्था में हो उनके चेहरे पर मुस्कराहट जरूर दिखलायी पड़ेगी। जब बोलेंगे तभी हँसते हुए। लड़ाई झगड़ाका नाम तो वे जानते ही नहीं। यदि अकस्मात् लड़ाईका प्रसंग भी आ पड़ेगा तो वे लड़ते हुए नहीं उलटा एक दूसरेसे माफी मांगते और धन्यवाद देते हुए दिखलायी पड़ेंगे। उनके चेहरे पर क्रोधके लक्षण तो दिखलायी ही नहीं पड़ते। शोकके अवसरों पर भी उनका मुंह मलीन नहीं होता। हमारे एक मित्रने बड़े मजेमें कहा था कि जापानी तो अपना शोक-समाचार भी हँसकर सुनाते हैं।

ऊपर जापानियोंकी नम्रता आदिका उल्लेख किया गया है। वे वास्तवमें नम्र हैं भी अधिक, परन्तु उनमें आत्माभिमान भी कम नहीं है। वे प्रतिष्ठाकी जिन्दगी बसर करना चाहते हैं और अप्रतिष्ठा थोड़ी भी नहीं सह सकते। अप्रतिष्ठित जीवनसे वे मृत्युका आलिंगन अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। उनके स्वाभिमानकी भावनाका ही यह फल है कि वहाँ पर आत्महत्याकी संख्या सब देशोंसे अधिक है। आत्महत्याकी संख्यामें प्रेम सम्बन्धी हत्याएं भी होती हैं और विपत्तियों के सम्बन्धकी भी, परन्तु ऐसी हत्याएं भी कम नहीं होतीं जिनमें लोग केवल इसलिए आत्महत्या कर डालते हैं कि उनकी प्रतिष्ठामें आघात पहुंच रहा है। कहते हैं कि ऐसी आत्महत्याएं भी हुई हैं जो सिर्फ इसलिए की गयी हैं कि आत्म-हत्या करने वालेको जो काम सौंपा गया था वह पूरा नहीं कर सका। जिन्दगीका उन्हें कोई मोह नहीं है। कर्तव्य पूरा न कर सकना, अपनी अपकीर्ति सहना तथा

ऐसे ही अन्य कार्योंसे वे मर जाना ही अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। वहांकी हराकेरी (आत्म-हत्या) की प्रथा संसार प्रसिद्ध है । जीवन और संसारसे इतनी अनासक्ति अन्यत्र मिलेगी ही नहीं । हम लोग अपने दर्शन ग्रन्थोंमें इस संसारकी असारता और शरीरकी क्षण-भंगुरताकी बातें भले ही पढ़ते हों, परन्तु अभ्यासमें हम इतने मोही हैं कि इनसे अपना सम्बन्ध एक निमेषके लिए नहीं छोड़ सकते और आत्माके अमरत्वकी पट्टी पढ़ते हुए भी हम मृत्युसे शायद सबसे अधिक डरते हैं ! हमारी तुलनामें तो मृत्युका आलिंगन करने वाले जापानी कहीं अधिक दार्शनिक हैं ! किसी जमानेमें हमने उन्हें धर्म-शास्त्र और दर्शनका ज्ञान दिया था, परन्तु आज तो हम उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं ।

धर्म

व्यापक और सार्वभौम मानव धर्मके अनुसार यहाँ पर धर्म की परिभाषा नहीं करनी। धर्मसे केवल उन सम्प्रदायोंका अर्थ अभिप्रेत है जो धर्मके नाम पर संसारमें प्रचलित हैं। इस प्रकारके सम्प्रदायोंमें जापानमें मुख्यतया तीन धर्म प्रचलित हैं—शिन्तो, बौद्ध और ईसाई। जापानका आदि धर्म क्या रहा है, यह कह सकना तो कठिन है; परन्तु जबसे बौद्ध प्रचारक वहाँ गये तबसे वहाँका धर्म निश्चित रूपसे बौद्ध चला आ रहा है। यह धर्म आज भी काफी बड़ी जन संख्यामें प्रचलित है। बीचमें तो इसका प्रचार इतना अधिक था कि समस्त देशमें इस धर्मके अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म

था ही नहीं। परन्तु बौद्ध धर्मके अभ्युदयके साथ ही साथ कन्फ्यूशस द्वारा प्रचालित शिन्तो धर्मने जन्म पाया और उसका जन्म कुछ ऐसे शुभ मुहूर्त पर हुआ कि धीरे-धीरे उसकी वृद्धि होने लगी और उसी अनुपातसे बौद्ध धर्मका ह्रास होने लगा। यहाँ तक कि अब यह अवस्था है कि जापानमें शिन्तो धर्मका जितना प्रभाव है, उतना बौद्ध धर्मका नहीं है। ईसाई धर्म तो बीचका एक धर्म है जो ईसाई पादड़ियोंके प्रचारका फल है। परन्तु उसका प्रचार जापानमें बहुत ही कम है, नगण्य सा।

सबसे अधिक प्रभाव है शिन्तो धर्मका। इसका प्रधान कारण तो यही मालूम होता है कि राजघरानेने इसे स्वीकार कर लिया है और वास्तवमें इस धर्मका प्राधान्य उसी समयसे हुआ जबसे कि यह राजघरानेका धर्म बन गया। शिन्तो धर्मावलम्बी, किसी देवताकी पूजा नहीं करते। वे हिन्दू धर्मकी निराकार उपासनाके समान, कुछ निराकार सी ही उपासना करते हैं। उनके मन्दिरोंमें कोई प्रतिमा नहीं होती। मन्दिर होते हैं, किन्तु उपासनाका स्थान खाली पड़ा रहता है। भक्त गण वहीं जाते हैं और पूजा-अर्चा करके चले आते हैं। शिन्तो मन्दिरके दरवाजे पर प्रायः कागजकी झालर जो सर्पाकार टेढ़ी मेढ़ी सी बनी होती है, टँगी रहती है। कागजके अतिरिक्त यदि परदे आदि भी होते हैं तो उनमें भी इस प्रकारकी सर्पाकार नक्काशी कढ़ी रहती है। मन्दिरके अन्दर भी कभी-कभी झालर रहती है और कभी-कभी झालरके स्थान पर कागजकी तलवार लगी रहती है। कभी-कभी मन्दिरके अन्दर एक

शीशा लगा रहता है। ये सब चिन्ह उस देवताके माने जाते हैं, जिसे पूजनेके लिए जापानी लोग आते हैं।

बौद्ध लोग बुद्ध भगवानकी प्रतिमाकी उपासना करते हैं। मन्दिरों में जो बौद्ध प्रतिमाएँ हैं, उनमेंसे अधिकांश ध्यानावस्थित अवस्थाकी ही हैं। परन्तु कहीं-कहीं शयन किये हुए, उपदेश देते हुए, प्रसन्न मुख बैठे हुए आदि मुद्राओंकी प्रतिमाएँ भी हैं। बौद्ध धर्म मध्य युगका बहुत प्रभावशाली धर्म था; इसलिए बुद्ध भगवानकी प्रतिमाएँ अनेक स्थानों पर और भिन्न-भिन्न आकार प्रकारकी बनी हुई हैं। इस दृष्टिसे प्रतिमा-निर्माणके लिए जितना धन, शक्ति और समय बुद्ध भगवानकी प्रतिमाओंका निर्माण करनेमें व्यय किया गया है, उतना अन्य किसी धर्मकी उपास्य मूर्तिके सम्बन्धमें न किया गया होगा। नारा और कामाकुराकी संसारप्रसिद्ध बौद्ध प्रतिमाएँ इतनी विशाल काय हैं कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है कि उस जमानेमें (आठवीं और तेरहवीं शताब्दी में) इतनी विशालकाय प्रतिमाएँ कैसे बनायी जा सकी थीं। इस प्रकार बौद्ध प्रतिमाओं और मन्दिरों का निर्माण यथेष्ट मात्रामें हुआ था और अब भी उनकी संख्या शायद अन्य धर्मके मन्दिरोंसे अधिक ही होगी।

ईसाई धर्म जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, नगण्य सा है इसलिये उसके गिरजा घर भी कोई ऐसे विशाल या प्रसिद्ध नहीं हैं जिनके उल्लेख की आवश्यकता हो।

साधारण व्यवहारमें मन्दिरोंको जापानी लोग टेम्पल और श्राइन (Temple, Shrine) के नामसे पुकारते हैं। वैसे अंग्रेजीमें

टेम्पलका अर्थ तो मन्दिर होता है, परन्तु आइनका अर्थ केवल प्रतिमा होता है, परन्तु जापानी उसका भी मन्दिरके अर्थमें ही प्रयोग करते हैं। चर्चकी चर्चाको तो हम छोड़ ही देते हैं। आइन और टेम्पल ही शब्द मन्दिरके लिए प्रयोगमें आते हैं। परन्तु इनके प्रयोगमें वे भेद रखते हैं। जब उन्हें शिन्तो धर्मके मन्दिरका उल्लेख करना होता है, तब शिन्तो आइन और जब बौद्ध मन्दिरका उल्लेख करना होता है तब बौद्ध-टेम्पल कहकर पुकारते हैं। इस प्रकार केवल आइनसे शिन्तो मन्दिरका और टेम्पलसे बौद्ध मन्दिरका बोध हो जाता है। दोनों प्रकारके मन्दिरोंकी सफाई आदि व्यवस्था बड़ी अच्छी है। मन्दिर स्वयं काफी बड़े-बड़े हैं। परन्तु उनकी बनावट हमारे यहाँके मन्दिरोंकी-सी नहीं है। जापानी मन्दिरोंकी बनावट कुछ-कुछ ऐसी है जैसी अपने यहाँके खपरैल छाये हुए एक मञ्जिले मकानोंकी। उन पर खपरैलकी जगह पर अधिकांशमें लकड़ीके तख्ते जड़े होते हैं और उनकी बनावट बड़ी खुशनुमा होती है। प्रायः प्रत्येक मन्दिरमें, खास तौर पर शिन्तो-आइनके आगे लकड़ीका तोरन द्वार अवश्य होता है और किसी-किसीमें एकसे अधिक तोरन-द्वार भी होते हैं। मन्दिरोंसे लगा हुआ बड़ा लम्बा-चौड़ा आहाता होता है जो कहीं-कहीं बगीचे आदि की भाँति वृक्षों और लताओंसे सजाया हुआ होता है और कहीं-कहीं कुछ अन्य इमारतोंसे। ये स्थान भी बहुत साफ सुथरा रखे जाते हैं। मन्दिरोंके अन्दर चित्रकारी, पच्चीकारी, संगतराशी, नक्काशी आदिके अच्छेसे अच्छे काम देखनेको मिलते हैं।

मन्दिरोंकी नक्काशी आदिमें थ्री वाइज मंकीज़ (Three wise

monkeys) की तस्वीरें अक्सर अङ्कित होती हैं। थ्री वाइज़ मंकीज़का अर्थ है तीन बुद्धिमान बन्दर। इनकी तस्वीरोंमेंसे एक बन्दर अपनी आंखे बन्द किये हुए, एक अपने कान बन्द किए हुए और एक अपना मुंह बन्द किये हुए अङ्कित किया जाता है और इसका अभिप्राय यह है कि बुरे दृश्य न देख, बुरी बातें न सुन और बुरी बातें न कह। इस कपि-त्रिमूर्तिका प्रचार मन्दिरोंके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें भी पाया जाता है। इनके खिलौने भी बनते हैं और छड़ियों आदिमें भी ये अङ्कित कर दिये जाते हैं।

जापानियोंके मन्दिर पूजागृह तो हैं ही, साथ ही साथ वे अतिथियों को ठहरानेके काममें भी लाये जाते हैं। अतिथि ठहरानेकी व्यवस्था टेम्पलोंमें ही: है। यहां ठहरनेवालोंको हर प्रकारकी सम्भव सुविधाएं दी जाती हैं। परन्तु मन्दिरोंमें ठहरना जापानी समाजमें अप्रतिष्ठाकी बात है।

जापानियोंकी पूजा-प्रणाली भी विचित्र है। अपने यहांकी भांति चन्दन अक्षत फूल मालाएं आदिसे वे पूजा नहीं करते। परन्तु गंध और दीप वे अपने ढङ्गसे रखते हैं। प्रार्थनाके लिए मन्दिरोंमें आसन पड़े रहते हैं जिनमें बैठकर भक्तगण स्तुति: आदि करते हैं। जो लोग वैसे ही दर्शन करने आते हैं, वे बड़ी भक्तिके साथ मन्दिरके द्वारपर आकर मन्दिरके अन्दर पैसा (सेन-येन आदि) फेंक कर आंखें बन्द करके तीन बार ताली पीटते हैं और फिर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। कभी-कभी अधिक भावुक भक्त कृताञ्जलि हो घुटने टेक और माथा टेक कर भी

नमस्कार करते हैं। नमस्कारकी यह प्रथा हिन्दुओंकी सी ही है।

मन्दिरोंमें यद्यपि पैसा आदि चढ़ानेका नियम है और प्रत्येक मन्दिरमें पंडे-पुजारी रहते भी हैं, तथापि वहांके पुजारी किसी भक्तसे पैसा चढ़ानेके लिए आग्रह करना तो दूर रहा उनसे कहते तक नहीं हैं और न उन्हें उसके लिए दूसरे ही प्रकारसे उत्साहित करते हैं। वहांके पुजारियोंकी अपने यहांके पंडे-पुजारियोंके साथ तुलना करने पर तो जमीन आसमानका अन्तर मिलेगा। जिन लोगोंको यहांके तीर्थ स्थानोंमें जाने आनेका मौका मिला है, वे जानते हैं कि पण्डों पुजारियोंके व्यवहारसे भक्तिके स्थान पर उलटा क्रोधका उन्मेष होता है। जिस देव-स्थानपर स्वार्थ त्याग, भक्ति और शांति का वातावरण होना चाहिए उस स्थानपर अपने यहां स्वार्थपरता, कुटिलता, नीचताका वातावरण पाया जाता है। स्थान-स्थानपर टैक्ससे लगे हैं जब तक वह टैक्स न चुकाया जाय तब तक देव दर्शन दुर्लभ है। और फिर टैक्सके लिए बेचारे भक्त किस बुरी तरहसे नोचे खसोटे जाते हैं! उन्हें देखकर तरस आता है और उनकी स्थितिमें स्वयं पड़कर तो न जाने क्या-क्या मनमें आने लगता है। मनकी उस अवस्थामें क्या तो भक्ति हो सकती है और क्या पूजा पाठ।

वहांके मन्दिरोंमें भिखमंगे भी नहीं होते। परन्तु वहां एक प्रथा है। सब मन्दिरोंमें तो नहीं परन्तु कुछ खास-खास बड़े मन्दि-रोंमें मन्दिरका निरीक्षण करनेके लिए टिकट लगता है। प्रत्येक

ऐसे स्थानपर टिकटघर बना हुआ है जहां निश्चित रकम देनेपर टिकट मिल जाता है और उसके बाद यात्री सब स्थान देख सकता है। टिकट घरमें ही उस मन्दिरके सम्बन्ध की समस्त जानकारीके लिए वहांके चित्र, वहांकी पुस्तिकाएं आदि भी मिलती हैं। इनके दाम अलग लगते हैं। इनको पढ़ लेनेके बाद फिर उस मन्दिरकी बहुत सी बातें मालूम हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः प्रत्येक मन्दिरमें ऐसे कर्मचारी रहते हैं, जो उस मन्दिरके इतिहास आदिके सम्बन्धकी बातें जिज्ञासुओंको बताते रहते हैं, इसलिए जहां टिकट की प्रथा नहीं है, वहां भी मन्दिरके सम्बन्धकी बातें तो मालूम हो ही सकती हैं।

तीन धर्म्मोंके चलनकी बात ऊपर कही गयी है। जापानमें ये तीनों धर्म हैं। और प्रत्येक धर्मके माननेवाले भी हैं। परन्तु धर्मके सम्बन्धमें इन लोगोंमें कट्टरताका नामोनिशान तक नहीं है। एक ईसाई है, इसलिए बौद्धोंका उसके साथ खानपान या सामाजिक व्यवहार न होगा अथवा कोई शिन्तो है इसलिए किसी ईसाईका उसके साथ रोटी बेटीका सम्बन्ध नहीं हो सकता इस प्रकारकी संकीर्णता उनमें नहीं है। जापानियोंकी नजरमें धर्म व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका विषय है। जिसे जो धर्म पसन्द आवे वह उसका पालन करे उसपर जापानी समाज किसी प्रकारका प्रतिबंध नहीं लगाता। जहां अन्यान्य देशोंमें धर्मके नामपर सर फुड़ौवल हुआ करती है, धर्म-धर्म चिल्लाकर एक खुदाका बन्दा दूसरे भगवान्‌के भक्तके खूनका प्यासा होता है, धर्मके लिए रक्तकी नदियां बहती हैं, अग्निकांड और हत्याकांडोंके

नग्न नर्तन होते हैं, वहां जापानकी यह उदारता वास्तवमें प्रशंसा और अनुकरणकी वस्तु है। उनकी उदारता इस हद तक बढ़ी हुई है कि समाजके भिन्न-भिन्न परिवार तो अलग-अलग धर्मके माननेवाले होते हैं, एक ही परिवारके भिन्न-भिन्न व्यक्ति भी पृथक्-पृथक् धर्मके अनुयायी हो सकते हैं। एक परिवारका पति बौद्ध हो तो पत्नी स्वतन्त्रता पूर्वक शिन्तो हो सकती है। इसी प्रकार लड़केको यदि ईसाई धर्म पसन्द आ जाय तो उसे स्वीकार करनेमें कोई बाधा अभिभावकोंकी ओरसे नहीं आयगी। इस प्रकार भिन्न-भिन्न धर्मोंका ग्रहण करके भी उनका कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन एकसा ही बना रहता है। इस प्रकारके आचरणका एक प्रधान कारण यह मालूम होता है कि उन्होंने धर्मके साथ अपनी सभ्यता, संस्कृति, सामाजिक व्यवहार आदिको मिला नहीं दिया। उनका धर्म उनकी सभ्यता संस्कृति आदिसे काफी बचावके फासलेपर रहता है। वह उनकी सभ्यता आदि पर प्रभाव नहीं डाल सकता। उनकी सभ्यता उनकी संस्कृति और उनका सामाजिक व्यवहार निर्धारित और अबाध रूपसे चला जाता है। धर्म उनपर आघात नहीं पहुंचा सकता, इन दोनोंको उन्होंने काफी अलग-अलग रखा है। इसीलिए धर्मके ग्रहणसे उनके आचार विचारमें कोई परिवर्तन नहीं आता और चाहे जो धर्म वे स्वीकार करें, उनका कार्य नियमानुसार चला करता है।

शिक्षा व्यवस्था

किसी राष्ट्रकी उन्नतिके लिए शिक्षा एक बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक साधन माना गया है। जिस राष्ट्रमें शिक्षाकी उन्नति न होगी उस राष्ट्रकी राजनीतिक आदि अन्य उन्नतियोंकी भी आशा न की जा सकेगी। जापानने सर्वतोमुखी उन्नति की है। अतः उपरोक्त सिद्धान्तानुसार यह तो स्वयं सिद्ध सा है कि उसकी शिक्षा-व्यवस्था अच्छी होगी और वह वास्तवमें है भी। शिक्षित लोगोंका औसत वहाँ ९९.५ से भी अधिक पड़ता है। इसे यदि दूसरे शब्दों में कहा जाय तो यों कहा जा सकता है कि वहाँके प्रायः सब निवासी शिक्षित हैं। बड़े ऊँचे दरजेके आदमियोंसे लेकर बाजारके कुली-कबाड़ी

तक पढ़े लिखे होते हैं। जापानमें प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य है। इसीलिए शिक्षाकी यह अवस्था वहाँ है। भारतवर्ष जैसे देशके रहनेवालोंको जिनके यहाँ शिक्षितोंकी संख्या उँगलियोंमें गिननेभर कोभी नहीं है उनके प्रत्येक स्त्री-पुरुषको शिक्षित देखकर वास्तवमें आश्चर्य सा होता है। स्टेशनोंके कुली, बाजारके मजदूर खेतोंके किसान और जो कोई मिलेगा पढ़ा लिखा अवश्य होगा। अस्तु। यहाँपर उनकी इस अवस्थाका वर्णन करना अभीष्ट नहीं है। यहाँ तो केवल यह बताना है कि वहाँपर पढ़ानेका ढंग कैसा है?

जापानकी शिक्षाकी तीन श्रेणियाँ हैं। एक प्रारम्भिक शिक्षा, जिसमें छोटे बच्चे पढ़ाये जाते हैं, दूसरी माध्यमिक शिक्षा जिसमें सयाने लड़कोंको शिक्षा दी जाती है, और तीसरी उच्च शिक्षा जिसमें शिक्षित विद्यार्थियोंको विशेष-विशेष विषयोंका विशेष अध्ययन कराया जाता है।

प्रारम्भिक शिक्षा ऊपर की शिक्षाओंकी जड़ है और उसीकी मजबूतीपर ऊपरकी शिक्षाकी शाखा प्रशाखाओंका फैलाव निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक शिक्षा ही जीवन सुधारके लिए मार्ग-प्रदर्शिका होती है बशर्ते कि वह ठीक ढंगसे दी जाय। इन सब बातोंको जापान-निवासियोंने *अच्छी तरह समझ लिया है।* इसीलिए प्रारम्भिक शिक्षापर यथेष्ट ध्यान दिया गया है।

जापानमें प्रारम्भिक शिक्षाकी अवस्थामें बालक-बालिकाएँ साथ साथ शिक्षा पाती हैं। सब पाठशालाओंमें किंडर गार्टन शिक्षा प्रणाली का व्यवहार होता है। शिक्षा ऐसे आकर्षक ढंगसे दी जाती है कि

लड़कोंका मन नहीं ऊबता प्रत्युत उन्हें विद्यालय जानेका उत्साह रहता है। बड़ी प्रसन्नता पूर्वक लड़के विद्यालय जाते हैं और विद्यालयोंके अध्यापक उनके प्रति व्यवहार भी बड़ा स्नेहपूर्ण करते हैं। एक हित-चिंतक अभिभावककी भाँति वे उन बच्चोंकी शिक्षा दीक्षाका साव-धानीके साथ प्रबन्ध करते हैं। जिस ओर बालककी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, उसी विषयकी ओर आगे बढ़ानेकी वे चेष्टा करते हैं। प्रत्येक बालकके स्वभावके अनुसार उसके लिए उपयोगी विषयों का चयन कर उसे उस ओर अग्रसर होनेके लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं। इससे बालकको उस विषयकी शिक्षाके लिए उपयुक्त अव-सर मिल जाता है और समय पाकर वह उन्नति कर जाता है। इस उन्नतिका बीज प्रारम्भिक पाठशालाओंमें ही बो दिया जाता है।

प्रारम्भिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। और उसके लिए फीस भी नहीं ली जाती। इस प्रकार निश्शुल्क प्रारम्भिक शिक्षाकी व्यवस्थाके कारण उसका प्रचार और भी अधिक बढ़ गया है। वहाँ की पाठशालाओंकी इमारतें खूब सुन्दर साफ सुथरी और अच्छी रहती हैं। गाँवमें जो इमारत सबसे अच्छी और साफ सुथरी दिख-लायी पड़े, समझ लेना चाहिए कि वही उस गाँवकी पाठशाला है। प्रत्येक पाठशालाके साथ खेलने लायक काफी लम्बा चौड़ा आहाता अवश्य रहता है। सफाईका ख्याल रखना तो जापानियोंकी खास बात है। पाठशालाओंमें तो इसका और भी अधिक ध्यान रखा जाता है, क्योंकि वहींसे लड़कोंकी आदत बनती है। इसलिए पाठ-शालाओं और उनसे मिले हुए खेल कूद एवं व्यायाम आदिके लिए

बने हुए आहाते खूब साफ सुथरा रखे जाते हैं। परन्तु उनकी सफाई के लिए कोई नौकर नहीं रखे जाते। स्कूलके विद्यार्थी स्वयं सफाईका काम करते हैं। पाठशालाके क्लासोंकी सफाई और बाहरकी सफाई दोनोंका भार वहाँ पढ़नेवाले विद्यार्थियोंपर ही रहता है। क्लासकी सफाईके लिए पारी पारीसे विद्यार्थियोंको भार सौंप दिया जाता है। जिस दिन जिसकी पारी होगी उस दिन वह विद्यार्थी क्लासमें झाड़ू लगायगा, बेंचे, डेस्कें, मेज, कुर्सी, ब्लैक बोर्ड, तथा अन्य जो वस्तुएँ क्लास रूममें होंगी उन सबको झाड़े पोछेगा और बादमें बाहर निकल कर दरवाजा बन्द कर देगा। आहातेकी सफाईके लिए विद्यार्थियोंकी टोलियाँ—दो दो चार चार विद्यार्थियोंकी—बना दी जाती हैं और विद्यार्थी आहातेमें झाड़ू आदि लगाकर साफ करते हैं। ये काम प्रत्येक विद्यार्थीको करने पड़ते हैं चाहे वह बड़े खानदानका हो चाहे छोटेका।

यह बात तो हुई पाठशालाकी समयकी पढ़ाई समाप्त हो जानेपर घर जाते समय की। घरसे आते समय भी सफाईकी भी बड़ी सुन्दर व्यवस्था वहाँपर है। प्रत्येक स्कूलमें दरवाजे पर ब्रुश और छोटी-छोटी छड़ियोंमें बँधे हुए मुरछलनुमा कपड़ोंके टुकड़े रखे रहते हैं। प्रत्येक विद्यार्थीका यह कर्तव्य होता है कि बाहर आनेपर वह उन ब्रुश अथवा कपड़ेकी मुरछलोंसे अपने जूते तथा पैर आदि साफ कर लें, तब पाठशालाके भीतर कदम रखे। इससे पाठशालाके अधिक गंदे होनेका भय नहीं रहता और थोड़ी बहुत जो गन्दगी रह जाती है, वह उपरोक्त विधिसे रोज-रोज साफ कर दी जाती हैं। कुछ पाठशालाएँ ऐसी भी हैं जिनमें जूते

अन्दर नहीं ले जाने दिये जाते। ऐसी पाठशालाओंके बाहर जूते रखनेकी जगह होती है। उन्हींमें जूते रखकर विद्यार्थी चले जाते हैं। इस प्रकार पाठशाला सदा साफ सुथरा और स्वच्छ बनी रहती है। पाठशालाओंकी यह प्रथा कितनी सुन्दर और कितनी अनुकरणीय है, यह स्पष्ट ही है।

इससे भी अधिक सुन्दर और अनुकरणीय व्यवस्था एक और है। प्रत्येक प्राइमरी पाठशालाके साथ एक मोडल हाउस (आदर्श-गृह) होता है। इस घरमें एक गृहस्थके घरमें होने वाली सभी वस्तुएं बनी होती हैं। रसोई घर, शयनागार, अतिथि-गृह, पाखाना, पेशाबघर, गुसलखाना आदि सब कुछ होता है। पाठशालाके अध्यापक एक-एक विद्यार्थीको इन घरोंमें ले जाते हैं और उन्हें अभ्यास कराते हुए बताते हैं कि किस प्रकार रसोई घरमें रहना चाहिए, किस प्रकार बैठकर भोजन करना चाहिए, किस प्रकार पाखाना और पेशाब घरका इस्तेमाल करना चाहिए, किस प्रकार स्नान करना चाहिए, किस प्रकार सोना चाहिए, आये हुए अतिथि का कैसे स्वागत करना चाहिए, जाते हुए अतिथिको कैसे विदा करना चाहिए आदि। इन माडल हाउसोमें सक्रिय शिक्षा पाकर विद्यार्थी अपने घरोंमें उन्हींका अभ्यास करते हैं और इस प्रकार सुन्दर सभ्य नागरिक बन जाते हैं। जापानकी शिक्षाका यह एक आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग है।

प्रारम्भिक शिक्षाकी भाँति ही उच्च शिक्षामें भी विद्यार्थियोंको सफाई आदिका ध्यान रखना पड़ता है। उनके पढ़नेके विषय प्रत्येक

विद्यार्थी की अपनी रुचिके अनुसार रहते हैं। वैज्ञानिक शिक्षा आदि की ओर काफी ध्यान दिया जाता है। पाठशालाओंका समय ८ बजे सबेरेसे २ बजे दिन तक होता है, बीचमें १ घंटेका अवकाश मिलता है।

वहांके विद्यार्थियोंमें भेदभाव नहीं होता। पहले तो सबमें वैसे ही समानताका भाव रहता है, इसके अतिरिक्त अन्य उपायों द्वारा भी इस भावकी रक्षा और वृद्धिका प्रयत्न किया जाता है। इस सम्बन्धमें सबसे बड़ी बात यह है कि विद्यार्थियोंके लिए जापान भरमें एक वर्दी निश्चित है। जितने विद्यार्थी मिलेंगे सब एक वर्दीमें। वर्दी प्रत्येक स्कूल या प्रत्येक नगर या प्रान्तके लिए अलग-अलग नहीं है, वह सारे देशमें एक समान है। परन्तु प्रारम्भिक स्कूलों और उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियोंकी वर्दियोंमें भेद है। जब कि प्रारम्भिक शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी कुछ-कुछ नाविकोंकी सी पोशाक पहिनते हैं तब उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी बंद गलेका कोट और पैण्ट पहनते हैं। इसके बाद प्रत्येक स्कूलके लिए अपने-अपने बैज अलग-अलग होते हैं। इन बैजोंको लड़के यातो हैट पर सामनेकी ओर लगाये रहते हैं, या वे कोटके कालर पर लगाये रहते हैं या बाँह आदि पर भी लगा लेते हैं। बैज (चिन्ह) कहां पर लगाया जाय यह प्रत्येक स्कूल अपने इच्छानुसार निर्धारित करता है और अपना-अपना बैज भी वह स्वयं ही निर्धारित कर लेता है।

ऊपर विद्यार्थियों द्वारा पाठशालाओंकी सफाई आदिका जो विवरण दिया गया है उससे स्पष्ट हो जायगा कि वहांके विद्यार्थियोंमें छोटे कामसे घृणा न करनेकी आदत पहिले ही डाल दी जाती है।

जापानी कार्यकी महत्ता (dignity of labour) को जानते हैं वे अपने बच्चोंमें झूठी अहम्मन्यताको स्थान नहीं देना चाहते। इसीलिए उस प्रकारके काम कराते हैं। विद्यार्थियोंमें विलासिता न फैलने पाये इसका भी वे बहुत अधिक ध्यान रखते हैं। जब तक विद्यार्थी पढ़ता रहता है तब तक उसको सादे से सादे ढंगमें रखनेकी कोशिश की जाती है। यद्यपि ऐसा अनिवार्य नियम तो नहीं है, तथापि लड़कों की सादगीका यहांतक ख्याल रखा जाता है और उनमें विलासिताको दूर रखनेके लिए यहां तक प्रयत्न किया जाता है कि विद्यार्थियोंको जुल्फें आदि रखनेके लिए इजाजत नहीं दी जाती। सीधे-सादे छोटे-छोटे बाल रखनेके लिए ही उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है और प्रायः सभी विद्यार्थी इसी ढंगके बाल रखते भी हैं।

प्रारम्भिक शिक्षाके लिये ६ वर्षसे १२ वर्ष तक की आयु निर्धारित की गयी है। ६ वर्षकी पढ़ाई प्रारम्भिक शिक्षामें होती है। इस बीचमें विद्यार्थियोंको भाषा, गणित, भूगोल, स्वास्थ्य, शिष्टाचार आदिकी जो शिक्षा दी जाती है वह तो दी ही जाती है उसके अतिरिक्त इसी अवधिके अन्दर वे सब विद्यार्थियोंको अपने देशके तमाम दर्शनीय स्थान तथा वस्तुएं भी दिखला देते हैं। वहां सालमें दो बार यात्री दल आयोजित होते हैं। एक बार बसन्त कालमें अर्थात् अप्रैल मई आदिमें। दूसरी बार हेमन्तमें—सितम्बर अक्टूबरमें। इन दोनों अवसरों पर विभिन्न स्कूलोंके विद्यार्थियोंकी टोलियां भिन्न-भिन्न द्रष्टव्य स्थानोंका भ्रमण करती हैं। यदि कोई विदेशी यात्री इन दिनोंमें वहां जाय तो देखेगा कि प्रायः सभी

दर्शनीय स्थानों पर विद्यार्थियों और छात्राओंके झुण्डके झुण्ड आते जाते रहते हैं। इनके साथ इनके स्कूलोंके अध्यापक रहते हैं, जो इन्हें उस दर्शनीय स्थानके सम्बन्धकी सब बातें बताते रहते हैं। दर्शनीय स्थानों पर पूर्ण अनुशासनके साथ विद्यार्थी वर्गकी इन टोलियोंको जाते हुए देखना भी बड़ा सुखकर प्रतीत होता है। पीठपर भोजन आदिका सामान तथा साधारण लिखने पढ़नेका सामान लादे, बगलमें पानीसे भरी सफरी-सुराही या बोतल आदि लटकाये, ये विद्यार्थी छोटे-छोटे सैनिकोंकी भांति ऐसे मालूम होते हैं मानों कहींकी चढ़ाई करनेके लिये सोत्साह आगे बढ़ रहे हों। कुछ लड़के कैमरा लिये रहते हैं और स्थान-स्थानकी फोटो लेते रहते हैं। इन यात्राओंका खर्च प्रत्येक विद्यार्थीके अभिभावक देते हैं। रेलवे आदिसे इनको बहुत अधिक रियायतें मिलती हैं। इसलिए खर्च भी कम लगता है। इन यात्राओंसे विद्यार्थियोंको कई लाभ होते हैं। अपने देशकी सब वस्तुओंको वे देख लेते हैं और उनसे लाभ प्राप्त करते हैं। यात्राके कष्ट सहनेका अभ्यास होता है, अपने देशके गौरवका ज्ञान होता है और देशकी भौगोलिक स्थिति प्रत्यक्ष हो जाती है।

यात्राओंका नियम यह रखा गया है कि पहिले स्कूलके शहरकी खास-खास वस्तुओंका प्रदर्शन, फिर आसपासके स्थानोंका, उसके बाद दूर-दूरके स्थानोंका भ्रमण कराया जाता है। इस प्रकार शिक्षा समाप्त करते-करते उन्हें देशकी सब वस्तुएं दिखा दी जाती हैं। विद्यार्थी अपने साथ छोटी- छोटी कापियां रखते हैं। जहां वे जाते हैं

वहांकी स्मृतिके लिए वहांका स्टाम्प वे अपनी उस कापीमें छाप लेते हैं। इस प्रकारके स्टाम्प प्रत्येक दर्शनीय स्थान पर अनिवार्यतः रहते हैं। यात्रामें प्राकृतिक दृश्य, ऐतिहासिक प्रतिमाएँ, इमारतें, स्थान आदि तो दिखलाये ही जाते हैं इनके अतिरिक्त यदि कहीं कोई मेला या प्रदर्शिनी आदि हुई अथवा कोई विशेष उत्सव आदि हुआ तो वह भी दिखलाया जाता है। इन यात्राओंके लिए सालमें दो बार एक एक सप्ताहकी छुट्टी मिलती है। इसके अतिरिक्त प्रति सप्ताह एक दिनकी छुट्टी पैदल चलनेके लिए होती है। कहते हैं सालमें एक दिन ऐसा भी होता है जिस दिन रात भर लड़कोंको चलाया जाता है।

स्कूलकी परीक्षा छः वर्षका पूरा समय समाप्त हो जानेपर ली जाती है और उसीके बाद सार्टीफिकेट दिये जाते हैं। परन्तु शिक्षा सम्बन्धी साधारण ज्ञान कैसा हो रहा है, इसकी जांचके लिए सालमें तीन बार परीक्षाएं होती हैं और षष्ठवर्षीय अन्तिम परीक्षाके समय इन पिछली परीक्षाओंके फलका भी विचार किया जाता है। पाठशालाओंमें विद्यार्थियोंको मारा पीटा नहीं जाता। प्रति वर्ष प्रत्येक विद्यार्थीकी डाक्टरी परीक्षा भी करायी जाती है। लड़कोंको शरीरकी सफाई आदिका अभ्यास भी कराया जाता है। डिक्टेशन आदि लिखानेका एक बड़ा आकर्षक ढंग हमने देखा। लड़कियोंको अंग्रेजी डिक्टेशन लिखाया जा रहा था। अध्यापिकाने डिक्टेशन बोला। सबने लिखा। इसके बाद अध्यापिकाने सब लड़कियोंको अपनी-अपनी किताबें खोलकर अपना लिखा हुआ मिलाने और गलतिओं पर निशान लगानेका आदेश दिया। सबने ऐसा ही किया। फिर

अध्यापिकाने पारी-पारीसे एक दो तीन और चार गलतियों वाली लड़कियोंके हाथ उठवा कर गलतियोंका विवरण प्राप्त किया। चारसे अधिक गलती करनेवाली लड़कियोंके हाथ अलग उठवाये गये। लड़कियोंके स्कूलोंमें प्रति सप्ताह एक दिन रसोई-पानीकी व्यवस्था की जाती है। पारी-पारीसे एक-एक क्लासको उस दिनके लिए समस्त स्कूलके खान पानका सब सामान उस विद्यालयकी छात्राओंको ही बनाना पड़ता है।

शिक्षाकी इन व्यवस्थाओंके अतिरिक्त एक और व्यवस्था है। जापानके प्रायः प्रत्येक घरमें रेडियो लगे हुए हैं। इस रेडियोको भी वे लोग शिक्षाका बड़ा प्रभावशाली माध्यम बना रहे हैं। इनके द्वारा विभिन्न विषयों पर भाषण आदि कराकर तथा वैसे भी छोटे-छोटे विषयोंके पाठ पढ़ानेका उद्योग किया जाता है। इस प्रकार स्कूलके बाद भी घरका कामकाज करते हुए या घरमें आराम करते हुए भी शिक्षा प्राप्त की जा सकती है।

शिक्षाके मार्गमें जापानियोंके सामने एक बड़ी कठिनाई है उनकी लिपिके सम्बन्धकी। वहां पर अधिकांशमें चाइनीज़ लिपि प्रचलित है। इस लिपिमें वर्णमाला नहीं होती, शब्दोंके आकार बना लिये गये हैं। शब्दोंकी अधिकताके साथ-साथ इनकी संख्या भी बढ़ गयी है। इतने अधिक चिन्होंका स्मरण रखना विद्यार्थियोंक लिए बड़ी असुविधाकी बात होती है। इसके अतिरिक्त उन चिन्होंकी बनावट इतनी पेचीदा और उलझी हुई है कि उनके लिखनेमें भी सुविधा नहीं होती। बहुत अधिक समय लगता है। छापेके कामके लिए भी वे

अक्षर सुविधाप्रद नहीं हैं। इसलिए वहांके विद्वान् लिपि सुधारके लिए चेष्टा कर रहे हैं। इस चेष्टाके फलस्वरूप इस समय देशमें इस लिपिके अतिरिक्त अन्य दो लिपियां प्रचारमें आ गयी हैं। जिनके नाम हीराकाना और काताकाना है। इनमेंसे हीराकाना लिपि अधिक प्रचलित है। फिर भी यह लिपि इतनी परिमार्जित नहीं है कि सब कठिनाइयां उससे हल की जा सकें। इसलिए वहांके लोग और भी सुधारका प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ लोगोंका मत तो यह हो रहा है कि वर्तमान सब लिपियां उठा दी जायं और उनके स्थान पर रोमन लिपिका प्रयोग किया जाय। इस प्रकार भिन्न-भिन्न लिपियां स्वीकार करनेके लिए साहित्यिक क्षेत्रोंमें चर्चा हो रही है। हम लोगोंके यात्रीदलके सम्मानित नेता, इलाहाबाद हाईकोर्टके भूतपूर्व जज पं०-कन्हैया लालने अपने एक वक्तव्यमें वहांके साहित्यज्ञोंसे यह अपील की थी कि वे देवनागरी-लिपिको अपनी लिपि बनावें। इस सम्बन्धमें पण्डितजीने देवनागरी-लिपिकी वैज्ञानिकताका उल्लेख करते हुए यह बताया था कि वह कितनी उपयुक्त हो सकती है। देवनागरी पूर्वकी लिपि है और बौद्धोंका तमाम धार्मिक साहित्य उसीमें लिखा गया है। प्राचीन आर्य संस्कृतिके प्रतीक अन्यान्य ग्रन्थ-रत्न भी उसी लिपिमें लिखे हैं। ऐसी अवस्थामें यदि वह लिपि जापान वाले स्वीकार कर लें तो उपयोगी ही होगा।

जापानी भाषा अपने यहांकी उर्दू भाषाकी भाँति दाहिनी ओरसे बाईं ओरको लिखी जाती है और उसकी किताबें पढ़नेके लिए भी उर्दू की भाँति ही दाहिनी ओरसे बाईं ओरको आगे पढ़ा जाता

है। परन्तु यद्यपि उर्दू के साथ उसकी यह समता है तथापि वह सर्वथा उर्दू की भाँति ही नहीं लिखी जाती। उर्दू दायींसे बाईं ओरको लिखी जाती है, परन्तु उसकी लकीरें ऊपर नीचेको नहीं जातीं। वे रहती हैं हिन्दीकी लिखावटकी भाँति पड़ी लकीरें ही। परन्तु जापानी भाषाकी लकीरें ऊपर नीचेको रहती हैं, वैसी ही जैसी अपने यहाँ पहाड़े गिनती लिखनेमें रहती हैं। इस प्रकार एक ओर तो दांयेंसे बायेंकी ओर लिखना और दूसरी ओर ऊपरसे नीचेकी लकीरें करना, इस प्रकार दो विपरीतताएं जापानी लिखावटमें हैं।

जापानियोंका तारीखें लिखनेका ढंग भी विचित्र है। पहले तो वहांका सन् तत्कालीन राजाके राज्यारोहणसे आरम्भ होता है और उसकी मृत्यु पर्यन्त चलता है। फिर जब नया राजा शासनारूढ़ होता है तब नये सिरेसे सन् चलने लगता है। यह नहीं है कि एक राजाके या किसी विशेष व्यक्तिके विशेष कालसे आरम्भ करके सदियों तक बराबर सन् चलते जायं। यदि १०-५ वर्ष कोई राजा जीवित रहेगा तो जापानियोंका सन् १०-५ वर्ष तक तो लगातार १ से ५ या १० तक बढ़ता जायगा और उसके बाद उस राजाकी मृत्यु तथा दूसरे राजाके शासनारूढ़ होने पर फिर १ से सन् आरम्भ होगा। जिस प्रकार हम लोग संवत्के बाद विक्रमीय लगा देते हैं उसी प्रकार वे लोग जिस राजाके शासनके उपलक्षमें सन् बदलता है अर्थात् जो राजा उस समय राज्य करता है उसीका नाम देते हैं। यह तो जापानियोंकी अपनी सूझ है। बाकी तारीखें और महीने वे अंग्रेजी हिसाबसे ही रखते हैं। परन्तु लिखनेका तरीका अलग होता

है। अंग्रेजी लिखावटमें पहले तारीख, फिर महीना, और फिर सन् लिखा जाता है या पहले महीना, फिर तारीख और फिर सन् लिखा जाता है। मगर जापानी इन दोनों तरीकोंसे अलग तीसरे ढंगसे तारीख लिखते हैं। वे पहले सन् (जो उनके राजाके शासनारूढ़ होनेके समयसे आरम्भ होता है) फिर महीना और फिर तारीख लिखते हैं।

जापानियोंके हिसाब करनेकी भी एक विचित्रसी परिपाटी है। एक पट्टी-सी रहती है, जिसमें लोहे या बाँसकी तीलियां लगी रहती हैं। इन तीलियोंमें छोटी-छोटी गोलियां-सी पिरोई होती हैं। इन्हीं गोलियोंको नीचे ऊपर खिसका करके ऐसे ढंगसे हिसाब करते हैं कि बड़े-बड़े हिसाब मिनटोंमें हल कर डालते हैं। हिसाब करनेकी इस रीतिकी खास तौरसे शिक्षा दी जाती है और यद्यपि इसके सीखने और अभ्यास करनेमें काफी समय लगता है, तथापि इसके द्वारा हिसाब किताबका काम बहुत सरल हो जाता है। हम लोगोंके जिह्वाग्र गणितको भी यह परिपाटी मात कर देने वाली है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

स्वास्थ्य रक्षाकी ओर जापानियोंका ध्यान काफी अधिक रहता है। जापान सरकारस्वयं अपनी प्रजाके स्वास्थ्यके लिए यत्नशील रहती है। वहांपर सैनिक शिक्षा अनिवार्य है और प्रत्येक १६ वर्ष से ऊपरकी आयुवाले नवयुवकको उसके लिए खास ट्रेनिंग दी जाती है। इस ट्रेनिंगसे जापान सरकारको जनताके स्वास्थ्यका पूरा पता भी लगा करता है। ट्रेनिंग देते समय यह भी जांचा जाता है कि नवयुवकोंका स्वास्थ्य किस मात्रामें सैनिक शिक्षाके योग्य है। अभीतक जो लेखा रहता था उसके अनुसार प्राय: ६० प्रतिशत नवयुवक सैनिक शिक्षाके लिए स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ठीक निकलते थे। परन्तु

गत वर्ष या इसके एक वर्ष पहिले यह अनुपात घट गया था। उस समय जापान सरकारने इस आवश्यक विषयपर ध्यान दिया और इस बातका विचार करनेके लिए कि नवयुवकोंके स्वास्थ्यमें इस प्रकार की कमी का क्या कारण है तथा यह कमी किस प्रकार जल्दी से जल्दी हटाई जा सकती है, तुरन्त कमीटियां बनी और उसका अनुसंधान आरम्भ किया गया। इस प्रकार जहांपर राजतन्त्र स्वयं सतर्क रहता हो और जहांकी जनता प्रायः शत प्रति शत शिक्षित हो वहां स्वास्थ्यका सुधार हो तो अश्चर्य ही क्या है।

स्वास्थ्यके लिए सफाईकी आवश्यकता सर्व प्रथम है। यह जापानियोंमें स्वभावतः मिलती है। सफाईका ख्याल इतना अधिक शायद ही कहीं अन्यत्र रखा जाता हो। सबेरा होते ही घरकी स्त्रियां और बच्चे तमाम घरकी सफाई कर डालती हैं। झाड़ू बुहारु डालकर ही वे शांत हो जाती हों ऐसी बात नहीं है। घरका एक-एक कीला-कांटा तक वे पानीसे धोती, साफ करती और उसे पोंछती हैं। अपने कपड़े, अपने लड़कोंके कपड़े, घरका और सब सामान सबकी सफाईका अधिकसे अधिक प्रयत्न करती हैं। जिस प्रकार घरकी सफाई होती है उसी प्रकार म्युनिसिपल आफिसों आदिके द्वारा नगरोंकी सफाई भी होती है। आप दिनभर घूमते रहिये मजाल क्या कि कहीं गन्दगी दिखलायी पड़े। नगर निवासी स्वयं इतने शिक्षित और सफाई पसन्द हैं, कि वे स्वयं कूड़ा-कर्कट आदि ऐसे स्थानपर नहीं डालते जिससे गंदगी फैलनेका डर हो। और दूसरे शहरकी सफाई करनेवाले भी सफाईका ख्याल रखते हैं। सफाई तो

इस प्रकार रहती है कि पड़े हुए कूड़े-कर्कटका तो कहीं पता ही नहीं रहता, यह भी नहीं मालूम होता किस समय शहरका सब कूड़ा ढोकर बाहर फेंका जाता है। कूड़ेकी गाड़ियां कब कहांसे निकलती हैं इसका पता तक नहीं लग पाता।

थूक कफ आदि ऐसी चीजें हैं जिनमें रोगके कीटाणु रहते हैं, और उनसे रोग फैलते हैं। इनके सम्बन्धमें जापानमें बड़ी ही विचित्र परन्तु बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। कोई आदमी वैसे थूकता हुआ या नाक साफ करता हुआ न मिलेगा। प्रत्येक आदमी अपने जेबमें एक खास किस्मके कागज जो निहायत पतले, मजबूत और मुलायम होते हैं, डाले रहता है। उसे थूकना या नाक साफ करना हुआ तो इन्हीं कागजोंमेंसे एक कागज निकाला और उसीमें थूक कर और उसे लपेट कर फेंक दिया। सफाई करनेवाले कर्मचारी आते हैं इन कागजोंको लेजाकर जला देते हैं इससे कागजोंके साथ रोगके कीटाणु भी, यदि वे हुए तो, मर जाते हैं और रोग फैलने नहीं पाता। यही कागज खाना आदि खानेके बाद मुंह पोंछनेके काममें भी आते हैं और इन्हींसे जूते आदि भी साफ कर लिये जाते हैं तथा अन्य ऐसे ही कार्य भी कर लिये जाते हैं।

खाना आदि पकानेमें भी वे पर्याप्त सफाईसे काम लेते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि भारतीय हिन्दुओंमें खाने-पीनेकी सफाईका जो ढङ्ग है, वह उनमें है क्योंकि हिन्दुओंमें कमसे कम इस बातमें बहुत अधिक सतर्कता है तथापि उनमें गन्दगी नहीं होती। परन्तु खानेमें वे अपेक्षाकृत अधिक साफ रहते हैं। सो भी और

किसी बातमें नहीं सिर्फ इतनी बातमें कि वे पकाये हुए भोजनको हाथसे स्पर्श नहीं करते और इससे नाखूनोंका विष भोजनमें नहीं जाने पाता। वे यूरोपियनोंकी भांति छुरी कांटेसे भी नहीं खाते। छुरी कांटोंमें भी उतनी सफाई नहीं रह सकती क्योंकि काटों आदिके बीचकी जगहमें फिर भी थोड़ा बहुत मैल रह सकता है। वे लोग खाते हैं बांसकी दो पेंसिलनुमा लकड़ियोंसे। इस प्रकार खानेका उनमें बड़ा विचित्र अभ्यास होता है। भोजनकी प्रायः सब चीजें वे इनके सहारे खा सकते हैं।

जो भोजन वे बाहर खानेके लिए अपने साथ ले जाते हैं वह भी विचित्र ही किन्तु काफी साफ सुथरे ढङ्गसे ले जाते हैं। लकड़ीके बिलकुल नये बक्समें जो मामूली लकड़ीका छोटासा होता है वे भात, मामूली शाक, मछली आदि रख कर पैक कर लेते हैं। जहां भूख लगी वहीं उसे निकाला खाया और बक्स फेंक दिया। यूरोपियनोंकेसे टिफिन केरियर आदि वे नहीं रखते। उनकी यह प्रथा भी सफाईके ख्यालसे अधिक समीचीन है।

इस प्रकार सफाईका ख्याल तो वे अवश्य रखते हैं, परन्तु उनका भोजन स्वास्थ्यके लिए उतना हितकर नहीं होता। मामूली चावलोंका भात और सूखी मछलियोंका बना हुआ कोई और खाद्य वे आम तौर पर खाते हैं। मछलियां पौष्टिक अवश्य होती हैं, परन्तु केवल उन सूखी हुई मछलियोंसे बने हुए भोजनसे स्वास्थ्यको अधिक लाभ कहां तक पहुंच सकता है, यह विचारणीय है। इस ओर जापानियोंका ध्यान भी गया है और शाक तथा

फल और गेहूं आदिके भोजनका प्रचार भी आरम्भ हो गया है।

स्वास्थ्यके लिए जहां सफाईकी आवश्यकता है, वहां व्यायामकी आवश्यकता भी कम नहीं है, इतना ही क्यों प्रत्युत व्यायामकी आवश्यकता उससे अधिक है। अतः इस ओर जापानियोंका ध्यान यथेष्ट मात्रामें गया है। व्यायामकी ओर ध्यान जानेका एक कारण यह भी है कि उन्हें अच्छे मजबूत सैनिकोंकी सदा आवश्यकता रहती है। इसके लिए स्कूलोंसे ही प्रयत्न आरम्भ हो जाता है। एक भी स्कूल ऐसा नहीं होता जिसमें खेल कूदके लिए या व्यायामके लिए यथेष्ट स्थान न हो। लड़कोंको खेल कूद और व्यायामके लिए बराबर प्रोत्साहित किया जाता है। और उन्हें कष्ट सहिष्णु तथा सीधा सादा बनानेका ध्यान रखा जाता है। इसी भावनाके कारण विद्यार्थियोंको जुल्फें आदि रखनेके लिए निरुत्साहित किया जाता है और सैनिक शिक्षाके समय तो अनिवार्यतः बाल कटा ही दिये जाते हैं। स्कूलोंमें खेल कूद और व्यायाम वगैरह बराबर कराया जाता है। स्कूलके बाहर भी खेल कूदका काफी प्रबन्ध और प्रचार है। इसके अतिरिक्त कवायद करानेका एक बड़ा नवीन और मौलिक उपाय वहां वालोंने ढूंढ़ निकाला है। रेडियो तो वहां प्रायः हर घरमें रहते ही हैं। इन्हीं रेडियो द्वारा वे कवायद भी कराते हैं। इनके द्वारा जहां गाना बजाना तथा मनोरंजनका सामान जनसाधा-रणके लिए उपस्थित किया जाता है, वहीं बाजारके भाव, समाचार, तथा कवायद आदिका सामान भी उपस्थित किया जाता है। प्रातः-

कालका एक नियमित समय कवायदके लिए रहता है। उस समय ब्राडकास्टिंग स्टेशनसे लेफ्टराइट, राइटटर्न, लेफ्टटर्न आदिके आर्डर निकाले जाते हैं और अनेक ऐसे लोग जो किसी संस्था या विशेष स्थान पर जाकर कवायद नहीं कर सकते, घरपर ही इन्हीं आदेशोंके अनुसार कवायद करते हैं। इस प्रकार एक बारगी एक साथ सारे शहरमें एक अनुशासनके साथ कवायद हुआ करती है।

खेल वहाँपर फुटवाल या हाकी आदिका उतना नहीं होता। इन खेलोंका बिलकुल अभाव तो नहीं है; परन्तु इनकी अपेक्षा बोली बोल, आदि खेलोंका प्रचार अधिक है। घरके खेल जापानी लोग बहुत ही कम खेलते हैं। ताश वगैरह तो बिलकुल ही नहीं। प्रथम तो सब लोग अपने-अपने काम धन्धेमें लगे रहते हैं, खेलनेका उन्हें अवकाश ही नहीं, दूसरे यदि अवसर मिलता है तो घरके खेलोंकी अपेक्षा मैदानके खेल अधिक पसन्द करते हैं। इन खेलोंमें हाकी फुटवाल, टेनिस आदि खेलोंकी ओर भी उनका उतना ध्यान नहीं है जितना स्केटिंग और स्कीइंगकी ओर है। बरफकी ऊँची-ऊँची पहाड़ियों परसे जिस समय ये लोग स्केटिंग या स्कीइंग करते हुए दौड़ते हैं, उस समय उनकी अवस्था इतनी आतंक पैदा करनेवाली होती है कि दर्शक अवाक रह जाता है। ये खेल बरफ पर खेले जाते हैं। पहियेदार जूते पहन कर बरफ पर पहाड़ोंकी ढालमें ऊपरसे नीचेकी ओर लोग दौड़ते हैं। किसी-किसी समय साथमें सहारेके लिए दोनों हाथोंमें लकुटियां सी ले लेते हैं और कभी-कभी बिना किसी सहारेके ही दौड़ते हैं। इतने विकट साहसका यह खेल होता है और देह

साधने तथा सावधान रहनेका इसमें इतना अधिक काम पड़ता है, कि साधारण मनुष्य तो देखकर ही घबड़ा जाय, उसका अभ्यास तो उस के लिए अत्यन्त असम्भव सा है। इस खेलमें परिश्रम भी बहुत अधिक पड़ता है। जिस सरदीमें सारा संसार ठिठुर रहा हो उस सरदीमें ये खिलाड़ी पसीनेसे तर बतर हो जाते हैं। इस प्रकार इन खेलोंमें साहस, परिश्रम, सावधानी, शरीरका बैलेन्स ठीक रखना आदि सब बातें एक साथ होती हैं। ये खेल जापानके शीतकालीन प्रधान खेल हैं और इनका प्रचार भी अधिक है और महत्व भी। इनके अभ्यासके लिए शहरोंमें नकली बरफ-घर बने हुए हैं, जिनमें ये खिलाड़ी अभ्यास किया करते हैं। इन घरोंको हम लोगोंने भी देखा था और इनके भीतर जाकर जहाँ हम ठिठुरे जा रहे थे, वहाँ ये खिलाड़ी पसीनेसे शराबोर थे।

इन खेलोंके अलावा तैरने, कूदने आदिके खेलोंमें भी जापान यथेष्ट रूपसे आगे बढ़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त एक खेल और अकसर खेला जाता है। वह यह है कि एक कड़े रबड़का गेंद दो आदमी खेलते हैं। एक निश्चित फासलेपर खड़े होकर एक आदमी उस गेंदको दूसरे आदमीकी ओर फेंकता है, प्रकटतः उसे मारनेकी कोशिश करता है और दूसरा उसको हाथोंसे ही रोक लेता है। दोनों खिलाड़ियोंके एक-एक हाथमें चमड़ेके दस्ताने होते हैं। इन्हींसे वह गेंदको रोकता है। और दूसरे हाथसे गेंद फेंका जाता है। गेंद पूरी ताकत लगाकर जितनी जोरसे हो सकता है, उतनी जोरसे फेंका जाता है। यह खेल इतना अधिक प्रचलित है कि कारखानेके मज-

दूरों तकमें जब उन्हें फुरसत मिलती हैं, तब दोनों तरफ एक-एक दल एकत्र हो जाता और यह खेल शुरू कर दिया जाता है। दोपहरको भोजन आदि करनेके लिए जो समय मिलता है, उसमें भोजनसे निवृत्त होकर मजदूर लोग अकसर यह खेल खेलते हैं। इस खेलमें भी काफी व्यायाम हो जाता है।

इन व्यायामोंके अतिरिक्त वहाँपर युयुत्सु और सुमा नामकी दो मल्ल-विद्यायें भी प्रचलित हैं। युयुत्सु विद्याका प्रचार तो यहां भी हो गया है। इस विद्याके द्वारा यह सिखाया जाता है कि शत्रुपर किस प्रकार आक्रमण किया जाय कि वह निरुपाय हो जाय। सुमा विद्यामें दुश्मन के किये गये वारको उसीके लिए दुःखकर बनानेका प्रयत्न किया जाता है। उसका सिद्धान्त है शत्रुके बलसे शत्रुको परास्त करो। इन दोनोंके लिए अलग-अलग आखाड़े बने हुए हैं और विद्यार्थी तथा शिक्षक अध्ययन—अध्यापनका कार्य करते हैं। इन अखाड़ोंमें मिट्टी नहीं रहती। मोटी-मोटी चटाइयाँ बिछी होती हैं जिनके अन्दर पयाल या घास आदि रहती है। इसके कारण वे काफी मुलायम रहती हैं और उनपर गिर पड़नेसे शरीरमें किसी प्रकारकी चोट नहीं लगती। सुमा या युयुत्सु दोनोंमें हमारे यहाँके कुश्तियोंके से दांव पेंच होते हैं। इन अखाड़ोंमें लोग कपड़ा पहने हुए ही अभ्यास करते हैं, परन्तु उस समयके लिए जो कपड़े होते हैं, वे दूसरे होते हैं जो अधिक मजबूत और मोटे होते हैं। जब विद्यार्थी या शिक्षक उन शिक्षालयों (अखाड़ों) में जाता है, तब वह अपने मामूली कपड़े उतारकर ये कपड़े पहन लेता है और जब बाहर निक-

स्कूलोंके विद्यार्थी
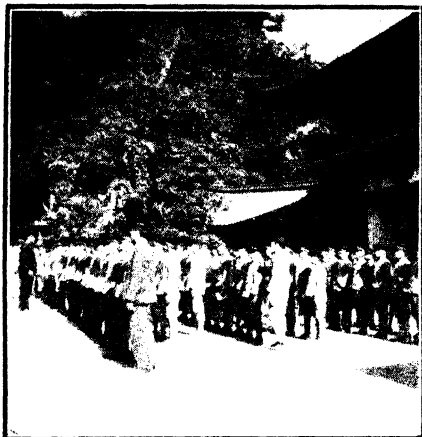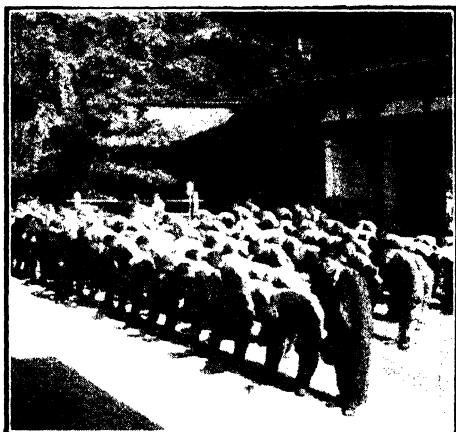
नमस्कार करते हुए विद्यार्थियोंका एक दृश्य

जलप्रपात देखनेके रास्तेमें जमीनके नीचे खुदी हुई सुरंग

स्कूलकी एक छात्र

लता है, तब वह फिर पूर्ववत् अपने मामूली कपड़े ही पहन लेता है।

जापानमें कुश्तियाँ भी होती हैं। कुश्ती लड़नेवाले लोगोंकी एक अलग जाति सी बन गयी है। मामूली जापानीको देखकर इन लोगोंके डीलडौल की कल्पना करना कठिन है। जापानी कदके नाटे होते हैं, परन्तु कुश्ती लड़ने वाले ये लोग जिन्हें सुमो कहते हैं, बड़े लम्बे-चौड़े कदके और खूब मोटे-ताजे होते हैं। इन लोगोंका शरीर बड़ा हृष्ट पुष्ट होता है, परन्तु इनके शरीरकी बनावट हम लोगोंके यहाँके पहलवानोंकी सी नहीं होती। जापानी सूमोका पेट बड़ा होता है। ये लोग इसी प्रकारका शरीर बनानेकी चेष्टा करते हैं। छातीकी अपेक्षा कमर बढ़ानेको ये लोग अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु कसरत आदि करके अपनी भुजाएँ और रानें खूब तगड़ी रखते हैं।

ये लोग युयुत्सु आदिकी भाँति कपड़ा पहने हुए कुश्ती नहीं लड़ते। कपड़े उतार कर एक लँगोटा पहनते हैं। परन्तु लँगोटा हमारे यहाँकासा नहीं होता। वह कपड़ेकी एक चौड़ी सी पट्टी-सा होता है, जिसे वे कमरमें तथा आगे पीछे लपेट लेते हैं। इसके अतिरिक्त एक चीज वे और भी पहनते हैं। एक रस्सी या कपड़े की लड़में स्याहीके काँटोंकी तरहकी लम्बी-लम्बी कुछ कीलें सी बाँधकर कमर में लपेट लेते हैं। इनकी कुश्तीके अखाड़ेमें मिट्टी पड़ी होती है और आकार चौकोर होता है। किन्तु बीचमें एक गोलाकार वृत्त बना होता हैं। उसके पास एक निरीक्षक खड़ा रहता है,वह हाथके इशारों

से पहलवानोंको लड़ने या अलग हो जानेका आदेश देता रहता है। मुकाबलेके पहलवान अखाड़ेकी विपरीत दिशाओंमें आते हैं। दोनों ओर एक कोनेमें नमक रखा रहता है। पहलवान आते ही नमक उठाकर अखाड़ेमें डालते हैं, और पहले दोनों जनताकी ओर मुखातिब होकर फिर अखाड़ेमें जाकर एक दूसरेकी ओर मुखातिब होकर नमस्कार या सलामी करते हैं। इनके नमस्कार करनेका ढंग बड़ा विचित्र है। पहिले दाहिना पांव और दाहिना हाथ उठाकर,फिर पांव को धमसे जमीन पर पटकेंगे और उसीके साथ ही हाथ रानोंपर पटकेंगे। फिर दूसरा पांव उठाकर यही क्रिया करेंगे। अखाड़ेके अन्दर जाकर एक दूसरेसे सलामी करके वे घुटने मोड़कर और हाथकी मुट्ठियाँ बान्धकर जमीन पर रखकर एक दूसरेकी ओर गौरसे देखते हैं। फिर थोड़ी देरमें बाहर निकल आते हैं, फिर नमक उठाकर उसे अखाड़ेमें छिड़कते हैं और फिर उसी प्रकार घुटने मोड़ कर एक दूसरेकी ओर मुखातिब होते हैं। यह सब काम होता है निरीक्षकके आदेश पर ही। यह क्रिया कई बार दोहरायी जाती है। इसके बाद कुश्ती शुरू होती है, परन्तु कुश्तीकी सलामी और कुश्ती होनेके लिए १० मिनटका समय रहता है, इस समयके अन्दर कुश्ती जरूर समाप्त हो जानी चाहिए। उसी हिसाबसे निरीक्षक महाशय आदेश भी देते हैं।

कुश्तीकी जीत-हारका नियम बड़ा विचित्र है। निरीक्षकके आदेश पर दोनों पहलवान भिड़ जाते हैं। फिर जो पहलवान दूसरेको उस गोल वृत्तकी सीमाके बाहर निकाल देता है वही जीता माना जाता

है। जीत-हारका एक नियम यह भी है कि यदि हाथकी हथेली और पांवके तलवोंके अतिरिक्त शरीरका कोई भी हिस्सा जमीनमें छू जाय तो पहलवान हारा हुआ माना जाता है। इन कठोर नियमों के कारण कुश्ती छूटते ही मिनटोंमें समाप्त हो जाती है। कुश्तीकी अपेक्षा तो उनकी सलामीमें ही अधिक समय लगता है। भारतीय ढंगके दांव-पेंच वाली कुश्ती देखनेके अभ्यासी लोगोंको जापानी लोगोंकी जापानी कुश्तियां संतोषप्रद नहीं होतीं। किन्तु जापानी लोग इन कुश्तियोंको देखनेके लिये हजारोंकी संख्यामें आते हैं। जिन दिनों हम लोग टोकियोंमें थे उन दिनों इनका एक दंगल हो रहा था। दंगलमें २५-३० हजारसे कमकी भीड़ न होगी। बड़ा भारी आहाता घेरा गया था और आदमियोंसे ठसाठस भरा हुआ था। सैकड़ों आदमी खड़े थे, बैठनेकी जगह तक न थी।

इस प्रकारके व्यायाम, खेल कूद, कुश्ती आदिके अतिरिक्त सरकस आदिके खेलका भी जापानियोंको अच्छा अभ्यास है। सरकसमें शारीरिक कसरतें अच्छी दिखाते हैं। इन तमाम कारणोंसे जापानियोंका स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा रहता है।

व्यापार व्यवसाय

अपने व्यापार-व्यवसायके कारण जापान आज संसार भरमें प्रसिद्ध है और इस दिशामें उसने जो उन्नति की है वह समस्त संसार को चकित कर रही है। इस उन्नतिका क्या रहस्य है, यह एक ऐसा विषय है जिसके जाननेकी इच्छा स्वभावतः प्रत्येक जापान-यात्रीके मनमें होती है। हम लोगोंने भी उसे जाननेकी कोशिश की और उस अल्प समयमें जो कुछ जाना जा सका, उसीके आधार पर ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं।

जापानमें कई बातें ऐसी हैं, जिनको उसकी व्यापारिक उन्नतिका श्रेय खास तौर पर दिया जा सकता है। सबसे प्रधान बात है, जापान

की भौगोलिक स्थिति। पहाड़ी स्थानके मनुष्य स्वभावतः परिश्रम-शील और कष्ट सहिष्णु होते हैं। वे मैदानमें रहने वाले मनुष्योंकी अपेक्षा कहीं अधिक परिश्रम कर सकते हैं। फिर उस देशकी आब-हवा शीत प्रधान होनेके कारण अधिक समय तक परिश्रम करने पर भी थकावट नहीं मालूम होती। इन दोनों कारणोंसे वहाँ मजदूर एक तो परिश्रम भी खूब कर सकते हैं और दूसरे बड़ी देर तक एक ही लगनके साथ कार्य कर सकते हैं। ये दोनों बातें व्यापारकी वृद्धिके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं और ये दोनों बातें जापानको प्रकृतिसे ही सुलभ हो गयी हैं। तीसरी बात वहाँके मजदूरोंके सम्बन्धकी यह है कि वे सबके सब शिक्षित हैं। शिक्षित होनेसे ही उनका काम अधिक सुन्दर और अधिक उपयुक्त हो जाता है। जापा-नियोंका रहन-सहन सीधा-सादा है। इसलिये उनको थोड़ी आम-दनीमें ही सन्तोष हो जाता है। यह बात भी व्यापारके लिये उपयुक्त होती है और मजदूरीके लिये अधिक धन व्यय नहीं करना पड़ता। सस्ती और सन्तोषप्रद मजदूरी व्यापारकी उन्नतिके लिये कितनी हितकर हो सकती है, यह सहज ही अनुमान-गम्य है।

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि जापानी स्वभावसे ही ईमानदार होते हैं। यह ईमानदारी मजदूरोंमें भी खूब होती है। परिणाम यह होता है कि जो काम जिस मजदूरको सुपुर्द कर दिया जाता है उसे वह ईमानदारीके साथ करता रहता है। उसके ऊपर देख-रेख करनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसलिये वहाँ निरीक्षण (Supervision) का खर्च बहुत ही कम होता है, प्रायः नहींके

बराबर। जितनी देर तक मजदूर काम करेंगे, बिना किसीके कहे पूर्ण परिश्रम और उत्साहके साथ काम करते जायँगे। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि वहाँके स्त्री-पुरुष सभी कार्यमें लगे रहते हैं। इसलिये मजदूरोंकी कमीका अनुभव नहीं होता।

जापानमें उद्योग धन्धे बहुत हैं। परन्तु बड़े-बड़े कल कारखानों की संख्या अधिक नहीं है। उनकी काम करनेकी परिपाटी यह है कि छोटे-छोटे कारखाने खोलकर लोग वस्तुओंका उत्पादन करते हैं। व्यापारका इतना अधिकार प्राप्त करने पर भी जापानमें ऐसे कारखाने बहुत कम हैं जहाँ उनकी वस्तुके लिये आवश्यक सब सामग्री भी बनती हो। होता यह है कि किसी कारखानेमें कोई चीज और किसीमें कोई दूसरी चीज बनती है और इस प्रकार तैयार की गयी सब चीजें एक कारखानेमें एकत्र कर सबकी फिटिङ्ग आदि करके आवश्यक वस्तु तैयार कर ली जाती है। उदाहरणार्थ यदि रेडियोका सेट तैयार करना है, तो यह नहीं है कि एक ही कारखानेमें उसके सब पुर्जे भी तैयार किये जायँगे और जोड़े भी जायँगे। होता यह है कि कहीं कोई पुर्जा और कहीं कोई पुर्जा तैयार करके एक कारखानेमें इकट्ठा किया जायगा और वहीं वे पुर्जे जोड़कर रेडियो सेट तैयार किये जायँगे। इससे लाभ यह होता है कि बजाय इसके कि रेडियो फैक्टरीका कोई एक मालिक हो, उसके कई मालिक हो जाते हैं और इस प्रकार धनका बँटवारा भी बहुत कुछ बराबर हो जाता है। साथ ही एक ही कामको करते-करते उस कामके करनेमें वह कारखाना या

व्यक्ति अधिक प्रवीण हो जाता है और इस प्रकार कार्य भी अच्छा हो जाता है।

इन छोटे-छोटे कारखानोंको चलानेके लिये बहुत बड़े पैमानेमें इमारतें नहीं बनानी पड़तीं। इतना ही क्यों; जापानमें बड़े-बड़े कारखानोंके लिये भी बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें नहीं हैं। सच बात यह है कि वहाँ पर दिखावा होता ही नहीं। मामूलीसी झोपड़ियोंमें मशीनें लगा कर सब काम किया जाता है और छोटे-छोटे कारखाने तो प्रायः उसी घरमें होते हैं, जिस घरमें उस कारखानेके मालिक रहते हैं। इन छोटे कारखानोंमें बाहरके मजदूर बहुत कम रहते हैं, अधिकांशमें घरके लोग ही सब काम करते हैं। घरका मामूली काम-काज करनेके बाद जो फुरसत मिलती है, उसमें वे अपने कारखानोंका काम किया करते हैं। इस काममें स्त्री-पुरुष दोनों लगे रहते हैं। जापानियोंका ध्यान ओटोमैटिक (अपने आप काम करने वाली) मशीनोंकी ओर अधिक है और अधिकांशमें वहाँ इन मशीनोंका ही व्यवहार होता है। इसलिये उनको चलाकर वहाँ बराबर आदमियोंको रहनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। लोग घरका अन्य काम करते हुए भी बीच-बीचमें केवल देख भर आते हैं। मशीन ठीक ढंगसे चलती रहती है और कार्य अपने आप होता रहता है। बड़े-बड़े कारखानोंमें भी इसी पद्धतिकी मशीन होती है, जिससे एक एक आदमी बीसियों मशीनोंका काम देख सकता है। जिस कामके लिये भारत जैसे देशमें २० आदमियोंकी आवश्यकता पड़ती है, वह काम वहाँ एक वा दो आदमी कर लेते हैं। इसलिये उत्पादन बड़ा सस्ता होता है।

वहाँ बिजली भी बड़ी सस्ती है। अधिकांश कार्य बिजलीके द्वारा ही होता हैं। परन्तु अनेक स्थान ऐसे भी हैं, जहाँ बिजलीसे नहीं, बहते झरनोंसे काम किया जाता है। झरनोंका पानी नालियों के द्वारा एक खास रास्तेसे निकाला जाता है। स्थान-स्थान पर प्रवाहको अकस्मात् नीचा करके उसके बेगको और बलशाली कर दिया जाता है। इसी स्थान पर एक पहिया-सा लगा दिया जाता है, जिसके घेरेमें या तो जीनोंकी तरहके तख्ते लगे रहते हैं या कटोरियाँ सी लगी रहती हैं। इन तख्तियों या कटोरियों पर ऊपर से पानीकी धार गिरती है। इसलिये ये स्वभावतः नीचेकी ओर खिसक जाती हैं और नयी-नयी तख्तियाँ या कटोरियाँ आती-जाती हैं और इस प्रकार वह पहिया घूमता रहता है। उस पहियेका सम्बन्ध कमरेमें लगी हुई मशीनसे होता है। अतः उसके घुमावसे ही अन्दर की मशीनरियाँ सञ्चालित होती हैं। इस प्रकारकी मशीनरियाँ कम नहीं हैं। काफी अच्छी संख्यामें हैं और इन पर लाखों रुपयोंका काम होता है। इस पहियेके काममें न तो इञ्जिनकी जरूरत है और न बिजलीकी मोटर की। बहुत कम खर्चमें काम चलता है। पहाड़ी स्थान होनेके कारण इस प्रकारके झरने काफी अधिक हैं और बहुत काममें आते हैं। पानीकी तेजीको कम या ज्यादा करनेके लिये भी उपाय सोच निकाला गया है। प्रवाहकी धार दो भागोंमें विभक्त कर दी गयी है। जब प्रबल प्रवाहकी आवश्यकता होती है तब दोनों जोड़ दिये जाते हैं और जब कम करना होता है, तब आवश्यकतानुसार पानी दूसरे प्रवाहसे निकाल दिया जाता है। इस

प्रकार कारखाने वाले अपनी आवश्यकताके अनुसार ताकत (Horse power) ले सकते हैं। केवल हाथका काम करने वाले परिवारोंकी संख्या भी कम नहीं है। प्रायः प्रत्येक परिवार इस प्रकारके किसी न किसी काममें लगा रहता है, अधिकांश दूकानदार तक दूकानदारी करते जाते हैं और अपना दस्तकारी आदिका काम भी करते जाते हैं।

जापानके देहातों और नगरोंकी आबादी भी उनके काम-धन्धेमें बड़ी सहायक होती है। यहां पर गांव और शहर ऐसे ढङ्गसे बसे हुए हैं कि प्रत्येक शहरके नजदीक गांवोंका एक समूह पड़ जाता है, या यों कहिए कि गांवोंके आस-पास ही शहर भी बसे हुए हैं। यह दूसरी बात है कि कहीं बड़े शहर हैं और कहीं छोटे। शहरोंके नजदीक होनेसे लाभ यह है कि गांवकी उत्पादित वस्तुएं आसानीके साथ बिक्रीका स्थान पा जाती हैं और उत्पादन तथा बिक्रय साथ ही साथ होता रहता है और बराबर खपत होते रहनेके कारण उत्पादकोंको अपना माल तैयार करनेमें नया उत्साह मिलता रहता है। इन सब बातोंके अलावा एक बहुत बड़ी सुविधा यह है कि उन पर सरकारका संरक्षण और नियंत्रण है, जिससे न तो आपसमें प्रतिद्वन्द्विता बढ़ने पाती है और न किसी वस्तुका अत्यधिक उत्पादन होने पाता है। वहांके बड़े-बड़े कारखानोंमें, जहां सैकड़ों मजदूर काम करते हैं, अपने मजदूरोंके साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया जाता है। उनके भोजन आदिके लिए भी कारखानेकी ओरसे प्रबन्ध रहता है। कहीं-कहीं कारखाने वाले, मजदूरोंको रहनेका स्थान भी

देते हैं। इसके अतिरक्त अन्यान्य सुविधाएं भी दी जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जापानी मजदूर संतोष और प्रसन्नतापूर्वक अपना काम करते हैं, जिससे कारखानोंके काममें लाभ और सुविधा होती है।

भारतवर्षके साथ यदि वहांके उद्योग-धन्धोंकी तुलना की जाय तो जमीन-आसमानका अन्तर मालूम होगा। हमारा देश परतन्त्र है और हमारे धनाधीश देशकी भलाईका नहीं; अपनी भलाईका ध्यान पहिले करते हैं। फिर हमारा दिखावा भी राजसी है। छोटे कार-खानेके लिए भी हमें आलीशान इमारत चाहिए, बढ़िया फरनीचर चाहिए और न जाने क्या-क्या चाहिए। हमारे मिल मालिक अपने मजदूरोंके साथ उतना अच्छा वर्ताव भी नहीं करते। उनकी सुविधा और लाभकी भी उन्हें उतनी चिन्ता नहीं होती। स्वामी और सेवकका भेद-भाव बरावर बना रहता है। साथ ही यह भी है कि हमें उतने शिक्षित, परिश्रमी और ईमानदार मजदूर भी नहीं मिलते।

जापानी मालके सम्बन्धमें हम लोगोंकी धारणा यह है कि वहाँ अच्छा माल तैयार ही नहीं होता। यह सुनते ही कि अमुक चीज जापानी है, हम यह समझ लेते हैं कि वह माल अच्छा नहीं है। परन्तु बात वास्तवमें ऐसी नहीं है। जापानमें हर प्रकारका माल तैयार होता है। अच्छासे अच्छा और खराबसे खराब। जो जैसे दाम देता है, उसे वह उसी प्रकारका माल देता है। मालूम यह होता है कि उसकी नीति यह है कि किसी बाजारको खाली न छोड़ो, जो जिस प्रकारका माल चाहता है, उसे उसी प्रकारकार माल भेजो।

उसकी नीति यह नहीं है कि अपना माल अच्छा ही हो—और जहांके लोग उसे पसन्द करें, वहीं उसका बाजार बन जाय। भारतवर्ष धनहीन देश है। साथ ही लोगोंमें धन व्यय करनेकी प्रवृत्ति भी कम है। इसलिए स्वभावतः यहांके लोग सस्ता माल चाहते हैं। सस्ता माल अच्छा कहां तक हो सकता है ? हमें खराब माल मिलता है और उसीके आधार पर हमने यह धारणा बना ली है कि जापानमें अच्छा माल मिलता ही नहीं है। जापान काफी अच्छा माल बनाता है। उसका अधिक माल यूरोप और अधिकांशमें अमेरिका जाता है। अच्छा माल भी वह काफी सस्ते दाममें बेच सकता है, क्योंकि उत्पादनकी लागत कम बैठती है, इसलिए वह सुविधापूर्वक अन्य देशोंके उत्पादकोंके साथ प्रतिद्वन्दिता कर सकता है। उसके मालकी इतनी अधिक खपत उन देशोंमें हो रही है कि वहांके शासक परेशान हैं कि उसका नियन्त्रण कैसे किया जाय। वहांके उत्पादक जापानका मुकाबला कर ही नहीं सकते। उनके रहन-सहनका ढंग इतना खर्चीला है कि उनका वस्तु-उत्पादन-व्यय बहुत बढ़ जाता है। जिस दाम पर जापान अपना माल उन बाजारोंमें मुनाफेके साथ बेच सकता है, उन दामोंमें वहांके उत्पादक वस्तुओंका उत्पादन भी नहीं कर पाते। उनके सामनेयह एक चिन्ताका विषय हो रहा है। यह भी सुना जाता है कि जापानसे कई चीजें ऐसी भी बन कर जाती हैं जो जर्मनी, इंगलैण्ड, अमेरिका आदि जाकर फिर संसारके विभिन्न बाजारोंमें बिक्रीके लिए उन देशोंकी कह कर भेजी जाती हैं। उन वस्तुओं पर 'Made In Germany, England or America' आदि

लिख दिया जाता है। यह बात कहां तक ठीक है, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना सत्य है कि इन देशोंमें बिक्रीके लिए जापानका बहुत माल जाता है।

व्यापार व्यवसायका नियंत्रण करने और उसको सुविधा पहुं-चानेके लिए व्यावसायिक संघ (Chambers of Commerce) आदि अनेक संस्थाएं भी बनी हुई हैं। इस प्रकारकी बड़ी संस्थाओंके अतिरिक्त जिनमें सब प्रकारके व्यापारोंका नियंत्रण होता है, पृथक्-पृथक् वस्तुओंके नियंत्रण आदिके लिए अलग-अलग छोटी-छोटी संस्थाएं भी हैं।

इन संस्थाओंके अतिरिक्त सरकारी सहायता भी मिलती रहती है। वहांकी सरकार रेलवे, जहाज कम्पनियों आदिको आर्थिक सहा-यता प्रदान करती रहती है, ताकि वे जापानका माल सस्तेसे सस्ते भाड़े पर दूसरे देशोंमें ले जाया करें। इससे दूरके देशोंमें माल ले जानेमें उसे किराये आदिके लिये अधिक व्यय नहीं करना पड़ता और वहांकी प्रतिद्वन्दितामें वह सफलता प्राप्त कर लेता है।

जापानकी यह एक बड़ी विचित्र बात है कि वहांके व्यापारी अपनी वस्तुओंका अपने ही देशमें अधिक विज्ञापन करते हैं और इसके लिए काफी खर्च भी करते है। बिजलीकी रोशनी आदिसे बहुत अधिक विज्ञापन किया जाता है। गुब्बारोंमें कपड़ोंके अक्षर लिख कर टांग दिये जाते हैं। जो बराबर उड़ा करते हैं। कपड़ोंमें लिखे हुए विज्ञापन पुछल्लेकी तरह बांध कर हवाई जहाजसे उड़ाये जाते हैं। कभी-कभी हवाई जहाजसे विज्ञापनके छपे हुए कागज भी नीचे फेंके

जाते हैं। इस प्रकार अपने देशमें विज्ञापनका प्रयत्न किया जाता है, अन्यान्य देशोंमें तो उनका विज्ञापन नहींके बराबर होता है। अपने देशमें विज्ञापनसे कुछ अधिक आना-जाना नहीं होता, फिर भी उनका माल बहुत बड़ी तादादमें बिकता है। इसका खास कारण यही समझमें आता है कि वह सस्ते दामोंमें उपयुक्त वस्तु प्रस्तुत करता है।

जापानकी खुदरा दूकानदारी तो व्यापार की ही नहीं उच्च कोटिके मनोरंजन और अधिकसे अधिक प्रशंसाकी बात है। जापानमें दो प्रकारके भाव हैं, निर्यातके भाव दूसरे हैं और अपने देशके भाव और। कारण यह है कि देशमें बिकनेके लिए जो माल रक्खा जाता है उस पर ३० या ३५ प्रतिशत ड्यूटी लगा दी गयी है। इस विचित्र रीतिका परिणाम यह है कि जापानी उत्पादक अपना माल विदेशोंमें कम कीमत पर बेंच कर मुनाफेमें जो कमी करते हैं, उसको अपने देशमें ही अधिक मूल्य पर बेंच कर थोड़े अंश में पूरी कर लेते हैं। इस प्रकार वहांके मिल मालिकोंके मुनाफेमें अधिक कमी नहीं होती और दूसरी ओर अपने देशमें कम या अधिक दाम देकर अपने देशकी ही चीज खरीदनेमें व्यापक और उदार भावसे देखने पर सामूहिक रूपसे देशका-कोई नुकसान नहीं होता। देशका धन देश ही में रहता है। इस प्रकार यह नीति बड़ी कामयाब हुई है।

इस नीतिके कारण (जापानकी स्थानीय ड्यूटी Local duty के कारण) वहांके बाजारोंमें वहांका ही माल अन्य देशोंके बाजारोंसे महंगा मिलता है। परन्तु वहांपर जो भाव है, वह निश्चित

बँधा हुआ है। वहाँ मोल तोल करनेकी जरूरत नहीं। बाजार चले जाइये और जो दाम दूकानदार मांगे देकर चीज ले आइए, ठगे जानेका कोई भय नहीं है। एक भाव रखनेकी परिपाटी जन-साधारण के लिये बड़ी सुविधाप्रद होती है। दाम कुछ अधिक भी देने पड़ें और इस परिपाटीकी स्थापना यदि हो जाय तो बहुत सुविधा हो जाती है। यह सुविधा जापानकी जनताको है। परन्तु अब विदेशी यात्रियोंके यातायातसे इस परिपाटीमें कुछ अन्तर आने लगा है। बड़े-बड़े दूकानदार तो नहीं, छोटी दूकान वाले भाव ताव करने पर दाम घटा देते हैं, (चाहे जिस कारणसे हो) घटाते वे यद्यपि बहुत थोड़ा हैं। शायद इससे उनका मतलब यह भी हो कि एक चीजपर अधिक मुनाफा न सही कम ही लेंगे या बिना मुनाफेके बेच देंगे। परन्तु इस प्रवृत्तिसे ग्राहकोंमें भाव करनेकी प्रथा भी प्रचलित हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। यह प्रवृत्ति अनुचित है इसे रोकनेका प्रयत्न होना चाहिये। दूकानदारोंको अपना माल निश्चित दामोंसे कम पर न बेचना चाहिए। दूसरी ओर विदेशियोंको भी चाहिए कि वे इस प्रथाको बिगाड़नेके दोषी न बनें। वे थोड़े समयके लिए जाते हैं और भाव दर करके कोई बहुत बड़ा लाभ भी नहीं कर लेते। फिर भाव-ताव करनेकी प्रथाको प्रोत्साहन देनेके भागी बननेमें क्या लाभ ?

जापानमें फुटकर बिक्रीके लिए बड़े-बड़े डिपार्टमेण्टल स्टोर्स खोलनेकी प्रथा बहुत है। कोई शहर ऐसा न होगा जहां इस प्रकारके स्टोर्स न हों। बड़े शहरोंमें तो इनकी संख्या काफी अधिक होती है। इन स्टोरोंमें हर किस्मका माल ग्राहकको एक ही स्थान पर मिल

सकता है। छोटी-बड़ी हर किस्मकी वस्तुएं यहां विक्रयके लिए प्रस्तुत रहती हैं। जापानके जन-साधारण भी इन स्टोरोंसे अधिक लाभ उठाते हैं। इनमें ग्राहकोंकी भीड़ बराबर लगी रहती है। आठ-आठ नौ-नौ मंजिलके बड़े-बड़े आलीशान मकानोंमें ये स्टोर्स होते हैं और दुनियां भरकी चीजें यहाँ खरीदी जा सकती हैं। शाकभाजीसे लेकर जवाहरात तक यहाँ खरीदे जा सकते हैं। जिन लोगोंने भारतवर्षमें व्हाइट वे लेडला (Whiteway Laidlaw) आदिकी दूकानें देखी हैं, वे शायद यह कल्पना करलें कि यह स्टोर बहुत कुछ उसी प्रकारके होंगे। मगर जापानके स्टोरोंका और यहांके स्टोरोंका कोई मुकाबला ही नहीं। उन स्टोरोंके मुकाबले ये स्टोर एक छोटी दूकान से भी नहीं जंचते। उन्हें तो एक छोटा शहर समझ लेना चाहिये।

इनमें सब सामान अच्छेसे अच्छे ढंगसे सजाया रहता है। सब पर दामोंका टिकट लगा रहता है। (यह प्रथा तो छोटी-बड़ी सभी दूकानोंमें है) दाम इतने समुचित रहते हैं और माल इतना विश्वासका होता है कि ग्राहक आँख मूंद कर माल खरीद सकते हैं और वास्तवमें खरीदते हैं। भिन्न-भिन्न मंजिलोंमें जानेके लिये मामूली जीने और लिफ्ट तो लगे ही हुए हैं, बिजलीके जीने और लगे हुए हैं जिनमें जाकर खड़े हो जाइये, आप अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जायंगे। ये स्टोर क्या एक बड़ी नुमाइश होते हैं। इनमें से कईमें तो, सुनते हैं कि ५-५ ६-६ लाख येन रोजकी बिक्री होती है। इनका कर्मचारि-मण्डल भी बहुत बड़ा होता है। ग्राहकों की संख्याका तो कोई ठिकाना ही नहीं। और जो ग्राहक आते हैं

उन्हें सारा स्टोर देखनेमें बड़ी देर तक रुकना पड़ता है। इसलिये उनकी सुविधाके लिये स्टोरमें ही 'रेस्टोरां' (भोजनागार) वगैरह खोलकर उनके जलपानकी सुविधा भी कर दी गयी है और उनकी थकावट मिटाने एवं मनोरंजनके लिए स्टोरोंके अन्दर ही नाट्य-शालाएं बनी हुई हैं, जिनमें लोग जाकर विश्राम और मनोरंजन करते हैं। स्टोरोंके ऊपर छत पर बगीचे (Roof Gardens) भी होते हैं। इस प्रकार ये स्टोर बड़े सुखकर और सुविधाप्रद होते हैं।

इन स्टोरोंका संगठन भी बड़े विचित्र ढंगसे होता है। अधि-कांशमें ये लिमिटेड कम्पनियोंके अधीन होते हैं। कम्पनी वाले करते यह हैं कि शेयर बेंचकर ८, १० लाख रुपये एकत्र करते हैं और इन सब रुपयोंका एक बड़ा मकान बनवा डालते हैं तथा फरनीचर आदि तैयार करवा लेते हैं। इसके बाद विभिन्न वस्तुओंके उत्पा-दकोंसे लिखा-पढ़ी करके उनका माल बिक्रीके लिये मंगवाते हैं। इस मालके मँगवानेमें उन्हें खर्च नहीं करना पड़ता। उत्पादक लोग स्वयं मूल्य लिये बगैर उनके पास विक्रीके लिये अपना-अपना माल भेज देते हैं। स्टोर वाले उन्हें सँभाल कर रखते हैं और जब उस मालकी बिक्री हो जाती है तो कमीशन काटकर उसका मूल्य मिल वालोंको दे देते हैं। इस प्रकार स्टोर वालोंको प्रायः सब माल कमीशन सेल पर ही मिल जाता है। इससे उन्हें कठिनाई भी अधिक नहीं होती और लाभका हिस्सा भी मिल जाता है। जन साधारण की ईमानदारी और सफाईकी भावनाके कारण मालके गन्दे हो जाने

या चोरी चले जानेका भय तो होता ही नहीं है। इसलिए कमसे कम खतरे और खर्चमें स्टोर वालोंको लाभ होता है।

छोटे-मोटे अन्य दूकानदारोंके यहाँ यह सब शोभा और सुविधा तो नहीं होती, परन्तु जो चीज वे रखते हैं उसका मूल्य आदि वे भी अधिकांशमें उचित ही लगाते हैं। जापानियोंमें संग्रह करनेकी प्रवृत्ति नहीं है। वे कमाते हैं और उसे खर्च करते हैं। खर्च करने में उन्हें संकोच नहीं होता। इसलिये सभी जगह काफी अच्छी संख्यामें ग्राहक मिलते हैं। इससे छोटे मोटे व्यवसायियोंके काम भी मजेमें चलते हैं।

दूकानदारी वहाँ पर अधिकांशमें लड़कियाँ करती हैं। (अन्यान्य कार्योंमें भी लड़कियों और स्त्रियोंकी संख्या कम नहीं है) इनका व्यवहार इतना मधुर और आकर्षक होता है कि निष्ठुरसे निष्ठुर हृदयको भी ये एक बार पानी पानी कर देंगी। जापानका बाजार करना एक उच्च कोटिके मनोरञ्जनकी चीज है। दूकानदारों की शिष्टता और उनका सौजन्यपूर्ण व्यवहार किसी भी ग्राहकको मुग्ध कर देगा। दूकानमें प्रवेश करते ही वे नम्रता पूर्वक स्वागत करेंगे—आइए, पधारिए। फिर जो वस्तु आप देखना चाहेंगे उसे दिखाते और हँस-हँस कर आपको प्रसन्न करते रहेंगे। पसन्द आने पर आप सामान खरीद लीजिये और न खरीदिये तो भी जाते समय आपको फिर उसी नम्रताके साथ धन्यवाद दिया जायगा और प्रार्थना की जायगी—फिर पधारनेकी कृपा कीजियेगा। लाख तक-लीफ देकर बिना कुछ खरीदे हुए ही आप क्यों न आ रहे हों वे

अपने सद्व्यवहारसे न चूकेंगे ? इस व्यवहारको देखकर कौन प्रभावित न होगा ?

जापान भरमें—चाहे वे स्टोर हों और चाहे मामूली दूकानें—चीजको सफाईके साथ रखने और सुन्दरसे सुन्दर ढङ्गसे बाँध कर ग्राहकोंको देनेकी प्रथा है। इतना सुन्दर पैकिंग करके ये लोग देते हैं कि वस्तुका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। सड़ी सी चीज भी बिना सुन्दर पैकिंगके न दी जायगी। उसके अतिरिक्त सौदा पक्का करके दाम दे आने पर जिस स्थान पर चाहे ग्राहक अपना माल मँगा सकता है। दूकानदार अपने आदमी द्वारा ठीक समय और ठीक ढङ्गसे उस स्थान पर माल पहुँचा देगा। जापानमें बाजार करते समय बोझा लादनेकी आवश्यकता नहीं होती। हजारों रुपयोंका माल खरीदते चले जाइये, अपना पता और समय देते जाइये, आपका सब सामान ठीक समय पर आपके घर पहुँच जायगा। इसके लिये न आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता है न खर्च करनेकी। इस प्रकार माल पहुँचा देनेके लिये दूकानदार अतिरिक्त दाम नहीं लेते। सब बातोंको देखते हुए जापानका व्यापार व्यवसायका ढङ्ग जितना आकर्षक और अच्छा मालूम होता है, उतना अच्छा अन्यत्र शायद ही मिले।

किसान और मजदूर

किसानों और मजदूरोंका प्रश्न जितने विकट रूपमें भारतर्ष में पाया जाता है, उतने विकट रूपमें तो शायद अन्यत्र न पाया जाय तथापि किसी न किसी रूपमें वह प्रश्न मौजूद प्रत्येक देशमें है। जापानमें भी यह है। सब देशोंका हाल अच्छी तरह मालूम नहीं है, इसलिए तुलनाकर सकना तो सम्भव नहीं है, किन्तु अनुमान यह अवश्य होता है, कि इस प्रश्नका जितना सरल रूप जापानमें है उतना अन्यत्र शायद ही होगा। जापानमें किसीके सामने रोटीका प्रश्न नहीं हैं। खाने-पीने भरको तो समी उपार्जित कर लेते हैं। वहाँके किसानोंके सामने, जमीन्दार, पटवारी, तहसीलदार आदिके

अत्याचारोंका प्रश्न नहीं है। वहाँपर सदाचारकी जो व्यवस्था है, उसके अन्दर रहकर कोई अत्याचारी हो ही नहीं सकता। रिश्वत-खोरी, नाजायज़ ढंगसे नजराना आदिका लेना, अन्य प्रकारकी बेगार आदिका कोई प्रचार वहाँ नहीं है, इसलिए वहाँके किसानोंका जीवन साधारणतः शांत और सुखी है।

इस समय कृषिकी ओर जापानका ध्यान गया है। नाना प्रकारके वैज्ञानिक उपायों द्वारा खेतीकी उन्नतिका प्रयत्न किया जा रहा है। उसके सुधारके लिए ताजेसे ताजे उपाय काममें लाये जाते हैं। जमीनका सुधार, खादका प्रबन्ध, सिंचाईकी व्यवस्था सब कुछ किया जाता है। जोतने, बोने और काटने आदिके लिए अधिकसे अधिक नवीन औजारोंसे काम लिया जाता है। किसानोंको प्रोत्साहन भी दिया जा रहा है। स्थान-स्थानपर प्रयोगशालाएँ स्थापित की गयी है, जिनके द्वारा वैज्ञानिक प्रयोग करके यह देखा जाता है कि किन उपायोंसे खेतीपर क्या प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकारका एक प्रयोग देखनेका अवसर हम लोगोंको अनायास मिल गया था। एक बार हम लोग फूजी माउण्टन देखने गये थे। वहाँसे लौटनेमें रात हो गयी। रास्तेमें आते समय हमलोगोंने देखा कि एक स्थानपर बड़ी विशाल रोशनी हो रही है। हमलोगोंने कौतूहलवश अपने टैक्सी ड्राइवरसे पूछा, वह बेचारा भी न जानता था, अतः हमने वहाँ जाकर उसे देखना निश्चय किया। वहाँ गये तो देखा, कि नीचेकी खेतीपर विजलीकी सर्च लाइटों द्वारा रोशनी डालकर यह देखा जा रहा था, कि उसका क्या असर पड़ता है। इस प्रकारके वैज्ञानिक प्रयोग बराबर

होते रहते हैं। इसीका यह परिणाम है, कि जिस जापानमें आजसे कोई १०-१५ वर्ष पहिले सिवा धानके और कुछ पैदा न होता था, वहाँ आज प्रायः हर प्रकारका अन्न पैदा होता है।

फलोंकी खेतीका भी उद्योग किया जा रहा है। जापानमें जो फल पैदा होते थे उनमें सुधार करके उन्हें और भी अधिक सुन्दर और अच्छे बनानेका प्रयत्न तो हो ही रहा है, साथ ही अनेक नये नये फल भी वहाँ पैदा होने लगे हैं। शाक-भाजीकी पैदावार भी खूब बढ़ी-है और अवस्था यह आ गयी है, कि बहुत कम ऐसे फल अन्न और शाक होंगे जो जापानमें उत्पन्न न होते हों। इतना ही नहीं वहाँपर इन वस्तुओंकी पैदावार खूब बढ़ रही है और जापानी फल विदेशों तक भेजे जाने लगे हैं। लोगोंका तो यह भी कहना है और इसके लक्षण प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ने लगे हैं कि वह समय भी अब दूर नहीं है जब जापानके अन्य मालकी भाँति वहाँका अन्न, वहाँके फल और वहाँकी शाक भाजी आदि भी विदेशोंमें बिकनेके लिए जाने लगेगी। कृषिकी इस उन्नतिमें किसानोंका थोड़ा हाथ नहीं है। सरकार का सहयोग और किसानोंके परिश्रमसे ही यह अवस्था उत्पन्न हुई है। वहाँके किसान अपने स्त्री-बच्चोंके साथ फावड़ा और कुदाल लिये हुए खेतोंको गोड़ते और निराते रहते हैं। छोटे-छोटे बच्चोंको पीठपर 'बचुका'की तरह बान्धे वहाँकी स्त्रियां और रबरके लांग बूट, जो प्रायः गांठ तक ढँक लेते हैं पहने कोट, पैंट धारण किये हुए पुरुष धूप हो चाहे छांह, सरदी हो चाहे गरमी अपने काममें निरन्तर तत्परता पूर्वक जुटे रहते हैं। इस रोजगारसे वे अपना काम सुख

पूर्वक चलाते रहते हैं। सरकारका सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रहता है इसलिए उनके सामने कोई विशेष कठिनाई या कष्टकी बात नहीं है।

हालत मजदूरोंकी भी बहुत कुछ ऐसी ही है। यद्यपि किसानोंकी अपेक्षा मजदूरोंमें असंतोषकी मात्रा अधिक है फिर भी उनका कोई ऐसा रूप सामने नहीं है जिससे अशांति हो। जापानके मजदूर प्रातःकाल ८ बजे कारखानोंमें पहुंच जाते हैं और बीचमें एक घंटेकी छुट्टीको छोड़कर संध्याके ५ बजे तक बराबर काम किया करते है। वे शिक्षित और कर्तव्यपरायण होते है, अतः इस बातकी अपेक्षा किये बिना कि कोई उनके कामका निरीक्षण करे वे अपनी योग्यताके अनुसार अधिकसे अधिक काम और अधिकसे अधिक सुन्दरताके साथ करनेका प्रयत्न करते हैं। कामकी चोरी वे कभी नहीं करते। किसी प्रकारका असन्तोष होनेपर नौकरी छोड़ देना वे अच्छा समझते हैं, परन्तु वहाँ रहकर काम बिगाड़ना उनके स्वभावके बाहरकी बात है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि काम करनेमें इतनी फुर्ती और इतनी तत्परता उनमें रहती है, कि जबतक काम करते रहते हैं तबतक एक लगनके साथ भूतकी तरह जुटे रहते हैं। इसी-लिए उनके द्वारा मालका उत्पादन भी बहुत होता है।

उनके इस परिश्रमका मालिकों पर भी थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य पड़ता है। मालूम नहीं इसी लिए अथवा पहले ही से व्यवस्था होनेके कारण वहां पर आज भी यह नियम है कि मिल मालिक अपने मजदूरोंको वेतनके अतिरिक्त दिनका भोजन, नहाने धोनेका साबुन आदि, तथा सालमें दो बार कपड़े मुफ्तमें देते हैं। भोजनके सम्बन्धमें

कहीं-कहीं यह नियम भी है कि मजदूरोंके वेतनसे कुछ अंश भोजनके नाम पर काट लिया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी अनेक मिल मालिक हैं जो अपने मजदूरोंको उन सुविधाओंके अतिरिक्त रहनेके स्थान भी मुफ्तमें देते हैं। प्रायः प्रत्येक कारखानेके साथ एक डाइनिंग रूम (भोजन गृह) रहता है यहीं पर मिल वालोंकी ओरसे बना हुआ भोजन आ जाता है और सब मजदूर एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। इस व्यवस्थासे मजदूरोंको ताजा भोजन बिना प्रयासके मिल जाता है और उनके घरके किसी अन्य व्यक्तिको भोजनके लाने लेजानेमें अपना समय और शक्ति व्यय नहीं करनी पड़ती। रोगी और पीड़ित मजदूरोंकी दवाके लिऐ मिलमें अस्पताल भी खुले हुए हैं।

इसके अतिरिक्त मिल मालिकोंकी ओरसे विशेष-विशेष अवसरों पर प्रदर्शनियां अथवा दर्शनीय स्थान आदि देखनेके लिए या यों ही घूमने फिरनेके लिए यात्री दलका संगठन किया जाता है। किसी छुट्टीके अवसर पर मजदूरोंकी टोलियां बना कर उन्हें विशेष-विशेष स्थानोंका भ्रमण और प्रदर्शनकी सुविधाएं मिल मालिकों द्वारा दी जाती हैं। इससे मजदूरोंका मनोरञ्जन भी होता है और ज्ञान वर्धन भी और साथ ही साथ वे भी अधिक सन्तोष पूर्वक अपने मालिकके काममें जी लगाते हैं।

मिल-मालिकों और मजदूरोंके सम्बन्धकी एक बात और भी विशेष रूपसे उल्लेख योग्य है। अनुशासनके लिए कामके समय तो उनमें बड़े और छोटेका भाव रहता ही है और अपने अफसरोंका

मजदूरोंको अदब करना ही पड़ता है, परन्तु मजदूरीके समयके बाद उनके साथ मिल-मालिकोंका जो बर्ताव होता है वह वैसा ही होता है जैसा किसी स्वतन्त्र नागरिकके प्रति होता है। कामसे फुरसत पाकर जब नौकर मालिकके पास आयेगा तब मालिक उसका वैसा ही स्वागत सत्कार करेगा जैसा वह किसी स्वतन्त्र नागरिकका करता। अपने रहन-सहनसे भी मालिक मजदूरोंसे अधिक बड़ा होनेकी भावना व्यक्त नहीं होने देगा। पोशाक प्रायः एकसी ही होगी। मिल-मालिक इतनी शान शौकत न करेगा जिससे वह अपने मजदूरोंसे भिन्न कोई बहुत बड़ा व्यक्ति मालूम हो। साथ ही यह भी नहीं है कि कारखानेमें वह बैठे-बैठे केवल कुर्सियां तोड़ा करे। समय पड़ जाने पर एक छोटे से छोटे मजदूरका काम वह बिना संकोच करने लगेगा। इससे छोटे बड़े और सेवक सेव्यका भाव उनमें नहीं आने पाता।

इस प्रकारकी व्यवस्थाके कारण साधारणतः कोई जटिल प्रश्न मजदूरोंके सामने नहीं है, कोई खास तकलीफ नहीं है। परन्तु उन्हें वेतन कम मिलता है। उनके सीधे सादे जीवनके लिए उपरोक्त सुविधाओंकी उपस्थितिका विचार करते हुए यद्यपि वह वेतन इतना कम न मालूम होगा और उसके कारण वास्तवमें कोई ऐसी तकलीफ भी मजदूर अनुभव नहीं करते फिर भी वह कम है इसमें तो सन्देह है ही नहीं। इसलिए मजदूरोंमें असन्तोष होने लगा है। कहते हैं जिस समय व्यापार वृद्धिकी ओर वहांके दिवंगत सम्राट मेजीने ध्यान दिया था उस समय उन्होंने मजदूरीकी शरह जानबूझ कर कम रखी थी और देशके कल्याणके नाम पर मजदूरोंसे अपील

की थी कि वे न्यूनाधिक लाभका विचार न कर जी लगाकर काम करें जिससे व्यापारकी वृद्धि हो, दूसरे देशोंकी प्रतिद्वन्दितामें जापान का माल सस्ता उतरे और देशका लाभ हो। मेजी अपनी प्रजाका प्रियतम सम्राट था। देशकी उन्नति प्रजाकी भलाईका इतना अधिक ख्याल रखने वाला दूसरा सम्राट मुश्किलसे मिलेगा। इसलिए मजदूरों ने उसकी इस अपील पर पूरा-पूरा ध्यान दिया और जिस प्रकारकी व्यवस्थाकी गयी उसे स्वीकार किया। सम्राटने मिल-मालिकोंसे भी मजदूरोंकी कठिनाइयां और कष्टोंकी ओर ध्यान देनेकी अपील की थी और उक्त व्यवस्थाएं बहुत कुछ उसी अपीलका फल हैं। इसके अतिरिक्त, कहते हैं, सम्राटने यह भी आश्वासन दिलाया था कि व्यापारकी वृद्धिके साथ-साथ मजदूरीमें भी वृद्धि की जायगी जिससे मजदूरोंका जीवन भी अधिकाधिक सुखी होता जाय। बहुत सम्भव था कि यदि सम्राट मेजी जीवित रहते तो इस ओर ध्यान भी देते। परन्तु वे नहीं रहे और अवस्था बहुत कुछ अपरिवर्तित ही पड़ी रही।

जापानके मजदूरोंका वेतन औसतन २० येन अर्थात् १५) मासिक है। यह वेतन कितना कम है इसका अन्दाजा सहज ही में किया जा सकता है। फिर भी देशभक्ति और राजभक्तिकी भावनाको उद्बोधित करके इतने छोटे वेतन पर काम करनेकी अपील की गयी थी इसलिए वह भी उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर ली। परन्तु अब जब अवस्थामें परिवर्तन हुआ है, व्यापार बढ़ चला है तब उनमें स्वभावतः यह इच्छा जागृत हुई है कि उनके वेतनमें भी वृद्धि होनी चाहिए। इस प्रश्नको लेकर साधारणतः मजदूर समुदायमें

असन्तोषकी एक क्षीण धारा प्रवाहित हो चली है। परन्तु चूंकि जापानी स्वभावतः शान्ति प्रेमी हैं, उनके इस असन्तोषसे समाजमें अशांति नहीं फैलने पायी। और अब जब कि चीन जापानका संग्राम छिड़ गया है तब तो यह अशांति और भी उभरने न पायेगी। जापानी ऐसी गम्भीर अवस्थामें अपने देशमें ही अशांति उत्पन्न करने का पापार्जन न करेंगे। उनके अन्दर देशभक्तिकी वह गहरी भावना है कि अपने किसी आचरणसे देशको छोटेसे छोटा धक्का पहुंचाना भी वे गवारा न करेंगे। फिर ऐसी विकट परिस्थितिमें तो उनका विपरीत आचरण कदापि सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए यद्यपि इस समय अशांतिके फूट पड़नेकी आशंका नहीं है तथापि असन्तोषने जो जड़ पकड़ ली है वह मिट जायगी इसकी भी संभावना नहीं है। परन्तु निराशाकी बात इसलिए मालूम नहीं होती कि वहां पर मजदूर और मिल-मालिक, प्रजा और राजा सबमें सुबुद्धि है, सबमें पारस्परिक सहानुभूति है, इसलिए परिस्थितिके बिगड़नेके पहले ही उसे सँभाल लेनेका वे अवश्य उद्योग करेंगे।
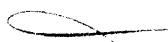
राष्ट्र प्रेमके कुछ नमूने

अपने देशके प्रति-प्रेम होना मनुष्यका स्वभाव होता है। जहाँ परिस्थिति स्वाभाविक नहीं होती, जहाँ प्रयत्न करके मनुष्यके इस स्वभावको बदला जाता है, वहांकी बात तो अपवाद है। स्वतन्त्र और स्वाभाविक अवस्था यही है कि मनुष्य जिस देशमें रहता है उससे प्रेम करता ही है। इसीलिए प्रत्येक देशके निवासी अपने देशका प्रेम करते हैं। जापान निवासी भी अपने देशके प्रति-प्रेम करते हैं। इस प्रकारका देश प्रेम अन्य देशोंकी तुलनामें जापानमें किस मात्रामें है, इसका निर्णय करना कठिन है।

जापानमें व्यक्तिगत स्वार्थकी अपेक्षा देश हितका ख्याल अधिक रखा जाता है। अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा भी देशकी प्रतिष्ठाके आगे नगण्य मानी जाती है। किसी जापानीसे बातचीत करते समय यदि आप यह कहें कि आपकी पोशाक अच्छी नहीं है तो शायद वह इस बातपर कोई आपत्ति न करें परन्तु यदि आप उससे यह कहें कि आपके देशका यह पहनाव अच्छा नहीं है तो वह कभी यह बात बर्दाश्त न करेगा और तुरन्त कह उठेगा महाशयजी यह पहनाव बड़ा अच्छा है, आप इसकी खूबियाँ समझे नहीं हैं, इसमें अमुक खूबी है, अमुक अच्छाई है आदि। सारांश यह कि हर प्रकारसे वह यह चेष्टा करेगा कि आपके हृदयमें उसके देशकी एक छोटीसे छोटी चीजके प्रति भी जो दुर्भावना उत्पन्न हो गयी है वह मिट जाय।

अपने देशके लिए अपना तन, मन, धन सभी अर्पण कर देनेका तो उन्हें अनुपम अभ्यास है। स्वार्थ-त्याग पूर्वक अपने देशकी सेवा करनेका देश-प्रेम बहुतसे देशोंमें मिलेगा परन्तु जिस मात्रामें अपने देशके लिए जापानी लोग स्वार्थ त्याग करते हैं, उस मात्रामें स्वार्थ त्याग करनेवाले अन्य देशवाले कठिनाईसे मिलेंगे। यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जापानकी फौजके सैनिक अवैतनिकरूपसे देशकी सेवा करते हैं; कुछ उच्च पदाधिकारियोंको छोड़कर जिन्हें वेतन दिया जाता है साधारण सैनिक बिना किसी प्रकारका वेतन लिए हुए ही अपने स्वार्थका लेशमात्र भी भाव आये दिये बिना ही देश सेवाके नामपर अपने प्राण हथेलीपर लेकर युद्ध स्थलपर जाते हैं, और जी जानसे लड़ते हैं। गत रूस जापान युद्धमें पोर्ट आर्थरपर कब्जा करनेके लिये

एक खाई भरनेका जब प्रश्न आया था तब जीवित मनुष्योंने प्रसन्नता पूर्वक लेट-लेटकर उस खायीको तोप दिया था, और अपने ऊपरसे— अपने प्राण देकर अपनी लाशोंके ऊपरसे, सारी सेनाको निकालनेका अवसर प्रदान किया था। खायी तोपनेके लिये कहांके सैनिक इस प्रकार अपने प्राण समर्पण कर सकते हैं ? ऐसा उच्च कोटिका देश प्रेम अन्यत्र शायद ही कहीं मिले। वेतन लिये बिना सेनाका काम करना भी उसके सामने तुच्छ हो जाता है। प्राणोंको खेल समझनेवाले जापानी वीर अपने देशकी भलाईके लिए जो कुछ कर सकते हैं वह सर्वत्र सुलभ नहीं है।

राष्ट्रीय झण्डेका सम्मान भी इनमें खूब है। कोई घर ऐसा नहीं है जिसमें झण्डा न हो। बड़े उत्साह और गर्वके साथ जापानी अपने राष्ट्रीय झण्डेको फहराते हैं और सालमें एक दिन तो झण्डा-उत्सव उत्सवके रूपमें बड़ी शानके साथ मनाया जाता है। उस दिन जहाँसे निकलिये झण्डा फहराया हुआ मिलेगा। जब कभी किसी उद्योगमें देश सफल होता है तो भी राष्ट्रीय झण्डे फहराये जाते हैं। ऐसे अवसरोंमें जापानी लोग प्रसन्नता भी खूब मनाते हैं। जिन दिनों हम लोग वहाँ थे उन्हीं दिनों एक हवाई जहाज पहिले-पहल जापानसे उड़कर सारे संसारका भ्रमण करके लौटा था। इस सफलता पर जापानियोंने इतना उत्सव मनाया कि कुछ न पूछिये ? स्थान-स्थान पर जयघोष, झण्डोत्तोलन सभाएं जलूस आदि निकले और उस सफलतापर प्रसन्नता मनायी गयी।

स्वदेशी प्रेम भी उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। जब तक

जापानियोंको अपने देशकी बनी हुई चीज मिलेगी तब तक वे दूसरे देशकी चीज न खरीदेंगे फिर अपने देशकी वस्तु चाहे खराब हो चाहे कमजोर हो, चाहे अधिक कीमती हो इन बातोंकी चिन्ता न करेंगे। बहुत मजबूर हो जानेपर ही वे दूसरे देशकी वस्तु खरीदेंगे और उसमें भी यह सोच लेगें कि किस प्रकार खरीदनेसे अपने देशको अधिकसे अधिक लाभ हो सकेगा।

अपनी भाषाके प्रति भी उनका लगाव ऐसा ही घनिष्ट है। कहते हैं जब कभी राजनीति और किसी गम्भीर विषयपर इस देशके निवासियोंसे विचार विनिमयके प्रसङ्ग आते हैं तब वे अपनी ही भाषामें भाषण भी करते हैं चाहे वे सामनेवाले व्यक्तिकी भाषामें बातें भले ही कर सकते हों। इसमें केवल उनका अभिमान ही कारण नहीं है। वे यह भी देखते हैं कि अपनी बात जितनी अच्छी तरह वे अपनी भाषामें कर सकते हैं उतनी अच्छी तरह सामनेवाले व्यक्ति की भाषामें नहीं और उनकी भाषाको सामनेवालेकी भाषामें अनूदित करनेका भार चूंकि सामनेवालेके दुभाषिये पर रहता है जो जापानी खूब समझता है तथा अपनी भाषामें अच्छी तरह भाव व्यक्त कर सकता है, इसलिए भावोंके आदान प्रदानमें किसी प्रकारका भ्रम या भूल हो जानेकी आशंका नहीं रहेगी। उनका ऐसा ही व्यवहार हम लोगोंके साथ भी हुआ था। नागोया एकजिबीशनके गवर्नर और नागोयाके मेयरने एकजिबीशनके 'इण्डिया डे' पर हम लोगोंको निमन्त्रित किया था। उस समय जो भाषण हुए थे,

जापानी भाषामें ही हुए थे। हम लोगोंने भी, बहुत कुछ देखा देखी, हिन्दी भाषामें भाषण दिये थे।

जापानमें धन अधिक नहीं है। अतः सरकार इस बातका बराबर ध्यान रखती है कि देशका धन बाहर न जाय और बाहरका धन देशमें आये। इसके लिये बड़े-बड़े उपाय किये गये हैं। जापान जाकर कोई विदेशी ऐसे काम बड़ी मुश्किलसे-प्रायः नहीं कर पायेगा जिनसे जापानका धन वह बाहर ले जाय। जो लोग वहाँपर हैं वे प्रायः सब केवल निर्यातका काम करते हैं अर्थात् जापानका तैयार माल विदेशोंको भेजते हैं। जहां माल जाता है वहांसे जापानमें रुपया आता है और उसी रुपयेसे जापान उस निर्यात करनेवाले व्यापारीको आढ़त दे देता है। इस प्रकार उसी देशसे आये हुए धनसे उसको रुपया देता है और स्वयं भी उससे लाभ उठाता है। अपने यहाँका एक पैसा भी वह एक्सपोर्ट वालोंको नहीं देता।

बाहरसे जिन चीजोंको वह लाता है वे सब जापानी व्यापारियोंकी मार्फत मंगायी जायंगी जिससे उस व्यापारका जो मुनाफा है उसमें कुछ न कुछ हिस्सा तो जापानको मिलही जाय। यदि विदेशी व्यापारी द्वारा माल मंगाया जायगा तो सब लाभ विदेशको मिलेगा परन्तु यदि जापानीके द्वारा मंगाया जायगा तो उस सब रकमसे कम से कम आढ़त दलालीका हिस्सा तो जापानके पल्ले पड़ ही जायगा। अपने लाभके लिये ही अपने यहांका एक्सपोर्ट बिजिनेस तो उन्होंने सबके लिये खोल रखा है परन्तु इम्पोर्ट बिजिनेस वे जापानी फर्मोंके द्वारा ही करते हैं। इस प्रकार दोनों व्यापारोंमें अधिकसे-

अधिक लाभ उठाते हैं। एक्सपोर्ट व्यापार भी मालूम होता है कि वे विदेशियों द्वारा इसलिए कराते हैं कि विदेशी अपने देशकी परिस्थितिके जानकार होते हैं। उनके द्वारा माल अधिक खपनेकी आशा होती है। नहीं तो बहुत मुमकिन है कि वह काम भी जापानी ही करते और आढ़त आदिका जो हिस्सा विदेशी ले जाते हैं, वह भी उन्हें न ले जाने देते।

अपने देशमें यात्रियोंको आकृष्ट करनेके लिए नाना प्रकारके आयोजन जापान द्वारा किये जाते हैं। टूरिस्ट ब्यूरो आदिकी व्यवस्था से यात्रियोंको जो सुविधायें दी जाती है उन सबकी तहमें भी धनार्जनका भाव छिपा हुआ मालूम होता है। जो यात्री जापान जायेगा वह जहाज कम्पनियोंको रेलवे, ट्राम, टैक्सीवालों दूकानदारों, नाटकों, सिनेमाओं आदिको कुछ न कुछ देता आयेगा ही। यात्राको जापानमें व्यापारके रूपमें ग्रहण किया जाता है। वे इसे टूरिस्ट इन्डस्ट्रीके नामसे पुकारते हैं और इसके द्वारा लाखों रूपये प्रति वर्ष कमाते हैं।

अपने देशका धन बाहर न जाय इसके लिए वे बहुत सतर्क रहते हैं। इसका एक ताजा उदाहरण तो अभी समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। भारतवर्षसे एक मि० सरकार जापान गये थे। वे बड़े प्रसिद्ध जादूगर हैं। वहां जाकर उन्होंने तमाशा दिखाना शुरू किया। लोगोंको खूब आकर्षण हुआ। उन्हें अच्छी प्राप्ति होने लगी। जब सरकारने यह अवस्था देखी तो तुरन्त उन्हें नोटिस दी कि आप व्यापारके रूपमें अपनी जादूगरीका प्रचार नहीं कर सकते।

यदि अपने गुण प्रदर्शित करनेके लिये खेल करें तो हम आपकी प्रशंसा करेंगे ! परन्तु व्यापारके लिये खेल करनेकी इजाजत हम नहीं दे सकते ।

एक उदाहरण और लीजिये । जापानमें मोटरें अधिक इस्तेमाल की जाती हैं और जापान उतनी मोटरें तैयार नहीं कर पाता । इसलिए वह अमेरिकासे फोर्ड और शिवरलेट मोटरें मगाता था । इन कारखानोंकी मोटरें जापानमें खूब बिकती थीं । करोड़ों रुपये इसके बहाने विदेश जाते थे । अतः जापानका ध्यान जाना स्वाभाविक था । उसने इन कारखानोंको लिखा कि आप लोग एक-एक कारखाना जापानमें खोलें और जापानमें ही तैयार करके हमें मोटरें दें तो हम खरीदेंगे अन्यथा दूसरी कम्पनियोंसे खरीदना शुरू कर देंगे । इतनी बड़ी बिक्री कोई कैसे छोड़ देता ? दोनोंने अपने-अपने कारखाने जापानमें खोले । अब अवस्था यह है कि उन कारखानोंकी तमाम मजदूरी जापानको मिलती है । शेयर होल्डरोंमें जापानियोंकी संख्या अधिक होनेसे मुनाफेकी रकममें जापानका हिस्सा मिलता है और जहाज आदिमें लाने, इश्योरेन्स आदि करानेका जो खर्च होता था वह तो होता ही नहीं या जापानको ही मिलता है । इस प्रकार जो धन सम्भवतः जापानमें रह सकता है उसके रखनेकी वे कोशिश करते हैं ।

अपनी वैदेशिक नीतिमें जापानियोंको केवल दो राष्ट्रोंसे भय है, एक रूससे, दूसरे अमेरिकासे । रूस उनका पुराना दुश्मन है । अतः रूससे मेल-जोल हो सकेगा, इसकी शायद उन्हें आशा नहीं

है। सम्भवतः इसीलिए वे उसकी चेष्टा भी नहीं करते। परन्तु अमेरिकाकी मित्रताके लिये वे सचेष्ट अवश्य मालूम होते हैं। स्वदेशीका उत्पादन करते हुए वे अपने देशकी चीजें खरीदते हैं, इसमें तो कोई शक नहीं, परन्तु जो चीजें स्वदेशी नहीं मिलती उन चीजोंके सम्बन्धमें वे सबसे प्रथम अमेरिकाका बना हुआ माल खरीदेंगे और जब वह माल न मिलेगा तब दूसरे देशका। बहुतसी वस्तुएं हैं जिनका प्रचार जापानमें होने लगा है और जो यूरोप और अमेरिकामें समानरूपसे पायी जाती हैं। उनको 'यूरोपियन' नाम न देकर वे 'अमेरिकन' कहकर पुकारेंगे। उदाहरणार्थ जो पोशाक जापानी पुरुषोंने स्वीकार कर ली है वह यूरोप और अमेरिकामें समानरूपसे व्यवहारमें आती है। परन्तु जापानी उसे अमेरिकन ड्रेस कहेंगे यूरोपियन नहीं। मैत्रीका उद्योग अन्य प्रकारसे भी समय और प्रसंगके अनुसार किया जाता है। नागोयामें किलेकी ओर जाते समय एक सड़क पड़ती है जिसकी दोनों ओर पेड़ लगे हैं। उसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि दोनों देशोंकी मैत्रीको दृढ़ करनेके अभिप्रायसे वे अमेरिकासे भेजे गये थे और मैत्रीकी स्मृतिमें ही वे लगे हुए हैं। इस प्रकार अमेरिकाके साथ मैत्री स्थापित करनेकी चेष्टा जापानियोंमें दिखलायी पड़ती है। परन्तु अब जब कि चीनमें आक्रमण शुरू हो गया है और अमेरिकाका रुख भी खराब है तब मैत्रीका यह ऊपरी दिखावा कहां तक चल सकेगा, राम जाने।

रूस और अमेरिकाके अतिरिक्त चीन उनके निकट पड़ता है। परन्तु चीनसे वे भय नहीं करते। इतना ही नहीं, उल्टा वे स्वयं उसके ऊपर

हाबी हैं। जापानी लोग चीनियोंके साथ सद्भाव नहीं रखते। वे चीनियोंको पतित और चरित्रहीन समझते हैं। यहां तक कि यदि उनकी किसी चीजकी तुलना चीनियोंकी चीजके साथ कर दीजिए तो उसे वे एक प्रकारका निरादर समझते हैं। इस समय चीन और जापानका युद्ध छिड़ा हुआ है, इसका अन्त किस ढंगसे होगा, अभीसे कहा नहीं जा सकता। वह चीनका कुछ हिस्सा अपने कब्जे कर सकेगा या सारा देश कब्जेमें कर लेगा या कुछ भी न पा सकेगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु इतना सत्य है कि उसकी दृष्टि चीनके पूर्वी प्रदेशकी ओर रही है। वह केवल उतना ही हिस्सा लेना चाहता था। अब यदि उसे सफलता मिलती चली जाय और वह केवल पूर्वीय देशसे ही संतुष्ट न होकर सम्पूर्ण देश पर अपना हाथ फैलावे तो दूसरी बात है। परन्तु वैसे उसकी नजर पूर्वीय प्रदेशसे आगे नहीं थी, यही बात वहांके राजनीतिज्ञोंकी बातचीतसे प्रकट होती थी। परन्तु एक साम्राज्यवादी देशकी भूख कितना भू-भाग हड़प जानेसे शान्त होगी, यह कोई नहीं कह सकता।

समाचारपत्र

जापानी पत्रकार-कलाका इतिहास शायद सबसे अधिक ताजा है। जब अन्य-अन्य देशोंमें समाचार-पत्रोंका प्रकाशन खूब जोरों से होने लगा था, उस समय तक जापान समाचारपत्रोंका नाम भी न जानता था। सन् १८६१ में पहले-पहल जापानने एक समाचार-पत्रके दर्शन किये। इस पत्रका नाम 'निशिन-शिंजसी' था। परन्तु यह पत्र भी जापानियोंका अपना न था, और न इसकी भाषा ही जापानी थी। इसके निकालने वाले एक अंग्रेज सज्जन थे, जिनका नाम मि० ब्लेक था। इसकी भाषा थी अंग्रेजी। इस पत्रके प्रका-

शनसे जापानियोंमें भी उत्साह आया, और उन्होंने प्रायः उसके साथ ही अपना पत्र प्रकाशित करना चाहा, परन्तु इस कार्यमें उन्हें सफलता नहीं मिली। अपना पहला पत्र वे १८६८ के पूर्व नहीं निकाल सके। बादमें जैसे अन्यान्य दिशाओंमें जापानने कमाल कर दिखाया, वैसे ही समाचारपत्रोंकी उन्नतिमें भी उसने कमाल कर दिया। इतने विलम्बसे पत्र प्रकाशित करने पर भी उन्नतिकी प्रगतिमें वह किसीसे पीछे नहीं रहा। पत्रोंकी संख्या और साजो-सामान सब बातोंमें वह बड़ी वेगवती गतिसे आगे बढ़ा।

सन् १६०० में जापानके समाचारपत्रोंकी संख्या ६४४ थी, सन् १६०२ में ११०० और सन् १६२१ में वह बढ़कर ३००० हो गई। इस समय वहाँसे ४५६२ पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। इनमेंसे ५४० पत्र तो खाली टोकियोसे निकलते हैं। प्रकाशन-सम्बन्धी उपादानोंमें वे ताजे-से-ताजे उपायों और आविष्कारोंका प्रयोग करते हैं। पत्रोंकी ग्राहक-संख्या भी तेरह-तेरह और चौदह-चौदह लाख तक है। अब वहाँकी अवस्था यह है कि जब तक बहुत अच्छी पूंजी और काफी साधन न हो, तब तक कोई समाचारपत्र निकाल कर सफलतापूर्वक सञ्चालन नहीं कर सकता। अभी कुछ दिन हुए कुछ आदमियोंने मिलकर २० लाख येन (१५ लाख रुपयेसे अधिक) की पूंजी लगाकर ओसाकासे एक समाचारपत्र निकाला था, परन्तु वे उसे चला नहीं सके, और एक वर्षके अन्दर ही उनका सब धन साफ हो गया! वहाँ पर पत्र निकालनेमें धन खो देनेकी इतनी भीषण आशंका रहती है! यह याद रखना चाहिए कि जापान एक छोटा

सा टापू है, जिसकी आबादी छै करोड़से अधिक नहीं है। फिर भी वहाँ पर समाचारपत्रोंका इतना विस्तार है।

जैसा कि स्वाभाविक-सा होता है, पहले जो समाचारपत्र प्रकाशित होते थे, उनमें राज्यतन्त्रकी प्रशंसा अधिक रहा करती थी। इस प्रशंसामें अतिरञ्जन भी होता था, परन्तु ज्यों-ज्यों जनतामें जागृति होती गई, त्यों-त्यों पत्रोंकी नीति भी बदलती गई। अब तो यह हालत है कि पत्रोंमें राज्यतन्त्रकी कड़ी-से-कड़ी आलोचनाएँ प्रकाशित होती हैं। अभी हाल ही में मन्त्रिमण्डलके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन करने और उसको बदलवा देनेका श्रेय भी वहाँके समाचारपत्रोंको है। जापानके, जैसे कि अन्य स्थानोंके, समाचारपत्रों ने जनताकी शिक्षामें बड़ा हाथ बँटाया है। जनताकी राजनीतिक शिक्षाका तो बहुत बड़ा श्रेय वहाँके समाचारपत्रोंको है। वे अपने देशकी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए समाचार प्रकाशित करते, उन पर अपने विचार प्रकट करते और लोगोंको बताते कि उन्हें क्या करना चाहिए। इस प्रकार जनताकी विचार-धारामें अधिकाधिक विशालता आती गई और वह वर्तमान अवस्था तक पहुँची। पत्रोंके आन्दोलनसे ही प्रसिद्ध रूस-जापान-युद्धके समय सेना और जातिका सुन्दर सङ्गठन हो सका था। युद्धके बादसे भी वे अपने लोक-शिक्षण और लोकहित साधनके कार्यमें अग्रसर रहे। सन् १९२५ में उन्हींके आन्दोलनसे वयस्कोंको वोट देनेके अधिकारका कानून (Manhood Sufrage Bill) पास हुआ, जिससे वोट देनेवालोंकी संख्या ३०,००,००० से बढ़कर १,२०,००,००० हो गई।

मजदूर-आन्दोलनको अग्रसर करने तथा स्त्रियोंकी उन्नति करनेमें भी समाचारपत्रोंका बहुत बड़ा हाथ है। इन कार्योंसे तथा कुछ अधिक उन्नत समाचारपत्रोंके प्रकाशनसे जापानके पत्रकारोंका मान बढ़ गया। नहीं तो आरम्भमें वहाँ पर पत्रकारोंकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। लड़कियोंके विवाहमें कोई पिता पहले पत्रकारोंके साथ अपनी लड़कीका विवाह करना पसन्द नहीं करता था, परन्तु अब वह दशा नहीं रही, प्रत्युत अब मामला उलटा हो गया है।

पत्रकार-कलाकी उन्नतिका सबसे बड़ा श्रेय समाचारपत्र प्रकाशित करनेवाली जापानकी दो बड़ी-बड़ी कम्पनियोंको है। इनमेंसे एकका नाम है 'ओसाका-असाही' और दूसरीका नाम है 'ओसाका-मैनिची' कम्पनी। इनके अलावा 'दि डाइ नियन युवेन काई कोडनशा' शिनबुभ कानूशीकी कैशा, आदि कम्पनियोंका हाथ भी काफी बड़ा है। पहली दो कम्पनियाँ तथा चौथी कम्पनी अपने दैनिकोंके लिए और तीसरी कम्पनी अपने मासिक पत्रोंके लिए देश-विदेशमें प्रख्यात है। प्रथम दो कम्पनियाँ तो बहुत ही अधिक विशाल और उन्नत हैं। इनमेंसे प्रत्येकके कार्यालयके साथ भोजनालय, बाल बनानेके घर, स्नानागार, फुलवाड़ी, समयकी गति जाननेके लिए मान-मन्दिर, व्याख्यान-भवन, अभ्यागतोंके ठहरनेके लिए सुसज्जित भवन, बड़े-बड़े पुस्तकालय आदि अनेक इमारतें हैं। इनसे वहाँ पर काम करनेवालोंको हर प्रकारकी सुविधा मिलती है। काम करनेवाले भी हजारोंकी संख्यामें हैं।

उपर्युक्त दोनों दैनिक कम्पनियोंमें (ओसका असाही और

ओसाकामैनिची) से कौन बड़ी और कौन छोटी है, यह नहीं कहा जा सकता। एक, एक इञ्च आगे बढ़ती है, तो दूसरी तो दो इञ्च। इन दोनोंमें प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ी हुई है कि प्रत्येक प्रतिक्षण इस बातका ख्याल रखती है कि उसका काम दूसरीसे अच्छा हो। जिस अवसरपर एक कोई विशेष प्रबन्ध करती है, उसी अवसर पर दूसरी भी वैसा ही या उससे बढ़ कर प्रबन्ध करनेके लिए प्रस्तुत रहती है। इस प्रकारके उदाहरण कई अवसरोंपर मिल चुके हैं। 'ओसका-मैनिची' ने ओसाकामें ३३ लाख येन लगाकर अपनी एक इमारत बनवाई, तो 'ओसाका-असाही' ने ३८ लाख खर्च करके टोकियोमें उससे अधिक विशाल भवन तैयार कर दिया। १६२४ में मैनिची-कम्पनीने सारे जापानमें अपना हवाई-हजाज उड़ाया, तो असाही-कम्पनीने जापानसे रूस होते हुए फ्रांस तक अपना जहाज भेजा। मैनिचीने पाँच हवाई-जहाज खरीदे, तो असाहीने एक बेड़ा ही खड़ा कर दिया। मैनिचीने अंधोंके पढ़नेके लिए 'वेल' अक्षरोंमें लिखा हुआ पत्र निकाला, तो असाहीने महीने-भरकी खबरें खूब छोटे अक्षरोंमें छापकर पुस्तकाकार प्रकाशित करना शुरू किया! भूकम्पके समय जब रेल और तार टूट गये थे और समाचार प्राप्त करनेका कोई साधन शेष नहीं रहा था, तब दोनों कम्पनियोंने अपने-अपने हवाई-जहाज भेज कर समाचार प्राप्त किये थे, और इस भयसे कि कहीं हवाई-जहाज बिगड़ जायँ और समाचार आनेसे रह जायँ, दोनों कम्पनियोंने सिखाये हुए कबूतर साथ भेजे थे, जो समाचार ला सकते थे। यही हाल भूतपूर्व सम्राट्की मृत्युके

समयका था। दोनोंकी ओरसे साठ-साठसे अधिक कर्मचारी केवल इसी समाचारको प्राप्त करनेके लिए रखे गये थे। दोनोंकी ओरसे केवल इसी कार्यके लिए अलग-अलग कार्यालय खोले गये थे। दोनों कम्पनियोंके पास पन्द्रह-पन्द्रह रोटी मेशीनें ऐसी हैं जो घंटेमें १२०००० प्रतियाँ छाप सकती हैं। टाइप बनानेके लिये सात-सात आठ-आठ कारखाने दोनोंके अलग चला करते हैं। अपना-अपना विज्ञापन करनेके विचारसे दोनों कम्पनियाँ कभी संसारके बड़े-बड़े व्यक्तियोंको निमन्त्रित करके व्याख्यान करवाती हैं, कभी प्रदर्शिनियाँ आदि खोलती हैं, कभी अच्छे-अच्छे संगीतकी व्यवस्था करती हैं, कभी क्रिकेट, फुटबाल, तैराकी आदिकी प्रतियोगिता कराती हैं, कभी लेखन-प्रतियोगिता कराती हैं और कभी इसी प्रकारके और काम कराया करती हैं। एक बार तो जहाज-प्रतियोगिता भी हुई थी। सारांश यह कि इनकी प्रतिद्वन्द्विता बराबर चला करती है, और अभी तक कोई किसीको नीचा नहीं दिखा सका। जनतामें दोनोंकी प्रतिष्ठा बराबर है। दोनोंके पत्रोंकी ग्राहक संख्या बीस-बीस इक्कीस-इक्कीस लाख हैं।

कोई मनुष्य या कोई संस्था पहले ही से बड़ी होकर पैदा नहीं होती। असाही-पब्लिशिंग कम्पनी भी अपने जन्मकालमें एक छोटीसी चीज़ थी। एक हैण्ड-प्रेस, ८ कम्पोज़िटर और प्रेस-मैन और ७ सम्पादक-रिपोर्टर आदिको लेकर सन् १६०४ में असाही कम्पनीका जन्म हुआ था। इस कम्पनीके प्रेसिडेन्ट मि० र्योहरी मरायमा (Mr. Ryoheri Murayama) हैं। ये ही सज्जन

जन्मकालसे लेकर आज पर्यन्त इसकी व्यवस्था कर रहे हैं। गत २५ जनवरी १९२९ को कम्पनीकी 'सिलवर-जुबली' मनाई गयी थी। इस कम्पनीके द्वारा टोकियो और ओसाकासे दो दैनिक पत्र निकलते हैं। ये पत्र इस कम्पनीकी सबसे बड़ी विभूति हैं। इनके अलावा इसी कम्पनीके द्वारा साधारण साप्ताहिक, सचित्र साप्ताहिक, मासिक, द्विमासिक और वार्षिक पत्र भी निकलते हैं। इस कम्पनी द्वारा प्रतिवर्ष 'असाही इकनामिक इयर बुक' (Asahi Economic Year Book) भी प्रकाशित होती है। इस कम्पनी द्वारा प्रकाशित होनेवाले दैनिक पत्रोंमें सांध्य-संस्कारणको मिलाकर कोई २४ संस्करण जिले जिलेकी अवस्थाके अनुसार प्रकाशित होते हैं। 'ओसाका असाही' की पृष्ठ-संख्या १४ और'टोकियो-असाही' की १२ होती है। पत्रकार-व्यवसायकी नई-से-नई रीति-नीतिका इस कम्पनीमें प्रयोग किया जाता है और नई-से-नई मेशीनोंसे काम लिया जाता है। यह कम्पनी ज्वायंट स्टाक कम्पनीके ढंगकी है, परन्तु इसके शेयर इस प्रकार नहीं बिकते कि जो चाहे सो खरीद ले। इसलिये इस पर शेयर-होल्डरोंका कोई दबाव नहीं पड़ता, और यह निष्पक्ष होकर आलोचना-प्रत्यालोचना कर सकती है। असाहीके कार्यालय इस समय डेढ़ एकड़ जमीनपर बने हुए हैं। इसमें काम करनेवालोंकी संख्या तो हजारोंकी है। १४ डाइरेक्टर और कौन्सिलसर, ११९४ कार्यालयके सदस्य (जिनमें ७१७ 'ओसाका-असाही' से सम्बन्ध रखते हैं) १८७१ अन्य नौकर (जिनमें १०९८ 'ओसाका-आसाही' में काम करते हैं) और ६०३ संवाददाता (जिनमेंसे ३३४

'ओसाका-असाही' के लिए समाचार संग्रह करते हैं)। कुल मिलाकर ३६८२ आदमी इस कम्पनीमें काम करते हैं। यदि इनके साथ पत्र बेंचने वाले और पत्र बाँटने वाले भी शामिल कर लिये जायँ, तो कर्मचारियोंकी संख्या दसों हजार हो जायगी। अपने पत्र ग्राहकोंके पास पहुंचाने तथा पाण्डु-लिपियां लाने और ले जानेके लिए हवाई-जहाजोंका प्रयोग सबसे पहले असाही-कम्पनीने किया। इस समय इस कम्पनीके पास बीस हवाई-जहाज़ हैं। इसके पास ५०० सम्बाद वाहक कबूतर, और दो टेलीफोटो यन्त्र हैं। टेलीफोटो यन्त्रसे वे तार के तार द्वारा दूर देशमें खींचे हुए फोटोकी प्रति लिपि एक मिनटमें समाचार पत्रके कार्यालयमें आ जाती है। इसके अपने टेलीफोन भी है। अपना विज्ञापन करने तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके विचारसे (और सम्भव है, इसमें कुछ सेवाका भाव भी हो) यह कम्पनी सार्वजनिक सेवाके कार्योंमें भी काफी धन खर्च किया करती है। पाँच लाख येन (एक येन लगभग ॥।)॥ का होता है) पाँच वार्षिक किश्तोंमें इस कम्पनीने समाज-सुधार-सम्बन्धी कार्योंके लिए दिये हैं। चित्रकारी आदिका उत्तम कार्य करनेके लिए कम्पनीने आसाही-मेडल मुकर्रर किया है। पुस्तकालय आदिके लिए भी इनाम-पुरस्कार दिया जाता है। पिछली बार जब सिल्वर-जुबली मनाई जा रही थी तब दस हज़ार येन इस प्रकार लोकोपकारी कार्योंके लिए प्रदान किये गये थे। इस कम्पनी द्वारा अपने कार्यालयके सात कर्मचारियोंको अपने खर्चसे विदेशोंमें इसलिए भेजा गया था कि वे वहाँके बाज़ारका अनुभव प्राप्त करें और यह तरकीब बतावें कि जापानका बाज़ार किस

प्रकार और अधिक उन्नत किया जा सकता है। इस प्रकार देश और राष्ट्रके हितके अनेक कार्य कम्पनी द्वारा निरंतर हुआ करते हैं।

'ओसाका-मैनिचीका हाल कम नहीं है। निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि ओसाका-मैनिची-कम्पनी असाही कम्पनी से जरा भी छोटी है। प्रत्युत कई लोग तो इसे उससे बड़ी कम्पनी मानते हैं। जो हो, ओसाका-मैनची-कम्पनीके सम्पादकीय विभागमें ४५०, दफ्तरमें २३६, शाखा-कार्यालयमें १२०, कम्पोज और छपाई आदिके विभागमें ८५६, जहाज़-विभागमें २६५ संवाददाता और रिपोर्टर ४५७, तथा अन्य पदाधिकारी और कर्मचारी ७८ हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर २४६५ आदमी इसमें काम करते हैं। राज्यारोहण के जिस प्रसंगका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, उस अवसर पर इस कम्पनीने ऐसा प्रबन्ध किया था कि जिसे देखकर आश्चर्यकी सीमा न रहती थी। इसके कामके लिए ही टेलीफोन-कम्पनीको अनेक नये खम्भे लगाने पड़े थे। इसकी ओरसे भेजे गये रिपोर्टरोंने इतना मसाला एकत्र किया था कि छः महीने तक रोज छपते रहनेपर भी वह समाप्त नहीं हुआ! मैनिची-कम्पनीकी विज्ञापनकी आय अन्य समाचार-पत्रोंसे अच्छी है। इसमें विज्ञापनसे सालमें एक करोड़ ३२ लाखकी और बिक्रीसे एक करोड़ ७५ लाखकी आमदनी होती है। खर्च भी इन लोगोंके ऐसे ही लम्बे चौड़े हैं। इसलिए इतनी लम्बी आमदनी होने पर भी सालकी बचत २६ लाखसे अधिक नहीं होती। इस कम्पनीके प्रधान सम्पादकका वेतन चालीस हजार वार्षिक है।

यही दशा असाहीके प्रधान सम्पादक की भी है। यह कम्पनी अपने विज्ञापनके लिये अनेक प्रकारके आयोजन करती रहती है। जिस समय हम लोग वहां थे, उस समय भी इसका एक मेला हो रहा था जो किसी भी अच्छी प्रदर्शिनीसे कम न मालूम होता था। होची शिनबुम कम्पनीकी ओरसे होची शिनबुम नामका एक जापानी भाषाका दैनिक पत्र निकलता है। यह पत्र वर्तमान पत्रोंमें सबसे पुराना है। इसकी स्थापना १ जून १८७२ में हुई थी। इसका भी अपना बड़ा विशाल कार्यालय है अनेक सम्बाददाता है। अपने कामके लिए अपने निजी ५ हवाई जहाज और २५ मोटरें हैं। इसके राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, वैदेशिक, स्थानीय आदि अनेक विभाग हैं जिनमेंसे प्रत्येकमें अलग-अलग कर्मचारी काम करते हैं। इसकी ग्राहक संख्या ५ लाखसे अधिक हैं। यह अपने देशके और खासकर स्त्रियोंके समाचार देनेके लिए प्रसिद्ध है।

कोडनशा-कम्पनीकी हालत इन कम्पनियोंसे भिन्न है। इस कम्पनीका पूरा नाम है 'दि डाइ नियन युवेनकाइ कोडानशा' और इसके प्रवर्तक तथा इस समय इसके प्रेसिडेंट हैं सीजी नोमा। इस कम्पनी द्वारा दैनिक या साप्ताहिक पत्र नहीं प्रकाशित किये जाते। यह केवल मासिक पत्र प्रकाशित करती है, इसीलिए इस कम्पनीके प्रेसिडेंट श्री सीजी नोमा 'मासिक पत्रोंके सम्राट' के नामसे पुकारे जाते हैं। इस कम्पनीने बीस वर्षकी आयुमें ही ६ अच्छे-से-अच्छे मासिक पत्र निकाले हैं। जापानमें लगभग ८०० मासिक पत्र प्रकाशित

होते हैं। इन सबके पाठकोंको मिलाकर गिननेमें लगभग ७० प्रतिशत पाठक इस कम्पनीके होंगे। इस कम्पनीके द्वारा (१) किंग, (२) 'यूबेन' (३) फूजिन क्लब' (४) 'कदेन-क्लब', (५) फूजी' (६) 'गैंदाई', (७) शोननक्लब (८) 'शोजो-क्लब' और (९) योनन-क्लब' नामक नौ मासिकपत्र निकलते हैं। इनमेंसे प्रत्येक मासिक पत्रका दृष्टिकोण भिन्न हैं। किंग सार्वजनिक रुचिका बड़ा खयाल रखता है। इसका परिणाम यह है कि जापानमें जितने ग्राहक इस पत्रके हैं, उतने और किसी मासिक पत्रके नहीं। अन्य पत्र भी अपने-अपने ढंगके निराले हैं। 'फूजिन क्लब' महिलाओंके लिए और 'शोजो-क्लब' कन्याओंके लिए है। इसी प्रकार 'यूबेन' नवयुवकोंके लिए और 'योनन-क्लब' बालकोंके लिए है। 'शोनन-क्लब' विद्यार्थियोंके लिए हैं और 'कोदन-क्लब' मनोरंजन-सम्बन्धी पत्र है। इस कम्पनीका प्रधान लक्ष्य है— 'मासिक पत्रों द्वारा स्वदेशकी सेवा करना', और कम्पनी इस उद्देश्य को सामने रखकर काम कर रही है। परन्तु यह सब होते हुए भी कम्पनी अपने पत्रोंमें रुखाई नहीं आने देती। वह सदा यह ध्यान रखती है कि गम्भीरसे गम्भीर विषयका भी अधिकसे अधिक मनोरंजक ढंगसे प्रतिपादन किया जाय। 'मनोरंजक और उपयोगी' उसका आदर्श वाक्य है। विषयकी उपयोगिता और प्रतिपादन-प्रणालीकी मनोरंजकतापर वह ध्यान दे लेगी, तब कोई मजमून अपने पत्रोंमें प्रकाशित करेगी। इस कंपनीमें काम करनेवालों की संख्या लगभग ६०० है, और जितने आदमी हैं, सब बड़े सद्भाव और मेल-जोलसे काम करते हैं। सहयोगसे काम करना, ईमानदारी

तथा परिश्रमको सबसे अधिक महत्त्व देना, व्यावहारिकता और बुद्धिमत्ताका ध्यान रखना उनका सिद्धान्त बन गया है। परिश्रमशीलतामें तो इस कम्पनीके कर्मचारी अपना सानी नहीं रखते। कम्पनी का कार्य करनेका समय ८ घंटे रोजका है, पर बाज़-बाज़ कर्मचारी सबेरे ५ बजेसे रातके १० और १२ बजे तक काममें जुटे रहते हैं। ५४ आदमी तो ऐसे हैं, जो नियमित रूपसे १५ से १८ घंटे तक काम किया करते हैं! तेरह-चौदह घंटे काम करनेवालोंकी संख्या तो बहुत अधिक है। इन कर्मचारियोंमें आपसमें कोई भेद-भाव नहीं—सबके साथ बन्धुत्वका व्यवहार होता है। छोटी या बड़ी परीक्षा पास करनेसे या छोटी या बड़ी उम्रके होनेसे किसीका निरादर या सम्मान नहीं होता। सबके साथ पूर्ण समानताका व्यवहार होता है। इसीका यह फल है कि कम्पनी आज जापानकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्था बन गई है।

इन कम्पनियों और उनके समाचारपत्रोंके अलावा दैनिक पत्रोंमें 'जीजी', 'चूगाय-शोगाया', 'कोकूमिन' 'योम्यूरी', 'योरोडजू', 'टोकियो-मोया' आदि और मासिक पत्रोंमें 'रिकन्सट्रकशन', 'सेंट्रल-रिव्यू' आदि प्रमुख पत्र हैं। 'जीजी' ताजे समाचार देनेके लिए प्रसिद्ध है, और उसकी ग्राहक-संख्या लगभग दो लाख है। 'चूगाय-शोगया' व्यापारिक पत्र है। 'कोकूमन'के सम्पादकीय लेख लोगोंको अधिक पसन्द आते हैं तथा उसमें प्रकाशित ऐतिहासिक लेख भी लोग बड़े चावसे पढ़ते हैं। 'योम्यूरी' राजनीतिक विचारोंके लिए प्रसिद्ध था, पर अब उसकी वह प्रतिष्ठा नहीं रही। 'योरोडजू'की

दशा भी पहलेकी-सी नहीं रही। इस समय उसके ग्राहक ५० हजार ही हैं। 'टोकियो-मोया' गरीबों और मजदूरोंका जबरदस्त समर्थक है और अपने क्षेत्रमें इसका अच्छा प्रभाव है। इसकी ग्राहक-संख्या लगभग दो लाख है। 'रिकन्सट्रकशन' और 'सेंट्रलरिव्यू' अंग्रेजीके बहुत अच्छे मासिक पत्र हैं और इनकी ग्राहक-संख्या साठ-साठ हजारके लगभग हैं। इनमें गम्भीर विषयों पर लम्बे-लम्बे लेख प्रकाशित होते हैं। बीस-पचीस पन्नेके लेख तो साधारण लेख होते हैं। कभी-कभी सौ-सौ पन्नेके लेख प्रकाशित होते हैं। हमारे यहाँ यदि इतने लम्बे लेख हों, तो लोग देख कर ही ऊब जायँ; मगर वहाँके पाठक इतने-इतने लम्बे लेख भी पसन्द करते हैं।

समाचारपत्रोंका—विशेषकर दैनिक समाचारपत्रोंका—जो विवरण ऊपर दिया गया है, उससे मालूम होगा कि जापानके समाचार-पत्रोंने स्थान-स्थानका समाचार प्राप्त करनेके लिए कितना विशाल आयोजन कर रखा है। ऐसी दशामें वहाँ पर समाचार-समिति (News Agencies) का होना और पनप सकना कठिन ही है, इसीलिये वहाँ पर रूटर, यूनाइटेड प्रेस, प्रेस-एसोसिएशन ऐसी बड़ी समाचार-समितियोंका अभाव ही है। जो कम्पनियाँ हैं, वे प्रायः विदेशोंके समाचारोंका कार्य ही अधिक करती हैं। इस समय इस प्रकारकी समाचार-समितियोंमें 'रेंगो' (Rengo) और 'निपन डेम्पो' (Nippan Dempo) नामक कम्पनियाँ प्रसिद्ध हैं। इन कम्पनियोंने अपना सम्बन्ध रूटर और यूनाइटेड प्रेस अमेरिकासे स्थापित कर लिया है। उन्हींसे विदेशोंके समाचार ले-लेकर ये

एक जापानी बालिका

लेखक श्री० दवे और श्री० व्यासके साथ

जापानी समाचारपत्रोंको देती हैं। सन् १९२९ में 'कोकुशाई शुसिनसा' नामकी एक जापानी कम्पनी खुली थी। यह अब भी है। यह अपने देशके दुःख, दुर्दशा, अभाव, अभियोग, उन्नतिकी आशा आकांक्षा आदिके समाचार विशेष रूपसे संग्रह करती है, और इसके लिए बहुसंख्यक रिपोर्टर भी रखे हैं।

जापानके समाचारपत्र अन्यान्य देशोंके समाचारपत्रोंकी भाँति विज्ञापन पर अधिक अवलम्बित नहीं रहते। जब कि पाश्चात्य देशोंमें विज्ञापनकी आमदनी ९० प्रतिशत होती है, तब जापानमें वह केवल ४३ प्रतिशत ही होती है। यह बात और है कि किसी विशेष पत्रको कुछ अधिक आय हो जाती हो, अन्यथा सबका औसत ४३ प्रतिशतके लगभग ही पड़ता है। विज्ञापनकी आमदनीके कम होने का एक अच्छा परिणाम यह हुआ है कि वहाँके पत्र बड़े-बड़े व्यापारियोंके प्रभावमें नहीं आये। दूसरे देशोंमें समाचारपत्र विज्ञापन देने वाले बड़े-बड़े व्यापारियोंके प्रभावमें आ जाते हैं और अपना मत प्रकट करनेमें पराधीनसे रहते हैं। इस मामलेमें जापानके पत्र अधिक स्वतन्त्र हैं। जापानी समाचारपत्र अन्यान्य बातोंमें भी काफी स्वतन्त्र होते हैं। तभी वहाँके समाचारपत्र समाचारोंके प्रकाशनमें बड़ी मनमानी करते हैं। संग्रह करते समय तो संवाददातागण इस बातका पूरा ध्यान रखते हैं कि समाचार बिलकुल ठीक-ठीक हो, पर प्रकाशनके समय सम्पादकगण समाचारमें इतना नमक-मिर्च लगा देते हैं कि वह बहुत कड़ुवा हो जाता है और वास्तविक घटनासे कभी कभी बिलकुल ही भिन्न हो जाता है। नमक-मिर्च लगानेकी इस

क्रियामें आन्तरिक अभिप्राय यह होता है कि हम ऐसा समाचार प्रकाशित करें, जो हमारा विशेष समाचार मालूम पड़े और कहीं अन्यत्र प्रकाशित न हुआ हो।

जापानमें छोटे-छोटे समाचारोंको बहुत कम महत्व दिया जाता है। वहाँके पाठक बड़े-बड़े गवेषणापूर्ण लेख, कविताएँ और कहानियाँ अधिक पसन्द करते हैं। जो पत्र उनकी इस रुचिके अनुसार पाठ्य-सामग्री देते हैं, वे अधिक प्रचलित होते हैं, मासिक पत्रोंके लिये तो यह अकाट्य नियम-सा है। अपवाद है, तो केवल इतना है कि जो मासिक पत्र स्त्रियोंके लिए निकलते हैं, उनमें इस नियमकी उपेक्षा की जा सकती है, यद्यपि अधिकांशमें वे पत्र भी उसका पूरा-पूरा पालन करते हैं।

मासिक पत्रोंकी अपेक्षा दैनिक पत्र प्रचार और प्रभाव दोनों बातोंमें बड़े हैं, परन्तु इनमें आपसकी प्रतिद्वन्दिता ख़ूब चला करती है। इन पत्रोंके नागरिक संस्करण अलग और ग्रामीण संस्करण अलग निकलते हैं। शहरके पत्रोंकी अपेक्षा गाँवके पत्र लाभ भी अच्छा उठाते हैं। यहाँ पर प्रायः प्रत्येक विषयके अलग-अलग समाचारपत्र हैं। कुछ दिन पहले तक व्यवसाय-सम्बन्धी समाचार-पत्र नहीं थे, परन्तु अब उस दिशामें भी उन्नति हो गई है।

जापानके वे पत्र जो शासनतन्त्रका विरोध करते हैं, अन्य पत्रोंकी अपेक्षा अधिक बिकते हैं, इसलिये प्रायः सब शासकोंके साथ खड्ग-हस्त ही रहते हैं। यदि कभी किसीने अनुचित रूपसे शासनका समर्थन कर दिया, तो उसके गिर जानेकी आशंका रहती है। सन् १९१४ में

'मोच्रू' नामक पत्रने जनमतके विरुद्ध मन्त्रिमण्डलका समर्थन किया था। इसका परिणाम यह हुआ था कि उसकी ग्राहकसंख्या एकबारगी कम हो गई थीं ! तबसे इस भूलको दोहरानेका साहस किसीने नहीं किया, परन्तु शासनतन्त्रके ऐसे विरोधके साथ-ही-साथ यह भी नहीं है कि कोई पत्र किसी राजनीतिक दलका पक्षपाती बनकर रह सके। 'चीनो' नामक एक पत्र एक दलका समर्थन करनेके लिये निकाला गया था। दल-विशेषकी ओरसे इसके चलानेका भगीरथ प्रयत्न किया गया। बीस वर्ष तक इसका व्यय-भार दलवाले उठाते रहे, परन्तु यह सब करने पर भी पत्र न चला, और अन्तमें उसे बन्द ही कर देना पड़ा।

जापानके पत्र-व्यवसायके इतने उन्नत होने पर भी वहाँ पर पत्रकारोंका कोई सङ्गठन नहीं है, और जापानी पत्रकारोंमें बेकारी बहुत बढ़ रही है।

पाश्चात्य देशोंकी अपेक्षा जापानके समाचारपत्रोंको बहुत अधिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। जितनी अधिक पूंजी जापानके पत्र-सञ्चालकको लगानी पड़ती है, उतनी किसी पाश्चात्य देशवाले पत्र-सञ्चालकको नहीं। इसका प्रधान कारण यह है कि वहाँ की जनता की प्रवृत्ति समाचार देनेकी ओर नहीं है। इससे जापानी समाचार-पत्रोंको अधिक-से-अधिक रिपोर्टर रखने पड़ते हैं। जितने रिपोर्टर जापानके पत्रोंके यहाँ रहते हैं, उसके तृतीयांश भी संसारके किसी देशके समाचारपत्रोंके पास नहीं रहते ! रिपोर्टरोंके रखनेमें उनका असंख्य धन प्रति वर्ष व्यय होता है। इसके अलावा वहाँ पर समा-

चारपत्रोंकी बिक्री हाकरोंकी मारफत कम होती है। अधिकांशमें लोग पत्रके ग्राहक बन जाते हैं, और समाचारपत्रका काम यह होता है कि रोज-रोज अपना पत्र अपने ग्राहकोंके पास ठीक समय पर पहुँचा दे। लाखों ग्राहक और सबके पास नियमित रूपसे पत्रका पहुँचाना ! बेचारे पत्र-सञ्चालकोंका इसमें दीवाला निकल जाता है। अकेले इस कामके लिए जापानमें लगभग दो करोड़ रुपये प्रतिवर्ष व्यय होते हैं ! व्ययाधिक्यकी इतिश्री यहींसे नहीं हो जाती। उनको टाईप भी बहुत लगाना पड़ता है। जब कि अंग्रेजी भाषाके समाचारपत्रोंको बीस-बीस पन्नेके समाचारपत्रोंमें साढ़े सात लाख या अधिक-से-अधिक दस लाख अक्षर जोड़ने पड़ते हैं, तब जापानके बारह पृष्ठके समाचारपत्रमें नब्बे लाख अक्षर लग जाते हैं ! इन अक्षरोंके बनानेमें भी धनका बड़ा व्यय होता है।

अब रही सरकार द्वारा समाचारपत्रोंके नियन्त्रणकी बात। ऊपर कहा जा चुका है कि जब समाचारपत्र प्रकाशित हुए थे, उस समय वे राज्यतन्त्रकी प्रशंसा ही किया करते थे। इतना ही नहीं, उस प्रशंसामें अतिरञ्जनकी मात्रा भी पर्याप्त होती थी, परन्तु धीरे-धीरे इस नीतिमें भेद आने लगा। जापान सरकारने कुछ नये कानून बनाये। इनमेंसे एक कानूनके अनुसार जापानकी बहुत दिनोंसे चली आती हुई सम्पत्ति-सम्बन्धी कुछ प्रथाओंका उच्छेद किया गया। एक दूसरे कानून द्वारा जापानियोंका वह अधिकार छीन लिया गया, जिसके अनुसार वे दो तलवारें बाँध सकते थे। इसी प्रकारके कुछ कानून और भी बने। समाचारपत्रोंने इनका विरोध किया। इससे

लोगोंकी दृष्टिमें तो समाचारपत्रोंके प्रति श्रद्धा बढ़ गई, परन्तु सरकारका रुख बदल गया। अब दमनकारी कानूनोंकी सृष्टि हुई। सम्पादक गिरफ्तार होने लगे। गिरफ्तारीकी रफ्तार इतनी तेज हुई कि कुछ दिन तक प्रायः प्रत्येक समाचारपत्रके कार्यालयमें जेल जानेवाला सम्पादक अलग रहने लगा, मगर बादमें उन लोगोंने यह ढङ्ग भी हटा दिया और वे खुलेआम विरोध करने लगे। नतीजा यह हुआ कि खूब गिरफ्तारियाँ हुईं, मगर ज्यों-ज्यों गिरफ्तारियाँ होती जाती थीं, त्यों-त्यों नये-नये सम्पादक उपलब्ध होते जाते थे। बड़े जोरका द्वन्द्व चला। राजकर्मचारियोंने भी सख्तीसे काम लेना शुरू किया। पहले तो केवल सम्पादक ही अपराधी माना जाता था और उसीको सजा होती थी, अब मैनेजर और स्वत्वाधिकारी भी अपराधमें शामिल माने जाने लगे! यह दमनकारी कानून यहाँ तक बढ़ा कि पुलिसको यह अधिकार दे दिया गया कि वह जिस अङ्क को आपत्तिजनक समझे, उसका बेंचना तुरन्त बन्द करवा दे। 'होम आफिस' को यह अधिकार मिला कि यदि वह उचित समझे, तो पत्रका प्रकाशन तक बन्द करवा दे। ये कानून न्यूनाधिक रूपमें अब भी मौजूद हैं। अन्तर केवल इतना हो गया है कि केवल पुलिसकी नेकनियती और दया पर ही मामला नहीं छोड़ दिया जाता। अब न्यायालय द्वारा अपराध सिद्ध हुए बिना कोई अपराधी नहीं ठहराया जाता और न उसे किसी प्रकारका दण्ड ही दिया जाता है।

कुछ संस्थाएं

जापानकी संस्थाओंका उल्लेख करते ही किसी लेखकका-खास तौर पर किसी यात्री लेखकका ध्यान बरबस सबसे पहले जापान टूरिस्ट ब्यूरोकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रहेगा। यह संस्था इतनी सेवा-परायण है और यात्रियोंके लिए इतनी अधिक सुविधा देने वाली है कि इसकी उपेक्षा किसी यात्रीके लिए सम्भव नहीं है। प्रत्येक बड़े स्थानमें टूरिस्ट ब्यूरोके कार्यालय स्थापित हैं। जो बिना किसी फीसके यात्रियोंकी सेवा करते रहते हैं। हम लोगोंको स्वयं अनेक अवसरों पर इस संस्थाकी अमूल्य सेवाएं प्राप्त हुईं। आपको किसी प्रकारका काम हो आप पासके टूरिस्ट ब्यूरोके कार्या-

लयमें चले जाइए, वहाँके कर्मचारी आपको हर प्रकारकी सहायता देंगे। वैसे तो हमें उनसे सहायताएं मिली ही हैं, परन्तु एक बार जो सहायता मिली उसका उल्लेख आवश्यक-सा प्रतीत होता है। हम लोगोंको जब यह मालूम हुआ कि हमारा जहाज़ जाते समय डेरिनमें भी ठहरेगा और वहाँ टूरिस्ट ब्यूरोका कार्यालय है, तभी हमने एक चिट्ठी ब्यूरोके कार्यालयको लिख भेजी कि हमारा यात्री-दल अमुक जहाजसे आ रहा है आपकी कृपा होगी यदि आप जहाज़ पर मिलनेका कष्ट स्वीकार करेंगे। इसके अनुसार डेरिनमें जहाज़ पहुंचते ही वहांके कर्मचारी आ गये। डेरिनमें जहाज़ शामको पहुंचा था और सबेरे तड़के ही वहाँसे छूट जाने वाला था। इसी बीचमें हमें अपने दलके लिए दूध तथा शाकभाजी और फल वगैरहका प्रबन्ध करना था। जहाज़से उतरते-उतरते काफी देर हो गयी। हम उन कर्मचारियोंके साथ कार्यालय गये। वहाँ उन्होंने एक डेरीफार्मको टेलीफोन करके दूधका प्रबन्ध तो तुरन्त करा दिया। उसके बाद शाक-भाजी और फलकी तलाशमें निकले। मगर हम लोगोंके पास जापानी सिक्के न थे जो वहाँ चलते थे और भारतीय रुपयोंका विनिमय न होता था। पहले तो इस विनिमयके लिए ही वे कर्मचारी व्यस्त रहे। अन्तमें इंगलिश पौंडके सिक्के लिए गये। इस कार्यमें बड़ी देर हो गयी। रातके कोई ११-१२ बज गये। तब तक सब दूकानें बन्द हो गयीं थीं। वहाँ पर १० बजे तक सभी दूकानें प्रायः बन्द हो जाती हैं। अब हम लोगोंके सामने एक समस्या उपस्थित हुई। अगर शाकभाजी फल वगैरह नहीं, मिलते तो बड़ी तकलीफ थी। हमने

अपनी बात कर्मचारियोंसे कही। उन बेचारोंने आश्वासन दिलाते हुए दूकानदारोंके घरों या गोदामोंमें जा-जाकर हमारे लिए शाक-भाजी आदिका प्रबन्ध कराया। इस काममें उन्हें प्रायः १ बज गया था। फिर भी अकेले आनेमें हमें कष्ट न हो इसलिए इतनी रातको और उस भयंकर शीतमें जिसमें हम लोग ठिठुरे जाते थे, वे जहाज़ तक हमारा सामान पहुंचाने आये। सामान आदि पहुंचाकर जब जाने लगे थे उस समय १ बजकर ४५ मिनट हुए थे। इतनी रात तक वे हमारा कार्य करते रहे थे। अतः हमने स्वभावतः उन्हें उनका पारिश्रमिक देना चाहा, परन्तु उन्होंने बड़ी नम्रता, साथ ही दृढ़ता पूर्वक उसको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि हमारी संस्थाके कोई कर्मचारी किसी प्रकारका पारिश्रमिक या पुरस्कार नहीं लेते, जो वेतन उन्हें ब्यूरोसे मिलता हैं वही उनका पुरस्कार है। आप सन्तुष्ट हैं यह हमारी प्रसन्नताकी बात है, आदि। इस व्यवहारको देखकर उस संस्थाके प्रति किसकी श्रद्धा न होगी।

इस संस्थाका जन्म १२, मार्च सन् १९१२ ई० को हुआ था। इसके पूर्व जापानमें वेलकम सोसाइटी (Welcome Society) नामकी संस्था स्थापित थी। यह सोसाइटी सन् १८९३ ई० में स्थापित की गयी थी और तबसे लेकर ब्यूरोके जन्मकाल पर्यन्त काम करती रही। परन्तु इस बीचमें खास कर रूस, जापान युद्धके बाद जब जापानमें यात्रियोंका यातायात बहुत बढ़ गया तबसे वेलकम सोसाइटी सबकी सेवा करनेमें असमर्थ-सी हो गयी थी। विशेषतः इसी लिए ब्यूरोकी स्थापनाकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

ब्यूरोकी स्थापनाके बाद वेलकम सोसाइटी अपने आप बन्द हो गयी।

जापान टूरिस्ट ब्यूरोका उद्देश्य था कि (१) विदेशी यात्रियोंको जापान आनेके लिए प्रोत्साहन देकर अन्तरराष्ट्रीय मैत्रीकी प्रतिष्ठा तथा जापानका हित किया जाय, (२) यात्राओंमें—देशके अन्दर खास तौर पर—सुविधाएं दी जायं और (३) यातायातके कामसे दिलचस्पी लेने वाले सार्वजनिक व्यवसायियोंमें घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया जाय। इसीलिए इन संस्थामें जो सदस्य हैं उनमें सरकारी रेलवे, प्रधान-प्रधान प्राइवेट रेलवे कम्पनियां, जहाज़ कम्पनियां, मोटर आदिकी कम्पनियां, चेम्बर आफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रिज (व्यावसायिक संस्थाएं), यात्रियोंकी संस्थाएं, होटल, थियेटर, बैंक तथा अन्य ऐसे ही फार्म आदि हैं। इन सबको यात्रियों से लाभ होता है, इसलिए ये सब उसमें शामिल हैं। इन्हींके चन्देसे ब्यूरोका सब काम चलता है। इस समय ब्यूरोके कोई १८० सदस्य हैं। जिस समय ब्यूरोका जन्म हुआ था उस समय उसके कार्यालयमें केवल ३ कर्मचारी थे, परन्तु अब तो उसमें ७०० से अधिक कर्मचारी काम करते हैं और उसकी लगभग १०० शाखाएं भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हैं। इसका प्रधान कार्यालय टोकियोंमें रेलवे स्टेशनकी इमारतमें ही है और इसके आफिस जापानके अतिरिक्त चीन, अमेरिका तथा फ्रांस आदिमें हैं।

टूरिस्ट ब्यूरो जापानके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी पुस्तक पुस्तिकाएं नक्शे और टाइमटेबल आदि प्रकाशित करता है, जिनमें

वहाँके दर्शनीय स्थानों, खेलों, रहन-सहन, कला, शिल्प आदिकी बातोंका उल्लेख रहता है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा कई पत्र पत्रिकाएं अलग निकलती हैं। साप्ताहिक आकर्षण, मासिक आकर्षण, आदि तथा कैसे अमुक स्थान देखा जाय आदि शीर्षकसे पुस्तिकाएं अलग प्रकाशित होती हैं। इनमें यात्रियोंके जानने योग्य बातोंका पूरा समावेश होता है। यह सब होते हुए भी यदि कोई यात्री व्यूरोसे किसी विषयकी जानकारी प्राप्त करना चाहे तो बिना फीसके वह जानकारी उसे लिख भेजता है। तथा यात्रियोंको—चाहे वे जापानी यात्री हों चाहे विदेशी–हर प्रकारकी सुविधाएं देनेका प्रयत्न करता है। उसके द्वारा प्रधान-प्रधान रेलवे कम्पनियों, जहाज़ कम्पनियों और हवाईजहाज़की कम्पनियोंके टिकट भी बेंचे जाते हैं। यह यात्रामें दुर्घटनाओं आदिके लिए तथा सामानके लिए बीमे आदिकी व्यवस्था भी करा देता है। इस प्रकार यात्राके लिए प्राय: जितनी वस्तुओंकी आवश्यकता है सबकी व्यवस्था टूरिस्ट व्यूरोकी ओरसे हो जाती है।

टूरिस्ट व्यूरोंमें व्यापारिकताका भाव प्रवेश न होने पावे इस बातका खास तौर पर ध्यान रखा जाता है। इसके सदस्योंमें जापानकी सरकारी रेलें सबसे अधिक महत्व-पूर्ण हैं। उन्हींके चन्देसे इसका सब खर्च चलाया जाता है। रेलवे कम्पनियों आदिसे उसे अन्यान्य प्रकारकी सहायताएं भी मिलती हैं। जैसे रेलवे टेलीफोनोंका उपयोग इनके कर्मचारी बिना किसी प्रकारकी फीस दिये हुए कर सकते हैं। इन सहायताओंसे व्यूरो के काममें अधिक तत्परता आ जाती है। इन्हीं सब कारणोंसे इस

संस्थाकी यात्रा सम्बन्धी अन्य विदेशीय संस्थाओंके साथ कोई तुलना नहीं। अमेरिकन एक्सप्रेस, टामसकूक आदि कम्पनियाँ यात्रियोंको सुविधाएं देती हैं, परन्तु उनका रूप व्यावसायिक है। अतः वे निष्पक्ष भावसे सबको एक समान सुविधा नहीं देतीं।

अपने इन गुणोंके कारण यह संस्था बड़ी लोकप्रिय हो रही है। अभी १२ मार्च सन् १९३७ ई०को इसकी सिलवर जुबली (रजत-जयंती) मनायी गयी थी जिसमें इसे अनेक देशोंसे शुभकामनाएं प्राप्त हुई थीं।

इस संस्थाके अतिरिक्त Board of Tourist Industry, Japan Travel Publicity Association, Japan tourist Club, Japan Hot Springs Association, Japan Hot Spring Club आदि अन्य संस्थाएं भी हैं। इनमेंसे प्रथम संस्था सरकारी संस्था है और यात्रा सम्बन्धी व्यवसायकी देखरेख करती है, दूसरी प्रकाशन सम्बन्धी कामकी देखभाल करती है और यह प्रथम संस्थाके मातहत रह कर काम करती है। तृतीय संस्था जापानमें यात्राकी भावना उत्पन्न करनेके लिए प्रयत्न करती है और यात्राके अवसर पर नैतिकताकी रक्षाके लिए आन्दोलन करती है। इस संस्थाकी ओरसे एक मासिक पत्र निकलता है, जिसका जापानमें अच्छा प्रचार है। चतुर्थ संस्था उष्ण जल कुण्डोंके उपयोग में सुविधा हो इस अभिप्रायसे प्रचार कार्य करती रहती है। जापानके कुण्डोंमें रसायनिक पदार्थ मिले हुए हैं जिनका प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता हैं। यह संस्था उन्हीं प्रभावोंको प्रकाशन कर जनताको उनसे अवगत करानेका उद्योग करती है और अन्तिम संस्थाका उद्देश्य

है कि उष्ण जल कुण्डोंकी यात्राओंका संगठन किया जाय। लोग छुट्टियों आदि के अवसरों पर उन स्थानोंमें जायं और वहांके प्राकृतिक द्रव्योंसे लाभ उठावें। इस प्रकार सब संस्थाएं अपना-अपना काम करती रहती हैं और इनका आपसमें भी सहयोग रहता है।

इन संस्थाओंके अतिरिक्त यात्रियोंका सामान आदि ढोनेके लिए तथा उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानोंकी अनेक प्रकारकी बातोंसे अवगत करानेके लिए पृथक्-पृथक् भागोंमें उनकी अलग-अलग संस्थाएं हैं। हम लोगोंका प्रधान निवासस्थान कोबे था। इसलिए हम वहांकी दो संस्थाओंके सम्पर्कमें और भी आये। इनमें से एक है कोबे एक्सप्रेस कम्पनी जो सामान आदि ले जानेमें सहायता देती है और दूसरी अभी हाल ही की स्थापित संस्था है, Kobe International Freindship Society जो कोबे की विशेष-विशेष बातोंसे यात्रियोंको अवगत कराती है। इस प्रकारकी संस्थाएं अन्यान्य नगरोंमें भी अवश्य होंगी, परन्तु हमें उनके सम्पर्कमें आनेका अवसर नहीं मिला। इसलिए हम उनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते।

जापानकी इन संस्थाओंका मायाजाल इस बात पर यथेष्ट प्रकाश डालेगा कि जापानी लोग विदेशी यात्रियोंको अपने यहां आनेके लिए किस प्रकार आकृष्ट करते हैं। इन सब प्रयत्नोंका फल भी यह हुआ है कि जहां सन् १६१२ में १५६६४ विदेशी यात्री जापान गये थे, वहां १६३६ में इनकी संख्या ४२५६८ हो गयी थी और यह तो निर्विवाद है कि जितनी अधिक संख्यामें विदेशी यात्री जापान जायंगे उतना ही अधिक लाभ-विशेषतया आर्थिक लाभ—जापानको होगा।

प्रदर्शिनियां और वैज्ञानिक चमत्कार

जापानमें प्रदर्शिनियाँ आदि अक्सर हुआ करती हैं। शायद ही कोई ऐसा महीना जाता होगा जिस महीने कहीं न कहीं कोई प्रदर्शिनी न हो। इन प्रदर्शिनियोंमें अपने देशकी भिन्न-भिन्न पैदावारका प्रदर्शन किया जाता है। जिस समय हम लोग वहाँ पहुंचे थे उस समय भी कई प्रदर्शिनियाँ हो रही थीं जिनमें सबसे प्रसिद्ध तो नागोयाकी पान पैसिफिक पीस एक्जीबिशन (Pan pacific peace Exhibition) था, परन्तु ओसाकाकी औद्योगिक प्रदर्शिनी भी बड़े महत्वकी थी और टोकियोंमें भी एक साधारण प्रदर्शिनी

हुई थी। इनके अतिरिक्त अन्य प्रदर्शिनियां भी हो रही थीं, परन्तु उन सबोंमें जानेका हम लोगोंको अवकाश नहीं मिला।

हम लोग कोबे २८ अप्रैलको पहुंचे थे और ओसाकाकी औद्योगिक प्रदर्शिनी ३० अप्रैलको ही बन्द हो जाने वाली थी। इस लिए प्रदर्शिनीके संचालकोंने ३० अप्रैलको ही हम लोगोंको निमंत्रित किया था। हमारे दलके सब लोग तो न जा सके थे, परन्तु मुझे जानेका प्रसंग मिल गया था। उस प्रदर्शिनीमें केवल मशीनरीका प्रदर्शन किया गया था। भिन्न-भिन्न प्रकारकी जापानमें ही बनी हुई अनेक मशीनें रखी थीं, जिनके देखनेसे पता लगता था कि मशीन बनानेके काममें भी जापानी कितने अग्रसर हो रहे हैं। मशीनरी का और अधिक प्रदर्शन था, नागोया एक्जीविशनमें। इसमें जितने खीमें थे उनमें सबसे बड़ा खीमा था वह जिसमें मशीनरियां बनी हुई रखी थीं। उसमें ऐसी-ऐसी भीमकाय मशीनें रखी हुई थीं तथा छोटा बड़ा हर प्रकारका कार्य करनेवाले इतने यंत्र थे, कि यदि सबको ध्यानसे देखनेका प्रयत्न किया जाय तो केवल उस खीमेके अवलोकनके लिए ही कमसे कम एक सप्ताहकी आवश्यकता पड़ जाती। जहाजकी मशीनें, कारखानोंकी मशीनें, छापाखानेकी मशीनें आदि एकसे एक अच्छी मशीनें थीं। हम लोगोंने एक धारणा बना रखी है कि जापानी मशीनें अच्छी और टिकाऊ नहीं होतीं, परन्तु वहाँकी मशीनरी देखकर हमें बरबस अपनी इस धारणाको बदलना पड़ा। इतनी मज़-बूत और इतनी अच्छी मशीनें थी कि संसारके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मेकरों की मशीनोंसे सफलता पूर्वक तुलना कर सकती थीं। प्रिंटिंग मशीनें

तो ऐसी ऐसी थी जैसी साधारणतः दिखलायी भी नहीं पड़ती। जापानी वैसे तो बड़े बुद्धिमान नहीं होते, परन्तु मशीनें बनाने आदिमें तथा मशीनके ढंगका और काम करने आदिमें ने बड़े प्रवीण होते हैं। तरह-तरहके खिलौने आदि जापानमें जो इतने अधिक बनते हैं, उसका कारण भी उनका यह मकेनिकल दिमाग ही है। जो हो, मशीनरी उन्होंने एकसे एक आला नम्बरकी बनायी है। यह बात उनकी ओसाकाकी प्रदर्शिनी और नागोयाकी प्रदर्शिनी—दोनों स्थानोंसे व्यक्त होती थी।

नागोयाकी प्रदर्शिनी तो संसार विख्यात प्रदर्शिनी थी और उसका विस्तार भी बहुत अधिक था। उस प्रदर्शिनीमें १ मईको जब इंडिया डे मनाया गया था, तब कुछ अंश देखनेका मौका हमें मिला था। उसके कई दिन बाद प्रदर्शिनी देखनेके लिए ही खास तौरपर हम लोग गये और उस मौकेपर उसे देखनेका प्रयत्न किया। फिर, टोकियोंसे लौटते समय, हमारे यात्री दलकी ओरसे दी गयी पार्टीके सिलसिलेमें, हममेंसे कुछ लोगोंको, जिनमें मैं भी था, नागोया जानेकी आवश्यकता पड़ी और इस बार फिर प्रदर्शिनी देखनेका अवसर मिला। इस प्रकार कई बार उसे देखा। फिर भी वह इतनी विशाल प्रदर्शिनी थी कि यह नहीं कहा जा सकता कि सारी प्रदर्शिनी ध्यानपूर्वक देख ली।

नागोया प्रदर्शिनीमें सब देशोंकी प्रदर्शिनीय वस्तुओंका संग्रह करनेकी कोशिश या कमसे कम घोषणाकी गयी थी, परन्तु यदि सच पूछा जाय तो दूसरे देशोंकी जो वस्तुएँ थीं, वे तो तमाशा ही मात्र

थीं, जापानकी बनी हुई चीजोंसे ही सारा प्रदर्शिनी-स्थान भरा हुआ था। इससे यद्यपि अन्यान्य देशोंकी स्थितिका कोई ज्ञान न हो पाता था तथापि जापानकी स्थितिका विस्तृत ज्ञान करानेकी क्षमता इस प्रदर्शिनीमें थी। प्रदर्शिनी बाहरसे तड़क भड़कमें अधिक आकर्षक नहीं थी। जिन लोगोंने इलाहाबादकी बड़ी प्रदर्शिनी देखी थी उनका कहना था कि वह प्रदर्शिनी नागोया प्रदर्शिनीकी अपेक्षा शान शौकतमें अधिक अच्छी थी। फिर भी यह काफी बड़ी और अच्छी प्रदर्शिनी थी, इसमें शक नहीं।

प्रदर्शिनीकी व्यवस्था, प्रदर्शनकी वस्तुएँ आदिके सम्बन्धमें अनेक बातें हैं जो लिखी जा सकती हैं, परन्तु उनका उल्लेख अनावश्यक-सा प्रतीत होता है, वे केवल विस्तार बढ़ायँगी। इसलिए उनपर अधिक न लिखकर प्रवंधके सम्बन्धमें केवल इतना लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि यद्यपि प्रबन्ध अच्छा था, तथापि जापानी भाषा न जाननेवालोंको बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। नाम तो प्रदर्शिनीका रखा गया था, इतना व्यापक कि जिससे प्रशांत महासागरके सब राष्ट्र सम्मिलित हो सकते थे और कहनेके लिए सब देशोंके लिए अलग-अलग खीमें भी बने थे। ऐसी दशामें होना यह चाहिए था, कि जापानी भाषाके अतिरिक्त अंग्रेजीमें भी उन विषयोंका बोध करानेवाली पुस्तिकाएँ वहां रहतीं, साथ ही ऐसे लोग वहाँ रखे जाते जो अंग्रेजीमें जिज्ञासु दर्शकोंकी बातोंको समझा सकते, परन्तु यह व्यवस्था न थी। सब जगह जापानी भाषाकी पुस्तिकाएँ थीं, वस्तुओंके विवरण भी जापानीमें लिखे हुए थे और

वस्तुओंके प्रदर्शनके लिए रखे गये कर्मचारी, जिनमें प्रायः सब लड़कियाँ थी, ऐसे थे जिन्हें अंग्रेजी बोलना न आता था। इससे जापान के अतिरिक्त बाहरसे आनेवाले दर्शकोंका न तो मनोरंजन होता था और न ज्ञानवर्धन। फिर भी साथमें गाइडोंकी सहायतासे और कहीं कहीं अनुमानसे ही काम चला लिया गया था।

नागोया प्रदर्शिनीमें वैज्ञानिक चमत्कारकी भी कई बातें देखनेको मिलीं। वैज्ञानिक चमत्कारकी बातें समाचार पत्रोंमें हम लोग रोज पढ़ा करते हैं, उनके देखनेकी उत्सुकता भी थी। सम्भव है, कि यदि यह प्रदर्शिनी न होती तो सब बातें देखनेको न मिलतीं, परन्तु प्रदर्शिनीके कारण अवसर मिला। इनमेंसे अधिकांश वस्तुएँ रेडियो के खीमेमें मिली थीं। उस खीमेमें प्रवेश करते ही दरवाजेपर लकड़ीका एक पुतला मिलता था जो स्वतंत्र रूपसे खड़ा था। उसके हाथ, पांव, मुँह, आँखें आदि हिल सकती थीं। उस पुतलेसे कोई प्रश्न किया जाय वह उसका उत्तर दे सकता था। पहिले तो यही हम लोगोंके कौतूहलकी वस्तु हुई। हमने भी प्रश्न किये और विनोदपूर्ण उचित उत्तर पाये। आश्चर्य सा हुआ। परन्तु थोड़ी देरमें बात समझमें आ गयी। असलमें उस पुतलेमें रेडियोके रिसीवर और ट्रांसमिटर दोनों मशीनें लगी हुई थीं। यहाँसे जो बात कही जाती थी वह बेतारके तारसे ट्रांसमिटिंग मशीन द्वारा एक खास कर्मचारीके पास जो अलग अपने दफ्तरमें बैठा था पहुंच जाती थी वहाँसे वह उत्तर ब्राडकास्ट करता था और इस पुतलेकी रिसीवर मशीन द्वारा यहाँ आ जाता था और लोगोंको उत्तर मिल जाता था। फिर भी

यह था कौतूहलपूर्ण दृश्य और दर्शकोंका इससे बड़ा मनोरंजन होता था।

प्रदर्शिनीमें टेलीविजन भी देखनेको मिला। टेलीविज़न वह टेली-फोन है जिसमें बात करनेपर कानमें बातें भी सुन पड़ती हैं और सामने आँखोंसे बात करनेवालेकी तस्वीर भी देखी जा सकती है। इसमें टेलीफोनके सामने सिनेमाओंमें लगे हुए पर्देकी तरहका पर्दा रहता है। उसका बीचका भाग तो बहुत छोटा और सफेद होता है और आस पासका काला। सफेद भागपर ही बात करनेवाले व्यक्तिकी तस्वीर दिखलायी पड़ती है। जब तक टेलीफोन रखा रहता है, तब तक कपड़ा खाली पड़ा रहता है, परन्तु टेलीफोन उठा-कर दूसरी ओरसे आदमीको बुलानेपर जब वह आदमी उस ओर आ जाता है, तब तुरन्त उसकी तस्वीर इधरवाले परदेपर दिखलायी पड़ने लगती है। तस्वीर बिलकुल सिनेमाओंमें दिखायी जानेवाली तस्वीरोंके ढंगकी होती है। स्थिर नहीं रहती; झिलमिलाया करती है, फिर भी स्पष्ट काफी होती है।

एक स्थानपर जापानी भाषामें लिखी हुई एक चिट्ठी रखी थी और उसके पास ही एक बिजलीकी घंटी। यदि कोई उस चिट्ठीको पढ़े तो यदि वह केवल आंखोंके सहारे पढ़े तब तो नहीं परन्तु यदि एक एक सतरकी ओर उंगलीका इशारा करते हुए पढ़े तो तुरन्त घंटी बजने लगती थी। उंगली उठाकर दायें बांये जरा भी हिला दी गयी, कागज छूनेकी ज़रूरत नहीं है केवल हवामें उंगुली दिखा दी गयी कि तुरन्त घंटी बजने लगती थी। इसी प्रकार एक बिजलीकी

कांच की नलीसी, वैसी ही जैसी विजलीके अक्षर आदि लिखनेके काममें लायी जाती है, थी। इसके पास खड़ी हुई एक लड़की अपनी हथेलियोंको आगे पीछे और दायें बायें हवामें धक्के देकर घुमा रही थी। उसकी गतिके अनुसार ही उस नलीसे आवाज निकलती थी। जब हथेली नलीके अधिक नजदीक रहती तब अधिक जब दूर रहती तब कम, जब एक हथेलीके आघातसे उत्पन्न होनेवाली हवाकी लहरोंको दूसरे हाथकी हथेलीकी लहरोंसे रोक लेती तब और ही ढङ्गकी आवाज निकलती थी। इस प्रकार हथेलियोंके हिलाने डुलानेसे ही उस नलीसे स्वर फूटते थे और ऐसा प्रतीत होता था मानों कोई वंशी बजा रहा हो।

एक स्थानपर टार्चकी तरहकी रोशनी लगी हुई थी। रोशनीके ठीक सामने घड़ीनुमा एक चीज लगी हुई थी। उसमें घड़ीकी भांति ही एक सुई थी। रोशनी और इस घड़ीके बीचमें, परन्तु उस पंक्तिमें नहीं उससे काफी पीछेकी ओर एक शेर बना दिया गया था जिसका सिर ऐसा था जो हिल सकता था। आप जाकर वैसे ही उसे देखें तो सुई ज्योंकी त्यों स्थिर और उसी प्रकार शेरका सिर भी स्थिर रहेगा। परन्तु यदि आप हाथेलीकी आड़ देकर रोशनीको उस घड़ी पर पड़नेसे रोक दीजिए तो तुरन्त घड़ीकी सुई नीचे गिर जायगी और शेरका सिर हिलने लगेगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि उनमें कहीं भी तार आदिका कोई जोड़ न था।

इन दोनों प्रदर्शनोंमें एकमें हवाकी गतिकी और दूसरेमें रोशनीकी करामात दिखलायी गयी थी।

इनके अतिरिक्त एक बात और देखनेको मिली। वह थी तारोंके प्राप्त करनेकी मशीन। एक मशीन थी। उसमें कागजका एक लम्बा फीता, जो रिबनकी भांति लपेटा हुआ था, लगा हुआ था। तारके गर-गटकी आवाज आते ही उसीके अनुसार उस कागजमें अपने आप छेदसे हो जाते थे। कागजमें ज्यों ज्यों छेद होते जाते थे त्यों त्यों वह निकलता जाता था। फिर वही कागज अपने आप एक दूसरी मशीनमें लग जाता था। वहाँ इन छेदोंके अनुसार एक दूसरे कागजके पन्नेपर अंग्रेजीके अक्षर अपने आप टाइप हो जाते थे। इस प्रकार बिना किसी कर्मचारीके रहे हुए भी तारोंका पूरा मजमून छपकर तैयार हो जाता था। इस प्रकारकी मशीनें जापानके तार घरोंमें अमतौर पर लगी हुई हैं। अपने आप (Automatice) काम करनेवाली मशीनोंके निर्माणकी ओर जापानियोंका बहुत ध्यान है और इस प्रकारके करघे तो इनके प्रख्यात हैं ही, इन्होंने और भी अनेक मशीनें ऐसी ही तैयार की हैं।

तारका तरीका वहाँ एक और है जो खास-खास स्थानोंमें प्रचलित है। इसके अनुसार जिसके हस्ताक्षरमें तार लिखा जाता है उसीमें आकर वह छप जाता है। वास्तवमें यह टेलेफोटोग्राफीका काम है। इस फोटोग्राफीमें सैकड़ों मील दूर लिया गया फोटो बिना तारके तारसे जिस स्थानपर चाहे उतर सकता है। इन मशीनोंका प्रयोग वहाँके समाचार पत्रोंमें अधिक होता है। देशभरमें कहीं भी समाचार पत्रोंके सम्वाददाता फोटो ले रहे हों एक मिनटके अन्दर उनके फोटोकी प्रतिलिपि इन मशीनोंके प्रभावसे समाचारपत्रोंके कार्यालयोंमें

पहुंच जाती है। इसी परिपाटीसे उक्त तार भी मिलते हैं। वास्तवमें हस्तलिखित तारकी वे फोटो हैं जो यहाँ पानेवालेको मिलते हैं। परन्तु इस प्रणालीसे धोखेका कोई भय नहीं रहता। हस्ताक्षरोंसे यह जाना जा सकता है कि तार असली है या नकली।

टोकियोकी प्रदर्शनीकी कोई विशेष बात उल्लेखनीय नहीं है। परन्तु एक बात सब प्रदर्शिनियोंमें (ओसाकावालीका ठीक स्मरण नहीं है) देखनेको मिली। और वह है राष्ट्ररक्षाके उपायोंका प्रदर्शन (National Defena Pavilion) यदि युद्ध छिड़ जाय तो राष्ट्रकी रक्षा किस प्रकारकी जाय यही इस प्रदर्शनका उद्देश्य है। इस प्रदर्शनमें लड़ायीकी प्रायः सब तैयारियोंका वर्णन रहता है। हवाई हमले, जलमार्गके हमले, स्थलके हमले आदि कैसे होते हैं इन सबका प्रदर्शन, तरह-तरहके औजारोंके प्रयोगका प्रदर्शन आदि अनेक चीजें रहती हैं। इनके सजानेका ढंग भी बड़ा आकर्षक होता है।

प्रदर्शिनियोंके प्रचारसे शिक्षा प्रचारमें बड़ी सहायता मिलती है।

मनोरंजनके साधन

प्रत्येक सभ्य समाजके मनोरञ्जनके लिए उपयुक्त व्यवस्थाका होना अत्यन्त आवश्यक होता है। दिनभरके कठिन परिश्रमके बाद, अथवा परिस्थितियोंकी प्रतिकूलतामें अपने मनको बहलानेके लिए मनुष्य कोई न कोई ऐसा स्थान ढूंढ़ता है जहाँ जाकर वह थोड़ी देरके लिए अपना दुःख भूल जाय और कुछ ऐसे वातावरणमें पहुंचे जिससे उसे प्रसन्नता, और शान्ति मिले। इसीलिए मनोरञ्जनके साधनोंका जन्म हुआ है।

जब वैज्ञानिक आविष्कार न हुए थे, तब मनोरञ्जनके लिए

सुन्दर-सुन्दर निर्झर, और वन उपवनोंका प्रयोग किया जाता था। दुःखके अवसरपर अथवा संतप्त होकर मनुष्य प्रकृति देवीकी गोदमें जानेकी अपेक्षा करता था और एकान्तमें प्रकृतिके इस सौंदर्यका रसास्वादन कर अपने दुःख और शोकको भुलाता था। फिर ज्यों-ज्यों नवीन सभ्यताका प्रचार हुआ और विज्ञानके आविष्कार हुए त्यों-त्यों मनोरञ्जनके नवीन साधन उपलब्ध हुए। इसी प्रकार गाना बजाना, रागरङ्ग, नाटक सिनेमा, आदिका प्रादुर्भाव हुआ।

जापानमें, जैसा कि प्रायः प्रत्येक समुन्नत देशमें है, ये सभी साधन उपलब्ध हैं। खेल कूद आदि भी मनोरञ्जनके साधन ही हैं। परन्तु खेल कूद दुःखके समय इसलिए मनोरंजन करनेमें समर्थ नहीं होते कि उनमें स्वयं दुःखित मनुष्यको भाग लेना पड़ता है और अपने मनकी उस विपरीत, अवस्थामें वह स्वतन्त्रता और उत्साह पूर्वक भाग ले नहीं पाता। इसलिये और इसलिए भी कि मनोरञ्जक होते हुए भी उनका प्रयोग स्वास्थ्य रक्षाकी दृष्टिसे किया जाता है; वे मनोरञ्जनकी वस्तुओंमें गिने नहीं जा सकते। वे तो व्यायामकी श्रेणीकी चीजें हैं। हां, घरमें बैठे बैठे ताश आदिके खेल अवश्य मनोरञ्जनके साधन माने जा सकते हैं, परन्तु उस प्रकारके खेल जापानमें बहुत कम—नहीं के बराबर हैं।

प्रकृति निरीक्षण मनोरञ्जनके लिए अब भी जापानमें होता है। जापानी प्रकृति प्रेमी हैं और वहांपर प्रकृतिका वैभव भी खूब है। इसलिए वे मनोरञ्जनके साधन भी बने हुए हैं। फिर भी नवीन वैज्ञानिक युगमें ये प्राचीन साधन उतने अधिक पसन्द नहीं आते

और दूसरे-दूसरे साधन प्रचारमें आते हैं, इसलिए अन्यान्य साधनोंका प्रयोग ही किया जाता है। ऐसे साधनोंमें नाटक और सिनेमा सर्वप्रधान हैं।

संसारमें जबसे सिनेमाओंका अविर्भाव हुआ है, तबसे नाटक लुप्तप्राय हो गये हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सिनेमाओंमें घटना विशेषका चित्रण जितनी चमत्कार पूर्ण रीतिसे किया जा सकता है उसका चमत्कार प्रत्यक्ष दिखाया नहीं जा सकता। दूसरे सिनेमा उतना समय नहीं लेते जितना नाटक लेते हैं और अब टाकी के जमानेमें तो यह बात भी नहीं रही कि वार्तालापका आनन्द या गाने बजानेका आनन्द न आता हो। इसप्रकार टाकीके कारण नाटकका सब आनन्द तो मिलता ही है साथ ही सिनेमाकी विशेषताएं भी दृष्टिगत होती हैं। इसीलिये इस युगमें नाटकोंका लोप हो चला है। परन्तु जापान इसका अपवाद है। वहांपर सिनेमाओंके कारण नाटकशालाएं बन्द हुई हों ऐसे उदाहरण नहीं मिलते। अपनी प्राचीनकलाकी रक्षाकी ओर जापानियोंका विशेष ध्यान रहता है। इसीका यह फल है कि वहाँपर नाटक आज भी मौजूद हैं। प्रत्येक नगरमें नाटक शालाएं हैं और काफी अच्छी आमदनीसे चलती हैं। टोकियोंकी काबुकी नाटकशाला और टकाराजुकाकी नाटकशालाएं तो बड़ी प्रसिद्ध नाटकशालाएं हैं।

जापानकी नाटक शालाएं बहुत विशाल हैं और उनमें रोशनी सीनसिनरी आदिकी नवीन वैज्ञानिक ढङ्गसे व्यवस्था की गयी है। रोशनी आदि डालकर तथा स्टेजको सजाकर वे इतने सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं जो यहां देखनेको नहीं मिलते। टकाराजुकाका

अपेरा हाउस (नाटकशाला) तो और भी अधिक विशाल और समलंकृत हैं, उसकी सीनरी ही एक ऐसी मनोमोहक चीज है कि यदि और कुछ नहीं हो तो वह भी मनुष्यका मन मुग्ध कर सकती है। वहांके स्टेज बहुत लम्बे चौड़े रखे जाते हैं। नाटकके बीचमें पात्र विशेषके आनेजानेके लिये अपने यहां तो स्टेजके ऊपरहीसे रास्ता होता है परन्तु जापानका ढङ्ग और है। अधिकांशमें तो स्टेजकी दोनों ओर रास्ते बने होते हैं। जो पासकी कोठरीमें जाते हैं और बीचमें पात्रोंका जो आवागमन होता है वह इन्हीं रास्तोंसे होता है। परन्तु काबुकी थियेटर हालमें तो दर्शकोंके बैठनेके स्थानसे बीचमें होकर रास्ते बनाये गये हैं और स्टेजके ठीक सामनेकी ओर कोठरियां हैं जहां नाटकके पात्र-विशेष जाते हैं। दर्शकोंके बीचसे निकलते हुए ये पात्र दर्शकोंका और भी अधिक मनोरञ्जन करते हैं। परन्तु हम लोगोंको, जो इस प्रकारके दृश्य देखनेके अभ्यासी नहीं है, वह नयी सी और कुछ अटपटी सी बात मालूम होती थी।

इनके नाटकोंकी एक खास विशेषता और है। वह यह कि इनमें नाटककी कोई एक ही कहानी आदिसे अन्त तक नहीं दिखलायी जाती। प्रायः प्रत्येक सीनके लिये एक अलग कहानी होती है। वह सीन उसी एक कहानीके लिये सजाया जाता है और दूसरे सीनमें वह कहानी खतम हो जाती है और नयी कहानी आती है। कहीं ऐसा भी होता कि कोई बड़ी कहानी दो तीन सीन तक चल जाय। बस इससे अधिक चलती ही नहीं। इस प्रकार एक दिनमें आदमी कई अभिनय देख लेता है।

वहाँके नाटकोंमें पात्रोंके द्वारा गायन तो मनों गाये ही नहीं जाते। गाने गाते हैं वे लोग जो स्टेजके दोनों किनारों पर बैठकर बाजा आदि बजाया करते हैं। (वहाँ पर बाजा बजाने वाले अपने यहाँकी भाँति स्टेजके बीचमें नहीं बैठते, बल्कि दोनों किनारों पर बैठते हैं और उनकी संख्या भी काफी अधिक होती है।) सम्भाषण पात्रोंमें परस्पर होता है। परन्तु सम्भाषणमें स्वाभाविकता नहीं होती। आमतौर पर जापानी जिस ढंगसे बोलते हैं नाकटमें वे उस ढङ्गसे बातचीत नहीं करते। उनके सम्भाषणमें बड़ी कृत्रिमता, जिसे कलाके नामसे पुकारा जाता है, होती है। एक-एक शब्दको इतना रेढ़-रेढ़ कर बोलते हैं कि, बिलकुल अस्वाभाविक हो जाता है। इस सम्बन्धमें काबुकीकी अपेक्षा टकाराजुका अधिक पसन्द आता है।

सिनेमा जापानमें हैं परन्तु उनकी संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी अपने यहाँ। प्रत्येक शहरमें जिस प्रकार मकड़ीके जालकी भाँति हमारे यहाँ सिनेमा घर जगह-जगह पर बने हुए हैं उस प्रकार वहां नहीं। शहरके एक खास हिस्सेमें सिनेमा घर होते हैं और जिन्हें देखना होता है वे उसी हिस्सेमें चले जाते हैं और देख आते हैं। उन स्थानोंमें भी इनकी संख्या अधिक नहीं होती। उनमें सीन सीनरी तथा दृश्योंका निर्माण आदि यूरोपियन या अमेरिकन ढङ्गसे होता है। और उनका कथानक जापानी नाटकोंकी भांति प्रत्येक दृश्यमें नहीं बदलता। सिनेमा वगैरह बहुत कुछ अपने यहांके से ही होते हैं।

जपानमें सिनेमा और नाटक आदिमें भी राष्ट्र सेवाका दृष्टिकोण भुलाया नहीं जाता। मनोरञ्जन उनका प्रधान उद्देश्य है परन्तु साथ ही साथ वे राष्ट्रमें जिस भावनाका प्रचार करना चाहते हैं उस भावनाके प्रचारका साधन भी उनको बना लेते हैं। उदाहरणार्थ आज कल जापानी सैनिक भावनाका प्रचार करना चाहते हैं। इसीलिए स्कूलों कालेजों आदिमें सैनिक शिक्षाका प्रचार है तथा बाहर भी प्रत्येक युवकको अनिवार्यत: सैनिक शिक्षा देनेका नियम है। उसके अतिरिक्त सिनेमा और नाटकों आदिमें भी वीरभाव प्रधान कथानकोंका ही चित्रण किया जाता है। ऐसे सीन नाटकोंमें भरे पड़े हैं जिनमें कहीं कोई माता अपने पुत्रको कहीं कोई पत्नी अपने पतिको लड़ाईके लिए विदाई दे रही है, कहीं लड़ाईसे लौटे हुए वीरका जनता स्वागत कर रही है, कहीं लड़ाईमें लोग प्रसन्नतापूर्वक भाग लेते हुए अपना शरीर त्याग रहे हैं, आदि आदि।

नाटक सिनेमा आदिके बाद मनोरंजनके साधनोंमें नाच बहुत प्रचलित हैं। जापानियोंकी नृत्यकला संसारकी समुन्नत नृत्य-कलाओंमें श्रेष्ठतर समझी जाती है। नृत्य वहां हुआ ही करते हैं। गेशाओंके नृत्य तो रोज देखे जते हैं। वे नृत्य सचमुच बड़े मनोरम होते हैं।

भड़कीली और रंगबिरंगी पोशाक पहने और सुन्दर प्रसंगानुकूल सीन सिनरी आदिसे सजे हुए स्टेज पर जिस समय नर्तकियां आती हैं इतना मनोरंजक वह दृश्य लगता है जिसका ठिकाना नहीं। उस पर भी चेरी डांस आदि प्रसिद्ध नृत्योंके अवसर पर प्रदर्शन

और भी आकर्षक हो जाता है। जापानियोंका नृत्य भारतीय ओरयण्टल डान्ससे बहुत कुछ मिलता जुलता है। भारतीय ओरियंटल डाँसमें हम छोटा कथानकसा नृत्यके द्वारा व्यक्त करते हैं। भावभंगी और नृत्याभिनय द्वारा हम समस्त कथा कह जाते हैं। ठीक यही बात जापानी नृत्यमें भी हैं। किसी कथाकी कल्पना करके ही वे नृत्य करते हैं। परन्तु हमारे यहांके नृत्य और वहांके नृत्यमें भेद हैं। वह यह कि वहां भावोंका प्रदर्शन या कथानकका विकास बहुत धीरे-धीरे दिखाया जाता है और हमारे यहांके नृत्यमें तेजीके साथ। थोड़ेमें कहें तो उनके नृत्यमें मंथरता और हमारेमें वेग अधिक होता है। यही दोनोंका प्रधान अन्तर है। दूसरा अंतर यह भी है कि, हमारे यहांका नृत्य एकदम मूक होकर किया जाता है। परन्तु वहाँ यह अनिवार्य नहीं है। यद्यपि प्रायः मूक नृत्य ही होते हैं परन्तु जहांपर कथानकके स्पष्टीकरणके लिए नृत्यके अभिनय पर्याप्त नहीं समझे जाते वहां सम्भाषण सा करा दिया जाता है। परन्तु यह सम्भाषण होता है बिलकुल संक्षिप्त। इसके अतिरिक्त बाजा बजानेवाले जो अपने यहाँ मुंहसे एक शब्द भी नहीं निकाल सकते वहां बीच बीचमें गाते भी रहते हैं। एक बात और। अपने यहां यद्यपि सामूहिक ढंगके नृत्योंमें व्यक्तियोंका एक समूह काम करता है तथापि अकेले ही व्यक्तिके नाचनेकी भी व्यवस्था है। यह बात जापानमें नहीं है। वहांपर जबतक नर्तकियोंका एक समुदाय न होगा तब तक नृत्य नहीं हो सकता। वहां पर पुरुष नर्तकका अभाव है। नाचनेवाली

रूपसी स्त्रियां ही मिलेंगी जब कि हमारे यहां पुरुष नर्तक भी हैं।

सजीव मनुष्योंके नृत्यके अतिरिक्त वहां पर कठपुतलियोंका नाच भी होता है। कठपुतली कहनेसे हम जो कल्पना अपने यहांके कठपुतलीके नाच की करते हैं, वहाँका नाच उससे बहुत भिन्न है। उन लोगोंके पुतलीके उठानेमें उनके द्वारा भाव प्रदर्शित करवानेमें इतनी सफाई है कि देखते ही बनती है। जीवित मनुष्यके बराबर ही वे उन निर्जीव पुतलियोंसे भावाभिव्यञ्जन करा सकते हैं। वह नृत्य भी वहांके मनोरंजनका एक साधन है, यद्यपि होता है वह बहुत कम।

गानेका प्रचार भी है परन्तु उतना अधिक नहीं। वहाँके गानोंमें न अंग्रेजी ढंग है और न भारतीयता ही। दोनोंके सम्मि-श्रणसे उनके राग बने हों यह भी नहीं है। उनका ढंग ही विचित्र है। यद्यपि उसमें बीच बीचमें भारतीय ढंगकी छाया अवश्य मिलती है। ये गाने या तो नाटकों आदिके साथ या यों ही अलगसे गाये जाते हैं। रेडियोमें, ग्रामोफोनके रेकार्डों आदिमें भी वे गाये जाते हैं और उनसे ही लोगोंका मनोरंजन होता है।

रेडियो वहाँपर प्रत्येक घरमें है। उसके द्वारा मनोरंजन और शिक्षा दोनोंका प्रचार किया जाता है। उसके द्वारा गाने आदि तो सुनाये ही जाते हैं, अच्छे विषयों पर भाषण कराये जाते हैं, सैनिक शिक्षाके लिए कवायद करायी जाती है, दुनियां भरके समाचार दिये जाते हैं और बाजार भाव आदि भी दिये जाते हैं। इस प्रकार

मनोरंजनके इस साधनको भी देश और समाजके हितके लिये अधिकसे अधिक उपयोगी बनानेका प्रयत्न किया जाता है।

इनके अतिरिक्त कुछ साधन और हैं जिनसे कुत्सित वृत्तिवाले मनुष्योंका मनोरंजन होता है। परन्तु वे साधन मनोरंजन करनेके नहीं मनुष्यको पतनके गड्ढे में गिरानेवाले हैं। अतः यहां उनके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है।

कुछ विचित्र और शिक्षाप्रद बातें

जापानकी कुछ ऐसी बातोंका उल्लेख इन पंक्तियोंमें किया जायगा जिनमें से कुछ विचित्र हैं और कुछ शिक्षाप्रद हैं।

सबसे पहिले जापान शब्द ही को लीजिए। जापान शब्द जापानी भाषामें व्यवहृत नहीं होता। यह तो अंग्रेजी भाषामें ही प्रयुक्त होता है। जापानी लोग जापानको निपन या निपोन कहते हैं। इन तीनों शब्दोंके अर्थमें कोई भेद नहीं है। एक ही शब्दके भिन्न-भिन्न रूप मात्र मालूम होते हैं। इन तीनों शब्दोंका उच्चारण प्रायः एक-सा है। जापानका उच्चारण अंग्रेजीमें 'जपान' होता है और निपन 'निपोन' की तरह उच्चरित होता है। इस प्रकार जपान,

निपोन और निहोनको एक साथ रख कर यदि विचार किया जायगा तो मालूम होगा कि इन तीनोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

जापानमें बिजलीका खूब प्रचार है। पहाड़ी स्थान होनेके कारण वहाँपर बिजली पैदा करनेकी सुविधाएँ हैं और उन सुविधाओंसे लाभ उठाकर जापानियोंने बिजलीका उत्पादन और उसका व्यय भी खूब किया हैं। बिजलीके तार देहातों और शहरोंमें सर्वत्र फैले हुए हैं। परन्तु इन तारोंको सँभालनेके लिए जो खम्भे बने हुए हैं वे सर्वत्र लकड़ीके हैं। देहातोंमें तो लकड़ीके ये खम्भे किसी प्रकार खप भी जाते हैं परन्तु शहरोंमें ये बड़े भद्देसे मालूम होते हैं। फिर भी ये है। पूछनेपर इसके दो कारण मालूम हुए। एक तो यह कि जापानमें लकड़ी खूब होती है उसका उपयोग हो जाता है और दूसरे यह कि लकड़ीके खम्भे होनेसे बिजलीके करणटकी रोक हो सकती है। ये बातें यद्यपि दोनों ठीक है तथापि उस प्रकारके खम्भोंके देखनेका अभ्यास न होनेके कारण वे हम लोगोंको विचित्रसे ही लगे।

सामान आदि ढोनेके लिए वैसे तो मोटर ट्रक, मोटर साइकल, साइकल आदि गाड़ियोंका इस्तेमाल किया जाता है परन्तु कुछ विचित्र प्रकारकी गाड़ियां भी इस कामके लिए प्रयोगमें आती हैं। ये गाड़ियां काठकी बनी हुई आकारमें छोटी-सी होती हैं। इनमें बैल घोड़े नहीं जुतते बल्कि कुत्ते जोते जाते हैं। कुत्तोंके बदन पर करीब-करीब घोड़ोंकी-सी जीन आदि कस दी जाती है और वे गाड़ीमें जोत दिये जाते हैं। वे उसे खींचते रहते हैं। परन्तु उनके साथ एक आदमी रहता है जो गाड़ीका जुआ ऊपरको उठाये रहता है और अवश्यकता
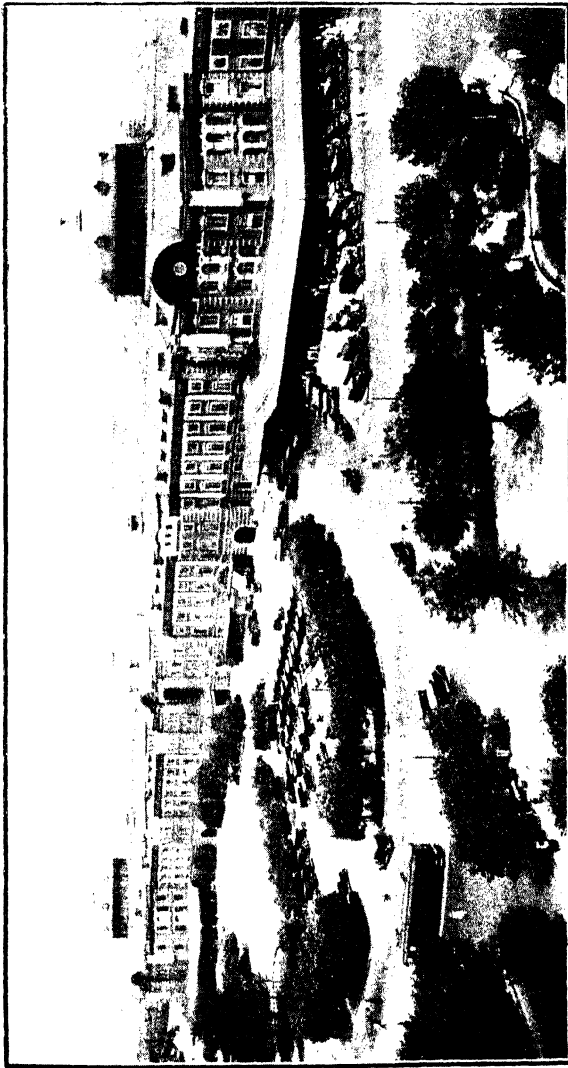
टोकियोका स्टेशन
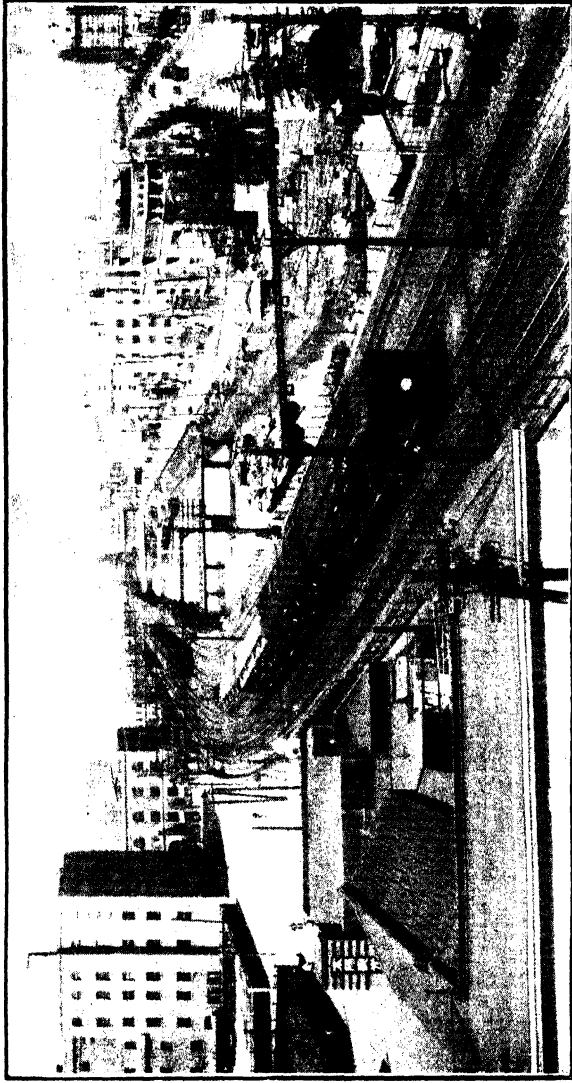
बिजलीकी रेलवे

के अवसर पर ताकत लगाकर कुत्तेको सहायता भी पहुंचाया करता है। कुत्ते कुछ अधिक मोटे ताजे नहीं होते। भिर भी वे काफी सामान ढो लेते हैं। इसी प्रकार तीन पहियेकी माल ढोने वाली साइकलोंमें भी कुत्ते जुते रहते हैं। साइकलकी सीट पर आदमी बैठा रहता है और दूसरी तरफ कुत्ता जुता रहता है जिसकी जंजीर साइकल सवार अपने हाथमें लिये रहता है। इससे कुत्ता इधर-उधर जा नहीं सकता। उसमें भी प्रायः कुत्ता ही खींचता रहता है, परन्तु आवश्यकता पर आदमी भी ताकत लगाता है।

लोगोंने स्त्रियोंको डाढ़ी मूंछ बनवाते हुए शायद न देखा होगा। परन्तु जापानमें ऐसी स्त्रियां भी मिल सकती हैं जो सरके बालोंके साथ-साथ डाढ़ी-मूंछ बनवाती हुई भी पायी जाती हैं। स्त्रियां बाल बनवाती भी हैं और बाल बनाती भी हैं। इस प्रकारके दृश्योंका अभ्यास न रहने वाले व्यक्तियोंके लिए ये दोनों बातें और खासकर प्रथम बात बड़ी विचित्र-सी मालूम पड़ती है।

बाल बनानेके लिए स्थान-स्थान पर दूकानें बनी हुई हैं। यहीं लोग बाल बनवाने आते हैं। इन दूकानोंमें अनेक प्रकारके औजार, तेल, साबुन आदि रहते हैं और बाल बनाने वाले नाई भी बड़े कार्य-पटु होते हैं। बाल काटनेकी मशीनें बिजलीसे चलने वालीं होती हैं। इनके सहारे बहुत जल्दी और बड़ी आसानीसे बाल कट जाते हैं। बाल काटना, डाढ़ी बनाना, बाल संवारना, हाथ मुंह धुलाना आदि सब कार्योंमें बड़ी सफाई और मुस्तैदीसे काम लिया जाता है।

एक बहुत ही विचित्र बात दिखलायी पड़ती है वहांके सार्वजनिक स्नानागारोंमें। वहां पर प्रत्येक घरमें स्नानकी अच्छी व्यवस्था नहीं होती। इसलिए सार्वजनिक स्नानागार (Bath Room) बने हुए हैं। इन स्नानागारोंमें बहुत थोड़ा-सा किराया देने पर कोई भी जाकर स्नान कर सकता है। यहां पर गरम ठंढे हर प्रकारके पानी तथा साबुन आदिकी भी व्यवस्था रहती है। यहां लोग जाते भी काफी बड़ी तादादमें हैं। यहां तक तो कोई विशेष विचित्रता नहीं मालूम होगी, परन्तु जब यह मालूम किया जायगा कि जापानमें नंगे होकर स्नान करनेकी प्रथा है और जो लोग उन सार्वजनिक स्नानागारोंमें जाते हैं वे नंगे होकर नहाते हैं तो शायद आश्चर्य हो। सबके सामने नंगे हो होकर पानीके कुण्डोंमें स्नान करना बड़ा विचित्र-सा मालूम होता है। इस प्रकारके स्नानागार अधिकांशमें तो पुरुषोंके लिए अलग और स्त्रियोंके लिए अलग हैं, परन्तु कहते हैं कुछ ऐसे स्नानागार भी हैं जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ स्नान कर सकते हैं। वे कितने विचित्र और कितने अश्लील मालूम होते होंगे इसका सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। इन स्नानागारोंकी एक बात और भी बड़ी गन्दी होती है। वह यह कि इनमें पानीके हौजसे भरे होते हैं, उन्हींमें जाकर बारी-बारीसे सब लोग डुबकी लगाते हैं और उसका पानी बदला नहीं जाता। स्वास्थ्यके लिए यह कितना हानिकारक है। फिर भी मालूम नहीं जापानियोंका ध्यान उस ओर क्यों नहीं जाता। स्नानके सम्बन्धमें जापानियोंकी एक बात और भी विचित्र है। वे प्रायः दिन भरका सारा काम-काज करके रातको

सोनेके समय स्नान करते हैं, हम लोगोंकी भाँति प्रातःकाल नहीं। प्रातःकाल तो वे केवल दतून-कुल्ला कर लेते हैं।

वहां पर रोटी आदि बनानेके लिए दो प्रकारका कोयला इस्तेमाल किया जाता है, एक तो लकड़ीका मामूली कोयला और दूसरा कुछ विशेष मसाला आदि डाल कर बनाया जाता है। यह कोयला लोहेके समान दिखलायी पड़ता है। इसके लड्डू ऐसे बना लिये जाते हैं और उसी रूपमें वे बिक्री होते तथा जलाये जाते हैं। इनकी आंच इतनी तेज होती है कि पत्थरके कोयलेकी-सी आंच मालूम होती है और वह आंच चलती भी बड़ी देर तक है। इस कोयलेमें पत्थरके कोयले की भाँति धुंआ आदि बिलकुल नहीं होता। रोटी बनानेके लिए यह कोयला बड़ा अच्छा होता है।

दियासलाइयां तो मालूम होता है वहां किसीको खरीदनी ही न पड़ती होंगी। प्रायः प्रत्येक होटलमें, प्रत्येक चौरास्ते पर, प्रत्येक बड़ी दूकान पर लोग दियासलाई मुफ्तमें बाँटा करते हैं। इन दियासलाइयोंमें उन बाँटने वाले लोगोंका विज्ञापन होता है। विज्ञापन के लिए ये दियासलाइयां इतनी अधिक बँटती हैं कि कोई भी आदमी अपना काम इस प्रकारकी मुफ्ती दियासलाइयोंसे ही चला सकता है।

जापानी अपने मित्रों या परिचितों आदिको विदाई बड़ी अच्छी तरह देते हैं। फूल-मालाएँ आदि पहनाकर तो विदा करते ही हैं। जब जहाज आदि चलने लगते हैं तब भी रूमाल या खाली हाथ हिला हिलाकर यूरोपियन ढंगसे जो विदाई देते हैं उसके अतिरिक्त उनका अपना एक ढंग है। कागजके खूब लम्बे-लम्बे फीते जो खूब

अच्छी तपह लपेटे रहते हैं और जो प्राय: प्रत्येक स्थान पर—यात्रा स्थान पर भी मिलते हैं। इन फीतोंका एक सिरा एक ओरके आदमी के पास—यात्रीके पास या विदाई देने वालेके पास—रहता है और पूरा बण्डल दूसरे आदमीके पास (उपरोक्त दोनों आदमियोंमेंसे ही किसी एकके पास) फिर ज्यों-ज्यों जहाज बढ़ता जाता है त्यों-त्यों बंडल वाला आदमी बंडलसे कागजका फीता छोड़ता चला जाता है। इस प्रकार जब तक बंडलका सब फीता खर्च नहीं हो जाता तब तक वे इसी प्रकार फीते पकड़े और छोड़ते रहते हैं। कभी-कभी एक बंडल चुक जाने पर दूसरा बंडल एक ओरका छोर पकड़ कर फेंकते हैं जिससे वह फीता छूटता हुआ निर्दिष्ट व्यक्तिके पास पहुंच जाता है और फिर पूर्ववत् फीतेके प्रसारका कार्य आरम्भ हो जाता है। रंग विरंगे कागजके इन फीतोंके साथ विदाईका ढंग बड़ा मनोरंजक मालूम होता है। न मालूम कितने आदमी आते हैं और सबके पास इस प्रकारके फीते होते हैं, सब अपने-अपने यात्रीको देते हैं। कभी-कभी एक ही यात्रीके पास अनेक फीते हो जाते हैं जब उसे भेजनेके लिए अधिक संख्यामें लोग आते हैं। उस समयका दृश्य बड़ा सुहावना मालूम होता है।

अस्पतालोंके सम्बन्धमें भी वहां एक बड़ी विचित्र-सी बात मालूम हुई। हम लोग टोकियोंमें थे। उस समय हमारे :दलके एक आदमीकी तबीयत खराब हुई। हमें अस्पताल जाना पड़ा। उस समय मालूम हुआ कि वहां दातव्य-औषधालय—मुफ्त दवा बाँटने वाले अस्पताल हैं ही नहीं। यह जानकर आश्चर्य हुआ। अस्पतालोंमें

डाक्टरोंकी फीस निर्दिष्ट है। वह फीस देकर कोई रोगी अपनी दवा अस्पतालोंमें करा सकता है। इसकी एक बात तो समझमें अवश्य आती है कि मुफ्त दवा बाँटनेसे मामूली-सी शिकायत होने पर भी लोग दवा लेने दौड़ते हैं और दवा खा-खाकर एक रोग अच्छा करके नये-नये रोग पाला करते हैं, फीस आदि का प्रतिबन्ध लग जानेसे यह अवस्था नहीं होती। परन्तु जहां यह लाभ है वहीं यह हानि भी। इस प्रथाके कारण हो सकती है कि किसी गरीब आदमीको वास्तवमें दवाकी आवश्यकता हो और वह अर्थाभावके कारण दवा न करा सके और अकाल ही कालकवलित हो जाय।

जो जापानी विदेश यात्रा करना चाहते हैं उनके साथ एक बड़ी मार्केकी बात होती है। जापान इस बातका बराबर ध्यान रखता है कि ऐसा व्यवहार किया जाय जिससे जापान निवासी किसी देशके आदमियों के सामने शिष्टता, सभ्यता आदिमें न्यून न ठहरें। यह बात वह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि विदेशमें उसके निवासी जायं और वहां उनका व्यवहार हँसी मजाककी वस्तु बन जाय। इसलिए वहां ऐसी संस्थाएं खुली हुई हैं जिनमें विदेश जाने वाले यात्रियोंको खास तौर पर विद्यार्थियोंको शिक्षा दी जाती है। इन संस्थाओंमें भिन्न-भिन्न देशोंके आचार-विचारके जानकार पण्डित रहते हैं। वे ही वहांके शिक्षक होते हैं। जिस व्यक्तिको जिस देश भेजना होता है उसे उसी देशके आचार-विचारकी सब शिक्षाएं दी जाती हैं और कुछ दिन उन पाठशालाओंमें रखकर उन्हें उन सबका अभ्यास कराया जाता है।

जब वे वहांके सब आचार-व्यवहार सीख लेते हैं तब उन्हें विदेश भेजा जाता है। इससे वहां जाकर वे कोई ऐसा काम नहीं करते जो उनकी हँसीका कारण बन जाय। देशकी प्रतिष्ठाके लिए यह प्रबन्ध कितना अच्छा है इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। परन्तु यह हो सकता है वहीं, जहाँके निवासियोंको और खास कर जहाँकी सरकारको अपने तथा अपने देशके गौरव मान मर्यादा आदिका ध्यान है।

विपथगमनकी कुछ बातें

जिस विषयपर इस अध्यायकी पंक्तियां लिखी जा रही हैं वह विषय बड़ा नाजुक है और साधारण अवस्थामें इस विषयकी उपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होती। परन्तु इस वैपथ्यमें भी जापानमें कुछ ऐसे सुधार हुए हैं जिनसे लाभ उठाया जा सकता है। उस लाभका अवसर मिल सके इसी अभिप्रायसे इस उपेक्षा योग्य विषय पर भी निम्नलिखित पंक्तियां लिखी जा रही हैं।

समाजमें वेश्याओंका अस्तित्व अतिप्राचीन कालसे लेकर अब तक पाया जाता है। समयकी इस विशाल अवधिमें अनेक युग आये, अनेक सुधार हुए और अनेक प्रकारसे चरित्र रक्षाका प्रबन्ध किया

गया परन्तु वेश्यावृत्तिसे समाजको छुटकारा नहीं मिला। इसीसे सन्देह होता है कि शायद यह समाजकी आवश्यकता है। समाजमें जब तक मनुष्य हैं और मनुष्योंमें जब तक कमजोरियां हैं तब तक इस वृत्तिका अस्तित्व शायद जाय भी नहीं। कौन जाने समाजके सदाचारकी रक्षाके लिए ही दुराचारके इन अड्डोंकी आवश्यकता हो, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शहरका कूड़ा हटानेके लिए कूड़ा घरोंकी आवश्यकता होती है। जो हो, यह सत्य है कि वे बराबर चले आ रहे हैं और जब तक समाजसे उनका मूलोच्छेद न हो तब तक उनके सुधारका जो प्रयत्न सम्भव, उचित और आवश्यक हो उसका करना समाजका कर्तव्य है। जापानने शायद इसी बातको सामने रखकर वेश्यालयोंके सम्बन्धमें कुछ सुधार किये हैं।

अपने देशमें वेश्याओंके निवास स्थान भले गृहस्थोंके बीचमें अथवा उनसे सटे हुए मुहल्लोंमें पाये-जाते हैं। इस प्रकार उनका सटा हुआ रहना दुराचारकी प्रवृत्तिको उत्तेजित करनेवाला होता है। उसका प्रभाव समाजपर कई प्रकारसे पड़ता है। प्रथमतः जो वासनाके शिकार हैं, वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठाकी रक्षा करते हुए भी उन मुहल्लोंमें जा सकते हैं क्योंकि वे आसानीसे यह बहाना कर सकते हैं कि वे समाजके किसी सद्गृहस्थके यहाँ जा रहे थे या समाजके अन्य लोग उन स्थानोंमें किसीको घूमते हुए देखकर यह अनुमान कर सकते हैं कि वह व्यक्ति उस मुहल्लेके रहनेवाले किसी सद्गृहस्थके यहाँ आ जा रहा होगा। द्वितीयतः वेश्याएँ जब सद्गृहस्थोंके बीचमें रहती हैं तब उन्हें आसपासके भले घरके युवकोंको

अपने चंगुलमें फांसनेकी अधिक सुविधा मिलती है। वे न केवल युवकोंके चरित्रपर ही आक्रमण करके रह जाती हैं, भोलीभाली और सतायी हुई लड़कियोंको भी बिगाड़नेका प्रयत्न करती हैं। इसके अतिरिक्त उनके विद्यमान होनेके कारण ही समाजके दुश्चरित्र लोग उन मुहल्लोंका चक्कर लगाया करते हैं और वेश्याओंके अतिरिक्त यदि उनकी नजर किसी सद्गृहस्थके घरकी बहू बेटी पर भी पड़ गयी तो वे उसे भी बिगाड़नेकी कोशिश करते हैं। एक बात और होती है। अपनी वृत्तिके कारण वेश्याओंमें नाना प्रकारके संक्रामक रोग हो जाते हैं जिनके आसपास फैलनेका भी सदा भय रहता है। इस प्रकार सद्गृहस्थोंके बीचमें वेश्याओंका रहना अत्यन्त अनिष्ट, अहितकर और घातक होता है। जापानने शायद यही समझ कर अपने वेश्यालय शहरोंसे बिलकुल अलग बनाये हैं। अलग होनेके कारण किसी भले आदमीके लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह लोकापवाद बचा सके। इसलिए लोक लाजके भयसे वह वहाँ जानेका साहस बहुत सोच समझ कर करेगा। इस प्रकार दुराचारकी प्रवृत्तिमें नियन्त्रण रहता है और वेश्यालयोंसे होनेवाले अन्य दोष भी समाजमें नहीं घुसने पाते।

वेश्यालयोंमें जाकर भी लोग ऊधम न मचा सकें इसके लिए वहाँ व्यवस्था की गयी है। वेश्यालयवाले मुहल्लेमें पुलिसकी सबसे अधिक चौकसी रहती है। वहाँपर एक-एक मकानमें अलग-अलग वेश्याएं नहीं रहतीं। एक-एक घरमें ८-८, १०-१० और कभी-कभी इससे भी अधिक संख्यामें वेश्याएं रहती हैं। वेश्याएं बाहर

नहीं निकलतीं। प्रत्येक मकानके दरवाजे पर बरामदेमें एक आदमी बैठा रहता है। वही वहां जानेवाले आदमीको बुलाता और उससे बातचीत करता है। इस आदमीके पास उस मकानकी सब वेश्या-ओंके चित्र रहते हैं। चित्र देखकर आगन्तुक अपनी पसन्दकी वेश्याको चुनता है। तत्पश्चात् उस वेश्याकी फीस आदि ठीक की जाती है और इतना सब हो जानेके बाद आगन्तुक मकानके अन्दर जाने पाता है।

रोगोंके नियन्त्रणके लिए भी प्रयत्न होता है। प्रत्येक वेश्याकी डाक्टरी परीक्षा प्रति मास होती है और जो वेश्या रोगग्रस्त पायी जाती है वह पेशेसे हटा दी जाती है। यह डाक्टरी परीक्षा किसी एक निश्चित दिन सबकी एक साथ नहीं होती—रोज-रोज एक-एक समूहकी होती है। इस प्रकार प्रत्येक दिन ऐसी वेश्याएं मिल सकती हैं जिनकी डाक्टरी परीक्षा उसी दिन हुई हो। इसके सार्टीफिकेट भी उसी आदमीके पास रहते हैं जो मकानके बरामदेमें बैठा रहता है। उससे सार्टीफिकट मांगकर आगन्तुक यह जान सकता है कि जिस वेश्याके सम्बन्धमें वह बात कर रहा है उस वेश्याका डाक्टरी मुआ-यना कब हुआ था ? जो व्यक्ति वेश्याओंके यहाँ जाता है उसको अपने पहननेके सब कपड़े बदल देने पड़ते हैं और वेश्याओंके यहाँके खास कपड़े पहनने होते हैं। इसके अतिरिक्त उसे विशेष रसायनिक औषधियोंसे अपने अवयव भी साफ करने होते हैं तब उसे वेश्यागमन का अवसर दिया जाता है।

वेश्यालयोंमें जानेवाले व्यक्तियोंका रिकार्ड (विवरण) भी रखा जाता है। एक फार्म मिलता है। उस फार्ममें अपना नाम, पता

आदि सब बातें लिखनी पड़ती हैं। यह फार्म पुलिसके हवाले कर दिया जाता है। इस प्रकार वेश्यागमनके मार्गमें अनेक बन्धन रखे गये हैं। इससे वेश्यावृत्ति वहांपर बहुत नियन्त्रितरूपसे होती है। इन्द्रिय जन्य संक्रामक और सांघातिक रोगोंकी भी बहुत कमी है। इतने कड़े नियंत्रणसे यह लाभ तो अवश्य है परन्तु मालूम नहीं इसीके कारण या अन्य कारणोंसे वेश्यालयोंसे बाहर अन्य स्थानोंमें कामोद्दीपनके अनेक साधन जुटे रहते हैं। टी हाउस, डांसहाल आदिमें जो कुछ होता है वह तो होता ही है 'बार' नामकी चाय और शराब आदिकी दूकानें होती है उन दूकानोंमें तो बड़े ही अश्लील और गन्दे दृश्य दिखायी पड़ते हैं। वहाँ बिना किसी परदा परहेजके आगन्तुक लोग एक दूसरेके सामने वहां काम करनेवाली लड़कियोंके साथ अश्लील छेड़ खानी किया करते हैं। न लड़कियां शर्माती हैं और न पुरुष। ये लड़कियां भी वेश्यावृत्ति करती हैं। इनके अतिरिक्त गेसागर्ल्स भी, जिनका प्रधान काम नाचना गाना और अतिथिके स्वागत सत्कारमें समाजको सहायता देना है, पथ-च्युत होती हुई पायी जाती हैं। खैर यहाँ, उन सब बुराइयोंकी गिनती गिनाना अभिप्रेत नहीं है। ध्यान केवल वेश्यावृतिके नियन्त्रणकी ओर आकृष्ट करना है। जापानमें उस नियन्त्रणसे लाभ हुआ है और वहांके स्वास्थ्य आदिके आंकड़े देखनेसे पता लगता है कि वहां मैथुन जन्य रोग बहुत ही कम हैं। साथ ही समाजमें वेश्यागामियोंकी भी कमी है। यदि उनके यहाँके सुधारोंका अनुकरण किया जाय तो अन्य स्थानोंमें भी वेश्यागमनकी बुराइयां बहुत कुछ घट सकती हैं।

यात्रियोंके कामकी बातें

भारतवर्षसे जापान जानेके लिए केवल जलमार्ग ही है। हवाई मार्ग या स्थल मार्ग कोई है ही नहीं—मार्ग नहीं है यह न कहकर सुविधा या प्रबन्ध नहीं है यह कहना शायद अधिक उपयुक्त होगा। जो कुछ कहा जाय, मतलब यही है कि वहाँ जानेके लिए इस समय जलमार्ग ही है। जलमार्गसे जानेके लिए तीन स्टेशन हैं—कलकत्ता, बम्बई और कोलम्बो। इस तीन बन्दरगाहोंमेंसे किसी बन्दरगाहसे जापानके लिए जहाज मिल सकते हैं। कलकत्तेसे जानेवाले जहाज में ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनीके जहाज ही सर्वोत्तम

जहाज है। परन्तु ये जहाज भी अधिक अच्छे जहाज नहीं हैं। वजनमें तो १० हजार टनसे अधिकके जहाज कलकत्ते आही नहीं सकते। इसलिए अधिक बड़े जहाज यहाँ आते ही नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इस लाइनमें (कलकत्ता जापान) जो जहाज चलते हैं वे सेमी कारगो (Semi cargo) स्टीमर हैं जिनमें माल असबाब भी ढोया जाता है और मुसाफिर भी ले जाये जाते हैं। ये स्टीमर प्रायः १५ वें दिन कलकत्तेसे छूटा करते हैं और रंगून, पेनांग, सिंगापुर, हांगकांग, अमोय, शंघाई आदि होते हुए जापान जाते हैं। बम्बई से कई कम्पयियोंके जहाज जाते हैं जिनमें कारगो, सेमी कारगो और पैसिञ्जर सभी प्रकारके तथा छोटे बड़े स्टीमर आया जाया करते हैं। बम्बईसे जानेवाले स्टीमर कोलम्बोसे सिंगापुर और फिर ऊपर लिखे हुए बन्दरगाहोंके रास्ते जाते हैं। उनके रास्तेमें रंगून और पेनांग ये दो बन्दरगाह छूट जाते हैं। यही हाल कोलम्बोसे जानेवाले जहाजोंका भी होता है। वे भी सीधे सिंगापुर और फिर शेष बन्दरगाहोंको जाते हैं। परन्तु जहां कोलम्बो और बम्बईसे जानेमें इस प्रकार दो स्थानोंको देखनेका अवसर छूट जाता है, वहाँ उनमें जहाज बड़े अच्छे मिल जाते हैं जो काफी बड़े, खूब सजे हुए और केवल पासिञ्जरोंको ले जानेवाले होते हैं। इन जहाजोंकी बनावट भी कलकत्तेसे जानेवाले जहाजोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी होती है। इनमें केबिन, कामनरूम, व्यायाम शालाएँ, नाचघर, खेल कूदके स्थान तैरनेके तालाब आदि बहुत अच्छे होते है। कलकत्तेसे जानेवाले जहाजोंमें भी खेल-कूदका स्थान रहता है परन्तु बहुत कम और व्यायाम,

नाचघर आदिका तो कोई प्रबन्ध ही नहीं रहता, साथ ही जिन वस्तुओंकी व्यवस्था है वे बड़ी मामूली हैं। कारगो या सेमी कारगो जहाज न होनेके कारण एक लाभ यह भी होता है कि बन्दरगाहोंपर माल उतारने चढ़ानेमें, चढ़ाने उतारनेवाले बड़े बड़े क्रेनों (यंत्रों) की आवाजसे यात्री लोग बच जाते हैं। क्रेनोंकी आवाज बड़ी जोर की होती है जिससे जहाजके खास तौरसे क्रेनके पासवाली केबिनोंके यात्रियोंको बड़ी असुविधा होती है। क्रेनोंकी खड़खड़की आवाज कान फोड़ देती है और रात दिन काम होनेके कारण नींद भी हराम कर देती है। इसके अतिरिक्त बम्बई और कोलम्बोके रास्ते जानेसे एक लाभ और होता है। वह यह कि उस रास्तेसे किराया भी कम लगता है। इसका कारण यह है कि उस रास्तेसे अमेरिकन, इटैलियन, जापानी, अंग्रेजी आदि अनेक कम्पनियोंके जहाज आया जाया करते हैं, इसलिए एक प्रकारका प्रतिद्वन्दिताका सा भाव है और कलकत्ता-जापान लाइनमें ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेवीगेशनके अतिरिक्त पैसिञ्जर जहाज नहीं हैं। हाँ, कारगो स्टीमर आदिमें आदमी आ जा सकते हैं। बम्बईसे जानेवाले स्टीमरोंके केबिन (कमरे) भी कलकत्तेवालोंकी अपेक्षा अधिक अच्छे और सुविधाप्रद होते हैं। परन्तु जहाँ बम्बईसे जानेवाले यात्रियोंको उपरोक्त सुविधाएँ और लाभ प्राप्त होते हैं, वहाँ कुछ असुविधाएँ और हानियां भी हैं। वे रंगून और खासकर पिनांग जैसे सुन्दर बन्दरगाह नहीं देख सकते। और अन्य बन्दरगाहों पर भी, देखने सुननेका उतना अच्छा अवसर उन्हें नहीं प्राप्त होता। कारगो या सेमी कारगो स्टीमरमें तो माल उतारने चढ़ानेके लिए जहाजोंको

अधिक समय तक ठहरना पड़ता है। कभी-कभी एक-एक बन्दरगाहमें दो-दो तीन-तीन दिन तक जहाज ठहर जाता है (यदि अधिक माल चढ़ाना, उतारना हुआ) इस प्रकार इन बन्दरगाहोंको देखनेका अच्छा अवसर मिल जाता है। परन्तु पासिञ्जर जहाज केवल यात्रियोंको चढ़ाने उतारनेके लिये ठहरते हैं। इस काममें अधिक समय नहीं लगता। इसलिए कुछ घंटोंसे अधिक जहाज कहीं नहीं रुकते और इसलिए रास्तेके बन्दरगाहोंको देखनेका उतना अवसर भी नहीं मिलता। परन्तु इससे यह लाभ भी होता है कि ये स्टीमर जल्दी जापान पहुंच जाते हैं और इस प्रकार जहाजकी लम्बी यात्राकी असुविधाओंसे बचाव हो जाता है। बम्बईसे जानेवाले जहाज जब १५-१६ दिनमें जापान पहुंच जाते हैं तब कलकत्तेके रास्ते जानेवाले जहाजोंको लगभग १ महीना लग जाता है। बम्बईसे जानेवालोंको एक असुविधा और होती है कि उन्हें अधिकांशमें शंघाईसे जापान तकके लिए जहाज बदलने पड़ते हैं। बम्बई और कोलम्बोकी लाइनके सब जहाज सीधे जापान तक नहीं जाते। यह यात्रियोंके व्यक्तिगत विचारकी बात है कि वे इन सुविधाओं और असुविधाओंकी दृष्टिसे निश्चय करें कि उन्हें किस रास्ते जाना चाहिए। परन्तु यदि एक रास्तेसे जाकर दूसरे रास्तेसे आवें तो दोनोंके हानि लाभका अनुभव हो सकता है। इस प्रकारका प्रबन्ध किया भी जा सकता है। यदि आने जानेका टिकट एक ही कम्पनीसे ले लिया गया हो तो भी यह प्रबन्ध हो सकता है। जहाज कम्पनियोंमें आपसमें इस प्रकारका समझौता है कि वे शरहके अनुसार किराया यदि अधिक हो तो जितना दिया

जा चुका है उससे अधिक जितना निकलता हो उतना किराया चुका देनेपर टिकट दूसरी लाइनका मिल जाता है। इस प्रकार वापसी टिकट होनेपर भी लाइन बदली जा सकती है।

ऊपर कहा जा चुका है, कि बम्बई लाइनके जहाज अधिकांशमें शंघाई तक जाते हैं। उसके बाद यात्री अन्य जहाजमें, जिनके साथ जहाज कम्पनियोंका प्रबन्ध रहता है, जा सकते हैं। परन्तु यदि कोई यात्री जहाज द्वारा न जाकर रेलवे द्वारा जाना चाहे तो उसके लिये भी व्यवस्था होती है। शंघाईसे आगे जापानके उस बन्दरगाह तक जहाँ तकका टिकट जहाज कम्पनीने दिया है, यात्री रेल द्वारा यात्रा कर सकता है और रेलके टिकटका खर्च जहाज कम्पनी दे देती है। यह प्रबन्ध कलकत्तेसे जानेवाले जहाजोंमें भी हो सकता है। जहाजका जिस क्लासका टिकट यात्रीके पास होता है उसी क्लासका रेलवे टिकट जहाज कम्पनी उसे दे देती है। यह नियम प्रायः प्रत्येक जहाज कम्पनीमें है। इससे लाभ उठाया जा सकता है।

जहाजके टिकटमें प्रायः खाने पीनेका दाम भी शामिल रहता है, परन्तु खाना बँधा हुआ मिलता है। उससे अधिक लेनेपर अलगसे दाम देने पड़ते हैं, परन्तु साधारणतः वह इतना पर्याप्त होता है कि उससे अधिककी आवश्यकता नहीं पड़ती। जहाज पर नौकर-चाकर भी मुफ्तमें ही मिलते हैं। वे सबेरे उठकर यात्रियोंके कमरेकी सफाई उनके जूतों और कपड़ों आदिकी सफाई आदि सब काम करते हैं। जहाजपर साधारण खाने पीनेकी सब चीजें मिल जाती हैं। दवा आदिके लिए डाक्टर भी रहता है। नायी और धोबीका प्रबन्ध भी

रहता है, परन्तु उनके चार्ज अधिक होते हैं। पढ़ने-लिखनेके लिए पुस्तकालय तथा कागज कलम आदिका प्रबन्ध भी रहता है। पुस्तकों के लिए किसी प्रकारकी फीस आदि नहीं लगती और चिट्ठी आदि लिखनेके लिए भी मुफ्तमें कागज, लिफाफे आदि मिल जाते हैं। गाने-बजानेके लिए ग्रामोफोन, पायनों आदि बाजे तथा खेलनेके लिए अनेक प्रकारके खेलके सामान भी रहते हैं। इस प्रकार मनबहलाव के लिए काफी प्रबन्ध रहता है, फिर भी लम्बी यात्रामें तबीयत ऊबने अवश्य लगती है।

जहाजोंमें सवार होनेके पहिले डाक्टरी परीक्षा होती है। बीच बीचमें भी होती रहती है। यह परीक्षा बड़ी विचित्र होती है। आरम्भमें तो नाड़ी आदि पकड़ कर एक परीक्षाका अभिनय कर भी लिया जाता है, परन्तु बादमें तो यात्रीगण लाकर एक स्थान पर एकत्र कर दिये जाते हैं और डाक्टर साहब आकर गिनती कर लेते हैं कि जितने पैसिञ्जरोंकी लिस्ट उनके पास है उतने वहाँ उपस्थित हैं या नहीं। बस, इस 'रोल काल' (उपस्थिति गणना) से ही डाक्टरी परीक्षा भी समाप्त समझ ली जाती है। यह परेड यात्रा भरमें कई बार करनी पड़ी थी। आरम्भमें चढ़ते समय कुछ लोगों को चेचकका टीका लगवाना पड़ा था। उस टीकेके कारण एकाध यात्रीको बड़ा कष्ट रहा।

जहाजके चलते समय या खड़े रहने पर भी जब कुहासा पड़ता है तब जहाज पर प्रति मिनट घण्टा बजा करता है। इसके द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि यदि कोई जहाज आस पास आ रहे हों

तो वे यह जान जायँ कि यहाँ जहाज खड़ा है या जा रहा है और इस प्रकार टकरानेसे बचे रहें।

जहाजों पर बीच बीचमें लाइफ बेल्ट (आपत्तिके समय जान बचानेके लिए पहने जाने वाले एक प्रकारके पट्टे) की कवायद होती है। उस अवसर पर प्रत्येक यात्रीको लाइफ बेल्ट पहन कर खड़ा होना पड़ता है। यह इस लिए किया जाता है कि यात्री लोग पहनना सीख लें ताकि आपत्तिके समय अपने आप पहन कर जान बचा सकें। इस प्रकारकी कवायदके समय हमें पहिले पहिल यह प्रतीत हुआ कि जहाजमें धोतीकी अपेक्षा पतलून आदि पहनना अधिक सुविधाप्रद और अच्छा होता है। आपत्तिके समय ढीलमढाल धोती की अपेक्षा कार्यकी शीघ्रता और मुस्तैदीके लिए पतलून, पायजामा, या हाफपैण्ट आदि अधिक कामके हो सकते हैं।

जिस समय जहाज बन्दरगाह पर होता है उस समय, यदि वह किनारे न लगा हो और यात्रियोंको बाहर जानेके लिये किनारेसे मोटर बोट आदि बुलाना हो तो, जहाज पर एक पीला-पीला झण्डा फहरा दिया जाता है। यह काम जहाजके कर्मचारियोंसे कहने पर हो जाता है। उस झण्डेके ऊपर चढ़ते ही किनारेसे किरायेके मोटर बोट आ जाते हैं और यात्री बाहर आ जा सकता है।

जापान यात्राके लिये यद्यपि पोशाक आदि की कोई कैद नही है, किसी प्रकारकी पोशाकसे काम चलाया जा सकता है तथापि सबसे अधिक सुविधाप्रद पोशाक होती है यूरोपियन पोशाक। जापान खासमें तो नहीं परन्तु रास्तेमें ऐसे स्थान मिलते हैं जहाँ लोग यूरोपियन

पोशाक न होने पर अन्दर घुसने नहीं देते। अत: यदि यूरोपियन पोशाक न हो तो उन स्थानोंका अवलोकन असम्भवसा हो जाता है। परन्तु यह प्रसङ्ग बहुत कम आता है। हम लोगोंके सामने तो केवल एक ही बार आया था। पोशाकमें यह ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि गरम कपड़े काफी होने चाहिये क्योंकि जुलाई अगस्तको छोड़-कर बाकी प्राय: सारे वर्ष जाड़ा रहता है और गरम कपड़ोंकी आव-श्यकता रहती है। ओढ़ने बिछानेका सामान ले जानेकी तो आव-श्यकता ही नहीं होती। जहाज पर जहाज कम्पनियोंसे ओढ़ना बिछौना मिल जाता है और जापान जाने पर प्रत्येक होटलमें इसकी व्यवस्था रहती है। जहां आप जायँ वहाँ ओढ़ने बिछौने पहिलेसे तैयार मिलेंगे। यहाँ तक कि रेलवे आदिमें भी इसकी अलगसे आवश्यकता नहीं पड़ती। स्लीपिङ्ग बर्थ ले लेनेसे वे अपने आप मिल जाते हैं।

साधारणत: हम लोग यह समझते हैं कि अंग्रेजी जाननेसे जापान में भी भाषाकी समस्या हल हो जाती है, जापानी सीखनेकी कोई खास आवश्यकता नहीं। परन्तु यह भ्रान्ति है। अंग्रेजीसे जापानमें बिलकुल काम नहीं चलता। यदि यात्राका आनन्द लेना हो तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि यात्री थोड़ी बहुत टूटी-फूटी जापानी भाषा सीखकर जायँ। जापानमें अंग्रेजीका प्रचार बहुत कम है और यद्यपि १६४० के ओलिम्पिक गेमके लिए अभीसे जापानमें सब तैयारियों के साथ यह तैयारी भी हो रही है कि लोग अंग्रेजी भाषा जान जायँ तथापि अभी बड़ी असुविधाएँ होती हैं। बिना गाइड रखे काम

नहीं चलता और गाइडसे वार्तालापका न तो मजा आता है और न उससे सन्तोष ही होता है। इसलिये यदि सम्भव हो तब तो जापानी अध्यापक रख कर अन्यथा जापानी शिक्षक पुस्तकोंके सहारे थोड़ी बहुत भाषा अवश्य सीख लेना चाहिये। यह काम उतना कठिन नहीं है। उच्चारणकी ही गड़बड़ी रह सकती है। बाकी काम चलानेका ज्ञान थोड़े समयमें किया जा सकता है। किताबें अंग्रेजी पुस्तकोंकी दूकानों पर बिकती रहती हैं।

जापानमें प्रत्येक शहरमें दर्शनीय स्थान दिखलानेके लिये अलगसे यात्री गाड़ियाँ (Excursion cars) रहती हैं। इन गाड़ियोंमें यात्रा अवश्य करनी चाहिए। एक तो इनसे खर्चमें किफायत होती है दूसरे ये उन सब स्थानोंमें ले जाती हैं जो देखने योग्य है। अतः यदि यात्री किसी स्थानको नहीं जानता हो तो इनमें जानेके कारण वह जान सकेगा। फिर इनमें जो कण्डाक्टर रहते हैं वे सब स्थानों के सम्बन्धमें आवश्यक जानकारीकी बातें बताते रहते हैं, इससे उनके विषयकी अनेक महत्वपूर्ण बातें अनायास यात्री जान सकता है। अलगसे गाड़ी करके देखने जानेकी अपेक्षा इन गाड़ियोंके द्वारा जाना अधिक लाभप्रद होता है। इनमें इतनी ही असुविधा रहती है कि यदि किसी स्थान पर कोई यात्री अधिक समय तक ठहरना चाहता हो तो वह ठहर न सकेगा। परन्तु अन्य लाभ अधिक हैं। इसलिये पहिले तो इन गाड़ियोंसे एक यात्रा अवश्य ही कर आनी चाहिये। बादमें यदि किसी विशेष स्थानसे अधिक दिलचस्पी हो तो वहाँ अलगसे दुबारा जाया जा सकता है। इन गाड़ियोंके द्वारा थोड़े

समय और थोड़े खर्चमें अधिक वस्तुएँ अधिक अच्छी तरह देखी जा सकती हैं। अतः इनका व्यवहार हर हालतमें अनुमोदनीय है।

जापानके प्रत्येक महत्वपूर्ण स्थानमें जापान टूरिस्ट बूरो अथवा ऐसी ही अन्य संस्थाएँ रहती हैं। इन संस्थाओंसे सब प्रकारकी बातें जानी जा सकती हैं। ये संस्थाएँ प्रायः रलवे स्टेशन पर होती हैं। वहाँ उतरते ही यात्री इनकी सेवाएँ प्राप्त कर सकता है। ये संस्थाएँ विना किसी प्रकारकी फीस आदि लिये यात्रियोंको हर प्रकारकी सहायता देती रहती हैं। किसी विषयकी कोई बात जाननी हो, कोई आवश्यक कार्य करवाना हो तो वहाँके कर्मचारी प्रसन्नतापूर्वक विना किसी प्रकारका पुरस्कार लिये हुए कर देते हैं। इनके द्वारा प्राप्त की हुई सूचना विश्वसनीय होती है। अतः जब किसी प्रकारकी कोई अड़चन यात्रियोंको पड़े तो उन्हें इन संस्थाओंके पास जाकर उसके हल करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। वहाँ पर ऐसी संस्थाएँ भी होती हैं जो माल असबाब आदि ढोनेका काम करती हैं। यदि स्टेशन पर उतरते ही उन्हें टेलीफोन आदि कर दिया जाय तो वे वाजिब पारिश्रमिक लेकर यथा स्थान सब सामान पहुंचा देंगे। इस प्रकार व्यवस्था करनेसे असुविधा नहीं होती और खर्च भी कुछ अधिक नहीं लगता।

इन संस्थाओंके पास रेलवे टिकट स्लीपिंग बर्थ आदिके टिकट भी रहते हैं। अतः यदि कभी किसी रेलवे स्टेशन पर किसी खास ट्रेनके टिकट बिक गए हों या स्लीपिंग बर्थ आदि रिजर्व हो चुकी हों

तो टेलीफोन आदिसे जापान टूरिस्ट बूरोको भी अवश्य पूछ लेना चाहिए। ऐसा अकसर हो जाता है कि रेलवे स्टेशन वाले टिकट समाप्त हो जाते हैं परन्तु टूरिस्ट बूरोसे जाँच करने पर वहाँसे टिकट मिल जाते हैं। लिमिटेड एक्सप्रेस ट्रेन और स्लीपिंग बर्थके मामलेमें यह अवस्था अकसर पैदा होती है।

जो यात्री बाहर जाते हैं वे सामान आदि भी खरीदते हैं। अतः उस सम्बन्धमें भी दो चार बातें लिख दी जायं तो अप्रासङ्गिक न होगा। जो वस्तुएँ जहाँ की विशेष वस्तुएँ हैं वे तो वहाँसे खरीदी ही जायँगी और वहींसे उनका खरीदा जाना उचित भी है। परन्तु जो सामान्य वस्तुएँ खरीदनी होती हैं उनके सम्बन्धमें यह जान लेना चाहिए कि यह धारणा गलत है कि जापानमें चीजें सस्ती मिलती हैं। जापानकी अपेक्षा रास्तेके सभी नगरोंमें चीजें सस्ती मिलती हैं। सबसे सस्ती चजें मिलती हैं हांग कांगमें। हांग कांग फ्री पोर्ट है। अर्थात् ऐसा बन्दरगाह है जहाँ बाहरसे आनेवाले मालपर डिउटी नहीं लगती। इस प्रकारके बन्दरगाह सिंगापुर, पेनांग आदि भी हैं। परन्तु उन सबसे सस्ती चीजें हांगकांगमें मिलती है। अतः माल असबाब खरीदनेके लिए हांगकांगमें ही प्रयत्न करना चाहिए।